योगी गुरु

योगीगुरु
YOGI GURU
प्रकाशक
दिल्ली सारस्वत संघ
सी-44, ग्रीन पार्क
नई दिल्ली-110016

(नीलाचल सारस्वत संघ, पुरी के लिए और उनकी ओर से प्रकाशित)

प्रकाशन वर्ष 1999
Year of Publication 1999

ISBN 81-85529-05-1

प्राप्ति स्थान
1. **दिल्ली सारस्वत संघ,**
   सी-44, ग्रीन पार्क,
   नई दिल्ली-110016

2. **नीलाचल सारस्वत संघ,**
   पुरी, संत शिक्षा मन्दिर,
   प्लाट सं. ए/4, यूनिट-9
   भुवनेश्वर-751022

मूल्य : 50 रुपये

मुद्रक : आकाशदीप पिन्टर्स, 20 अंसारी रोड़, नई दिल्ली-110002

योगीगुरु

विषय सूची

		पृष्ठ
1.	हिन्दी संस्करण की भूमिका	v-viii
2.	उत्सर्ग	ix-xi
3.	ग्रंथकार का निवेदन	xii-xix
4.	वाणी आवाहन	xx-xxv

प्रथम भाग–योग कल्प

5.	ग्रंथकार द्वारा साधना पद्धति संग्रहण	1
6.	योग की श्रेष्ठता	15
7.	योग क्या है ?	21
8.	शरीर तत्त्व	23
9.	नाड़ियों की बात	25
10.	वायु की बात	28
11.	दस वायु के गुण	29
12.	हंस तत्त्व	31
13.	प्रणव तत्त्व	32
14.	कुलकुण्डलिनी तत्त्व	35
15.	नव चक्र	37
	(i) मूलाधारचक्र	38
	(ii) स्वाधिष्ठान चक्र	39
	(iii) मणिपुर चक्र	40

(iv) अनाहत चक्र 40
(v) विशुद्ध चक्र 41
(vi) आज्ञाचक्र 42
(vii) ललना चक्र 43
(viii) गुरु चक्र 43
(ix) सहस्रार 44
16. कामकला तत्त्व 45
17. विशेष बात 46
18. षोड़शाधार 46
19. त्रिलक्ष्य 47
20. व्योमपंचक 47
21. ग्रंथि त्रय 47
22. शक्ति त्रय 48
23. योग तत्त्व 49
24. योग के आठ अंग 50
(i) यम 50
(ii) नियम 53
(iii) आसन 55
(iv) प्राणायाम 56
(v) प्रत्याहार 58
(vi) धारणा 59
(vii) ध्यान 59
(viii) समाधि 60
25. चार प्रकार के योग 61
(i) मंत्र योग 62
(ii) हठ योग 62
(iii) राज योग 63
(iv) लय योग 63
26. गुप्त विषय 66

द्वितीय भाग : साधना कल्प

27. साधकों के प्रति उपदेश 71
28. ऊध्वेरता 85
29. विशेष नियम 95
30. आसन साधना 102
31. तत्त्व विज्ञान 105
32. तत्त्व लक्षण 107
33. तत्त्व साधना 109
34. नाड़ी शोधन 111
35. मन को स्थिर करने के उपाय 112
36. त्राटक योग 114
37. कुण्डलिनी चैतन्य के कौशल 115
38. लय योग साधना 117
39. शब्द शक्ति और नाद साधना 119
40. आत्म ज्योतिः दर्शन 126
41. इष्ट देवता दर्शन 132
42. आत्म-प्रतिविम्ब दर्शन 134
43. देवलोक दर्शन 135
44. मुक्ति 138

तृतीय भाग : मंत्र कल्प

45. दीक्षा प्रणाली 151
46. सदगुरु 156
47. मंत्र तत्त्व 157
48. मंत्र जागरण 160
49. मंत्रासिद्धि के सात उपाय 161
50. मंत्रसिद्धि के सहज उपाय 162
51. छिन्नादि दोषों की शान्ति 163
52. सेतु निर्णय 164

53. भूतशुद्धि 165
54. जप के कौशल 167
55. मंत्र सिद्धि के लक्षण 169
56. शय्या शुद्धि 169

चतुर्थ भाग : स्वर कल्प

57. स्वर के स्वाभाविक नियम 173
58. वाईं नाक का श्वासफल 176
59. दाईं नाक का श्वासफल 176
60. सुषुम्ना का श्वासफल 177
61. रोगों की उत्पत्ति का पूर्व ज्ञान और प्रतिकार 177
62. नाक बन्द करने के नियम 178
63. निश्वास को बदलने के कौशल 179
64. वशीकरण 180
65. बिना औषधों के रोगों का आरोग्य 182
66. वर्ष फल निर्णय 186
67. यात्रा प्रकरण 187
68. गर्भाधान 189
69. कार्य सिद्धिकरण 190
70. शत्रु वशीकरण 190
71. अग्नि निर्वाचन का कौशल 191
72. रक्त साफ करने का उपाय 192
73. कुछ एक आश्चर्य संकेत 193
74. चिरयौवन प्राप्त करने के उपाय 197
75. दीर्घजीवन प्राप्त करने के उपाय 199
76. मृत्यु का समय पहले जानने के उपाय 203
77. उपसंहार 209

जयगुरु

योगीगुरु

हिन्दी संस्करण की भूमिका

तपस्यिभ्योऽधिक योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोधिक।
कर्मिभ्यश्चाधिक योगी तस्याद्योगी भवार्जुन॥

–श्रीमद्भगवत गीता, 6/46

पुण्य भूमि भारत अनादि काल से ज्ञानदात्री है। वेद उसका धर्म ग्रंथ है जो अपौरुषेय है। वेदान्त दर्शन संसार को उसी भारत भूमि की देन है। योग, ज्ञान और भक्ति इस पावन धरती की निजस्व सपत्ति है। आत्मा को परमात्मा से, भक्त को भगवान से मिलाने अथवा बह्म साक्षात्कार के लिए जितनी साधनाएं प्रचलित हैं उनमें योग सर्वश्रेष्ठ साधना है। इस देश में प्रत्येक व्यक्ति के भीतर योग का संस्कार है। सभी योगी बनना चाहते हैं। परन्तु योग की सही जानकारी नहीं रहने के कारण लोग उसमें सफलता पाना तो दूर विडम्बनाएं ही भोगते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक 'योगीगुरु' में योग की प्राथमिक जानकारी देने के साथ साथ योग संबंधी साधनाओं का अपेक्षित विवरण इसमें शामिल किया गया है। हम इस पुस्तक की विषयवस्तु में प्रवेश करने से पहले ग्रंथ के प्रणेता और हमारे परमाराध्य गुरुदेव परिव्राजकाचार्य परमहंस श्रीमत स्वामी निगमानन्द सरस्वती देव का संक्षिप्त जीवन परिचय दे दें, तो अप्रासंगिक नहीं होगा।*

* परमहंस देव जी का पूर्ण जीवन परिचय जानने के लिए हमारे संघ द्वारा प्रकाशित 'सदगुरु निगमानन्द' पुस्तक पढ़िये।

परमहंस निगमानन्द देवजी का जन्म सन् 1880 ईस्वी में अविभाजित बंगाल के नदिया जिला (इस समय बांग्लादेश का कुष्टिया जिला) में श्रावण पूर्णिमा के दिन कुतुब पुर नामक एक छोटी सी देहात में एक नैष्ठिक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बचपन में उनका नाम नलिनीकान्त था। उनके पिताजी का नाम भुवन मोहन भट्टाचार्य और माताजी का नाम माणिक्य सुन्दरी देवी था। उन्होंने आठवीं कक्षा तक ही पढा था। उनका विवाह हालि शहर निवासी स्वर्गीय वैद्यनाथ चक्रवर्ती की ज्येष्ठ कंन्या देवी सुधांशुबाला से हुआ था। पढ़ाई पूरी करने के बाद उन्होंने एक दो जगह नौकरी भी की थीं।

नलिनीकान्त बचपन में नास्तिक थे। वे सोचा करते थे कि देवी-देवता, परलोक और पुनर्जन्म आदि कवि की कल्पना मात्र है। परन्तु उनकें जीवन में परिस्थितिवश विराट परिवर्तन आया। उनकी युवा पत्नी देवी सुधांशुबाला लंबी बीमारी के बाद असमय ही स्वर्ग सिधार गईं। उसके बाद देवी ने अशरीरी छाया मूर्ति में तीन विभिन्न अवसरों पर नलिनीकान्त को दर्शन दिये और उन्हें विश्वास दिलाया कि ईश्वर और परलोक सत्य है। नलिनीकान्त बचपन से अनुसंधित्सु थे। इसलिए उन्होंने ठान लिया कि यदि परलोक है, तो उसकी खोज करूँगा और दिवंगत पत्नी से एक बार मिलूँगा।

नलिनीकान्त इसी क्रम में साधना तत्पर हुए। उन्होंने पहले तांत्रिक साधना की। पश्चिम बंगाल के वीरभूम जिले में द्वारकानदी के तट पर स्थित तारापीठ में उस पीठ के तत्कालीन भैरव महाकौल वामाक्षेमा के मार्ग निर्देशन में उन्होंने महाविद्या तारा की साधना की। मात्र एक ही रात्रि की साधना में देवी तारा ने उन्हें उनकी मनोमयी पत्नी सुधांशुबाला के रूप में दर्शन दिये। उसके बाद नलिनीकान्त जब भी चाहते थे, देवी सुधांशुबाला के रूप में उन्हें छायामूर्ति में दर्शन देती थीं। नलिनीकान्त ने देखा कि उन्हीं के शरीर से भाप जैसी तरल ज्योति निकलकर देवी तारा में बदल जाती है। तब मैं कौन हूँ और इस देवी से मेरे क्या संबंध हैं, यह प्रश्न नलिनीकान्त को झिंझोड़ने लगा।

नलिनीकान्त देवी को तत्त्वतः जानना चाहते थे। इसलिए वामाक्षेपा के निर्देश से उन्होंने ज्ञान साधना के लिए ज्ञानीगुरु की खोज की। राजस्थान प्रांत के पुष्कर तीर्थ में सावित्री आश्रम के तत्कालीन महन्त

श्रीमत् सच्चिदानंद सरस्वती ने उनका यह अभाव पूरा किया। यहीं पर रहते समय निगम अर्थात् वेद के निगूढ़ तत्त्व को बहुत ही कम समय में और बड़ी ही आसानी से हृदयंगम कर लेने के कारण गुरु ने उन्हें वैदिक संन्यास देकर उनका नाम **निगमानन्द** रखा।

ज्ञान साधना में सिद्ध मनोरथ होकर स्वामी निगमानन्द ज्ञानी गुरु के निर्देश से आत्मसाक्षात्कार के लिए अरुणाचल प्रदेश (तत्कालीन असम प्रान्त) में योगाचार्य सुमेरुदास जी (जो थियोसाफी संप्रदाय में मास्टर कुथमी के रूप में जाने जाते हैं) से योग की शिक्षा ली। उन्होंने किस प्रकार योगी गुरु की खोज की और उनके सान्निध्य में योग साधना के एक एक अंग को किस प्रकार पूरा किया उसका दिलचस्प विवरण इस पुस्तक के प्रारम्भ में दिया गया है। इसी क्रम में स्वामी निगमानन्द पहले सविकल्प और तत्पश्चात् निर्विकल्प समाधि में आरूढ़ हुए। निर्विकल्प समाधि की चरम अवस्था में उनमें 'मैं गुरु हूँ' का भाव जागा जिसके कारण उस अलौकिक भावभूमि से उनका व्युत्थान हुआ।

योगसिद्धि के कारण स्वामी निगमानन्द के मन में घमण्ड पैदा हो गया कि मै सबकुछ जान गया हूँ। इस गर्व को लेकर वे विद्यानगरी काशी पहुंचे। यहीं पर मां अन्नपूर्णा ने लीलादिक्रम में उनका मोह भंग किया। मां ने उन्हें चेता दिया कि यद्यपि तूने ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया है तथापि अवर ब्रह्मज्ञान अभी तक तेरा अज्ञात है। अपने इस अभाव को पूरा करने के लिए स्वामी निगमानन्द हिमालयवासिनी मां गौरीदेवी से भगवत प्रेम की शिक्षा ली और प्रेम साधना में सिद्ध होकर वे भाव समाधि में निमग्न हुए। बाद में सन् 1906 में इलाहाबाद में आयोजित कुम्भमेले में समवेत साधु समाज के अनुमोदन से वे परमहंस की उपधि से अलंकृत हुए।

स्वामी निगमानन्द मात्र तीन वर्ष की अल्प अवधि में तंत्र, ज्ञान, योग और प्रेम की साधनाओं में सिद्ध होकर पूर्णज्ञानी बने। तब से वे भारतीय समाज में **परिव्राजकाचार्य परमहंस श्रीमत् स्वामी निगमानन्द सरस्वती देव** के रूप में जाने गये। सर्वसिद्धि के बाद स्वामी निगमानन्द मानवता की सेवा के लिए लोक समाज में आये। परन्तु देश की तत्कालीन अवस्था को देखकर वे मन ही मन दुखी हो गये। उन्हें चिंता सताने लगी

कि जहाँ समाज ही नहीं है तो उसका क्या संस्कार करें। साधारण लोगों को धर्म और साधना की प्राथमिक जानकारी नहीं है। यदि कोई चाहता भी है, तो उसके लिए जो बल, वीर्य, सतसाहस चाहिए, वह अधिकांश लोगों में नहीं है। कुछ लोग समाज में वाहवाही पाने के लिए दाढ़ी बढ़ाकर और जटाएं रखकर योगी और ज्ञानी होने का ढोंग कर रहे हैं। सरल लोग आसानी से उनका शिकार बनकर उनका शिष्यत्व ले रहे हैं। इसलिए स्वामीजी ने भारतीय समाज के उत्थापन और उसमें फैली भ्रान्त धारणाओं को दूर करने के लिए पांच श्रेष्ठ पुस्तकें लिखी—वे हैं (1) ब्रह्मचर्य साधना (2) योगीगुरु (3) ज्ञानीगुरु (4) तांत्रिकगुरु और (5) प्रेमिकगुरु।

योगीगुरु परमहंसदेव की स्वहस्त लिखित दूसरी पुस्तक है। इस पुस्तक की विषयवस्तु मध्याह्न सूर्य की तरह स्वयं ज्योतिशील है। उचित मार्गदर्शन से इसमें बताई गयी साधनाओं का अवलंबन लेने पर हाथों हाथ फल मिलेगा, इसमें कोई संदेह नहीं है। यदि कोई उपयुक्त साधक मिले तो हमारा संघ भी उसकी सेवा करने को सदैव तत्पर है।

योगीगुरु हमारे संघद्वारा प्रकाशित छठी पुस्तक है। हिंदी का अपेक्षित ज्ञान न होते हुए भी हमने हिंदीभाषी जनता की सेवार्थ इसका प्रकाशन किया है। हम श्री प्रभाकर जी महान्ति के आभारी हैं जिन्होंने इसका हिंदी रूपान्तर परोपकाराय निःशुल्क किया। हम इसमें निःशुल्क आवश्यक संशोधन करके इसे सर्वांग सुन्दर बनाने के लिए श्री जगदीश जी चौहान के प्रति भी आभार व्यक्त करते हैं। इसके अतिरिक्त हम अपने संघ के भक्तों के आभारी हैं जिन्होंने इस काम में यथासंभव हमारी सहायता की है। हम इन सब के मंगल के लिए श्रीगुरुदेव के श्रीचरण में निवेदन कर रहे हैं। हमारे जैसे साधारण व्यक्तियों के करने से इस में त्रुटियों का रहना अवश्यम्भावी है। हमें आशा है कि विद्वान पाठक त्रुटियों के लिए हमें क्षमा करेंगे और स्वधर्म पालन का व्रत लेंगे। तभी हमारा श्रम सार्थक होगा।

किमधिक विस्तरेण।

नई दिल्ली,
माघ पूर्णिमा,
30 जनवरी, 1999

श्री श्री ठाकुर चरणाश्रित,
दुर्योधन प्रधान
(दुर्योधन प्रधान)
अध्यक्ष

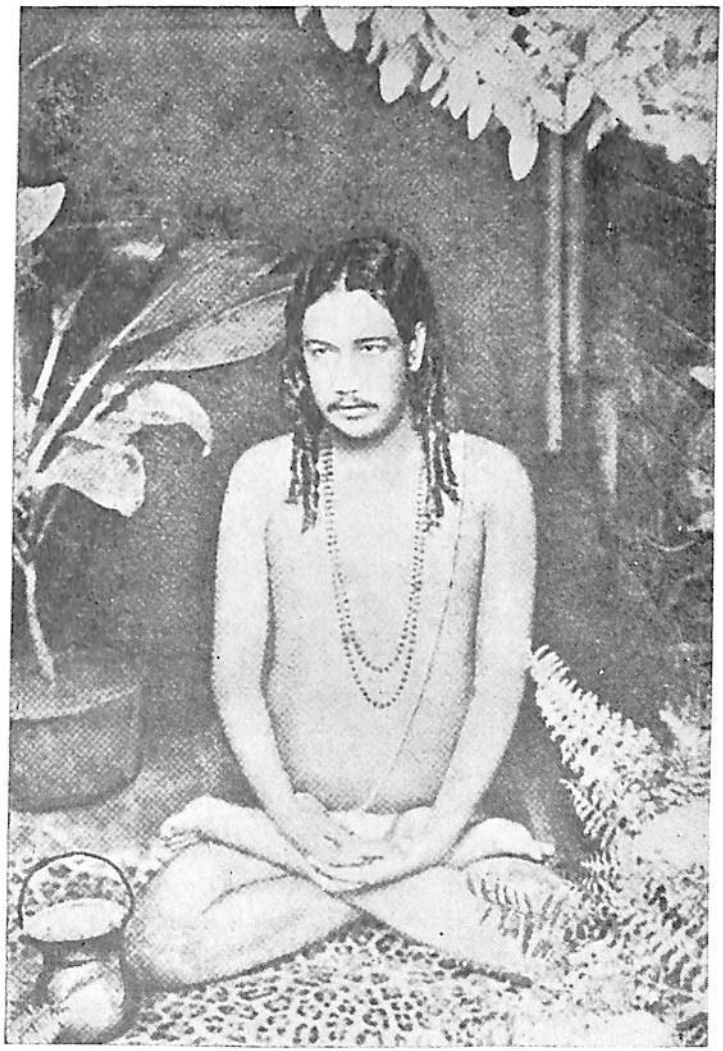

परिव्राजकाचार्य परमहंस
श्रीमत् स्वामी निगमानन्द सरस्वती देव

योगीगुरु
ॐ तत्सत्

उत्सर्ग

प्राणों के ध्रुव तारा
जीवन के एकमात्र आराध्य देव
उदासीनाचार्य श्रीमत् सुमेरुदास जी,

–गुरुदेव–श्रीचरण कमलेषु

गुरो !

मेरा प्रथम गुरु संसार अर्थात पिता, भाई, बहन, पत्नी, पुत्र, नानी, मौसियॉं, आत्मीयस्वजन हैं। क्योंकि उनके व्यवहार से मैंने समझा कि (ये सब) माया, ममता और स्वार्थ के दास हैं। स्वार्थ में हानि होने पर पिता पुत्रस्नेह को त्याग सकते हैं, भाई-बहन शत्रु बन सकते हैं, पत्नी और पुत्र छाती में छुरा घोंप सकते हैं, नानी और मौसियां जहर उगल सकती हैं तथा आत्मीयस्वजन पैरों से रौंद सकते हैं। संसार में किसी अभाव को महसूस न करने पर भी मुझे अलक्ष्य में मानो कोई बता देता था...''संसार में सभी स्वार्थ के दास हैं''। स्वार्थ से अंधे इन लोगों में से किसी ने भी नहीं देखा कि उनके व्यवहार से मेरे दिल पर क्या गुजर रही है। मैंने यह भी समझा कि रोग और शोक से मनुष्य के अस्थिपंजर टूट जाते हैं, शरीर का खून सूख जाता है और ग्रंथियाँ शिथिल हो जाती हैं। धीरे-धीरे मैंने समझा कि अमीर लोग गरीबों को देखने पर उनका मजाक उड़ाते हैं, भूखे लोगों या बीमारग्रस्त लोगों की कातर प्रार्थना को पागल का प्रलाप कह कर उनकी

बात को नजर अन्दाज कर देते हैं। किसी दुखियारी की लंवी सांस को देखकर उसे उसके पाप का फल कह कर उससे घृणा करते हैं। हाय ! मनुष्य का हृदय दया, माया, सहानुभूति और परदुखकातरता के स्थान पर केवल हिंसा, द्वेष, निष्ठुरता और परश्रीकातरता से भरा हुआ है। इसलिए पहली शिक्षा में ही संसार के प्रति मुझमें वितृष्णा पैदा हो गई। इसलिए कहता हूँ कि संसार मेरा प्रथम गुरु है।

द्वितीय गुरु–सावित्री पहाड़ के परमहंस देव जी श्रीमत् स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती हैं। जिस समय संसार की निष्ठुरता और काल के कठोर आघात से मैं छिन्नकंठ कबूतर की तरह लोट रहा था, आग से जले हिरन की तरह भाग रहा था, उस समय इन्हीं महात्मा की कृपा से मैंने शांति प्राप्त की। (इनकी कृपा से) मेरा भ्रम दूर हो गया और ऊंघ टूट गई। उन्होंने वेद, पुराण, संहिता, दर्शन, गीता और उपनिषद आदि शास्त्रों की सहायता से समझा दिया कि–"संसार के घात-प्रतिघात ही जीव के आध्यात्मिक उन्नति के कारण हैं। जीव सांसारिक सुख में मुग्ध होकर जगन्माता और परमपिता के चरण को विसार देता है। जीव में चैतन्य जगाने के लिए ही मंगलमय जगदीश द्वारा निष्ठुरता की सृष्टि हुई है। इतने दिनों बाद मैंने जीवन को सार्थक समझा। सामान्य चेष्टा से निगम के इस निगूढ़ अर्थ को समझ लेने के कारण उन्होंने खुशी से मुझे शिष्य के रूप में स्वीकार कर मुझे *निगमानन्द* नाम प्रदान किया।

तृतीय या अन्तिम गुरु आप हैं–

जिस समय मैं परमहंस देव जी के निर्देश पर मार्गदर्शक गुरु को ढूंढ रहा था, पूर्व जन्म की सुकृति से उस समय आपके चरणों के दर्शन हुए। आप की कृपा से मुझे नया जीवन और पूर्ण शान्ति प्राप्त हुई। अभूतपूर्व और विमल आलोक की शोभा देखकर मेरी नस-नस में प्रतिक्षण आनन्द की धारा छूट रही है। मनुष्य रस्सी में सांप का भ्रम होने की तरह सुख की आशा से व्यर्थ ही संसार में भटकता रहता है। आज मेरा अपना कोई घर बार अथवा खाने-पीने का ठिकाना न रहते हुए भी अक्षुण्ण मन से जीवन

को धन्य और प्रशंसनीय मानता हूँ। यदि सांसारिक ताप से पीड़ित कोई एक भी व्यक्ति पूर्ण सुख और शांति प्राप्त करने की कोशिश करता है, तो मैं अपना प्रयास सफल समझूंगा। ऐसी ही आशा से गुरु उपदिष्ट साधना और भजन के सुगम उपाय ग्रंथ के रूप में प्रकाशित कर गंगाजल से गंगा पूजा करने की तरह इसे आपके चरणों में अर्पित करता हूँ।

विदा लेते समय आप से मेरा निवेदन यह है कि आपके चरणों के सान्निध्य में रहते समय यदि कोई अपराध किया हो, तो 'संतान के शत अपराध पिता के पास क्षम्य है'–यह सोचकर मेरे अपराधों को क्षमा कर मुझे आशीर्वाद दीजिये–जिससे अजपा के शेष जप में आप का जप समर्पित कर सकूँगा। आगे प्रार्थना यह है कि जो मुझे 'अपना' समझते हैं, उन्हें साथ लेकर जिस प्रकार मैं अन्त में आप के परमपद में लीन हो सकूँ, आपके श्री चरणों में यही निवेदन है–

देवताया दर्शनंच करुणावरुणालयम,
सर्वसिद्धि प्रदातारं श्रीगुरुष्प्रणमाम्यहम।

सेवक
श्रीगुरुचरण

ग्रंथकार का निवेदन

नारायणं नमस्कृत्यं नरंचैव नरोत्तमम्
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदिरयेत।

श्रीमद गुरुनारायण के चरण युगल से निसृत अमृत के पान से आनन्दित होकर उन्हीं की कृपा से नवीन उत्साह से इतने दिनों बाद योगी गुरु पुस्तक का लोकार्पण करता हूँ।

हमारे देश में सही योगशास्त्र अथवा योग के उपदेष्टा गुरु नहीं हैं। क्या कोई ऐसा व्यक्ति है जो पातंजल दर्शन के योग शास्त्र अथवा शिव संहिता, गोरक्ष संहिता, याज्ञवल्क्य संहिता आदि योग शास्त्र के नाम से जो कुछ प्रचलित हैं, उनमें प्रदर्शित उपायों से साधना में प्रवृत्त करा कर प्रत्यक्ष फल दिखा सकें ? सिद्ध साधक से उपदेश प्राप्त किये बिना किसी में साध्य नहीं कि वह योग तंत्र और स्वरोदय शास्त्र को समझ सके। कोई कितना बड़ा पण्डित क्यों न हो, अपने पाण्डित्य के बल पर इन शास्त्रों को समझने की शक्ति किसी में नहीं है। योगी गुरु भी बिरले ही हैं—यदि कहें कि गृहस्थों में बिल्कुल नहीं हैं, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। मैं अनेक दिनों तक तीर्थ स्थानों और पहाड़ी क्षेत्रों में अनेक साधुओं और संन्यासियों का अनुसरण करके अच्छी तरह जान पाया हूँ कि आजकल लंबी जटाएं धारण कर जितने संन्यासी दीख पड़ते हैं, उनमें से हजारों में एक भी योगी या तांत्रिक साधक मुश्किल से है। अनेक लोग भूख की पीड़ा मिटाने का कोई दूसरा उपाय न देखकर संन्यास लेते हैं। पहले तो उनमें साधना के प्रति प्रवृत्ति ही नहीं होती, परन्तु कुछ जादू टोना और ऐन्द्रजालिक विद्या

सीखकर वे आम जनता की आँखों में धूल झोंकते हुए निश्चिंत होकर बिना कोई श्रम किये अपना पेट पालते हैं। हमारे क्षेत्र में एक कहावत है, "गोत्र खोये तो काश्यप और जाति खोये तो वैष्णव"। मैं अब इस बात में छिपे सत्य को समझ सकता हूँ। वास्तव में आज कल गृहस्थों अथवा संन्यासी संप्रदायों में योगीगुरु बिरले ही मिलते हैं और जो हैं भी, उनकी दौड़ प्राणायाम तक ही है। वह भी मुझे नहीं लगता कि उन्होंने इसकी उपयुक्त शिक्षा ले भी रखी है या नहीं। आजकल देश के गौरव के रूप में किन्हीं विद्वान व्यक्तियों ने दो-चार योग शास्त्रों का प्रकाशन अवश्य किया है, परन्तु उनमें उनकी विद्या और बुद्धि तथा कवि के कृतित्व के अतिरिक्त साधना पद्धति के कोई सुगम उपाय देखने को नहीं मिलते। व्यवसायियों के विज्ञापन के प्रलोभन से साधना के इच्छुक कोई-कोई वह सब पुस्तकें खरीद कर पढ़ते हैं। पढ़ने के बाद जब वे समझ पाते हैं कि "कुंजी श्रीगुरु के हाथ में है" तब बेकार में पैसा खर्चने से उन्हें जो मनस्ताप होता है, उसके कारण वे अशान्ति भोगते हैं। कोई-कोई इन पुस्तकों में प्रदर्शित उपायानुसार प्राणायाम आदि करते हैं और उससे तकलीफ उठाने के साथ अपने शरीर को भी काफी नुकसान पहुंचाते हैं। अनेक महापुरुषों द्वारा परंपरा के क्रम से प्रकाशित ज्ञान गरिमा को यदि एक ही चुल्लू से पेट में डालने की कोशिश करोगे तो परमार्थ की प्राप्ति होना तो दूर, इससे अनर्थ ही पैदा होगा—यह ध्रुव सत्य है।

'योग' समस्त साधनाओं का मूल और सर्वोत्कृष्ट साधना है। प्रसन्नता की बात है कि आज कल अनेक लोगों में योगसाधना के प्रति रुचि दिखाई देती है। परन्तु रुचि होने से क्या होगा ? उसका उपदेश या शिक्षा कौन देगा ? गुरु के बिना इस निगूढ़ पथ का मार्गदर्शन कौन करेगा ? आज कल जो सब व्यवसायी गुरु दिखाई देते हैं वे व्यवसाय की खातिर मंत्रदान करते जा रहे हैं। उनमें शिष्य का अज्ञान रूपी अंधकार को दूर कर दिव्यज्ञान प्रदान करने की क्षमता नहीं है। इसलिए एक अंधा दूसरे अंधे को रास्ता दिखायेगा भी कैसे ? वरन अनेक मामलों में पता चलता है कि पैतृक गुरु की तुलना में शिष्य अधिक ज्ञानी है। फिर शास्त्रों में योग के जो सब उपाय बताये गये हैं यदि कोई योगी गुरु हाथों हाथ वह सब नहीं

सिखायेंगे तो उसका कोई लाभ मिलना दूभर है। एक और बात है कि कलियुग में जीव की आयु बहुत कम है और वह दुर्बल है। विशेष कर 24 घंटे जी तोड़ मेहनत करने पर भी अनेक लोग खाने-पीने का जुगाड़ नहीं कर पाते। ऐसी हालत में यदि सदगुरु मिल भी जायें तो भी अष्टांग योग साधना के कठोर नियम, संयम और प्रणायाम आदि शारीरिक और मानसिक परिश्रम तथा अभ्यास के लिए लंवा समय किसी के पास नहीं है। इन सब बाधाओं के कारण यदि किसी में साधना की प्रवृत्ति है भी तो भी वह पक्के बेल पर कौए के चोंच मारने की तरह व्यर्थ जाता है। इस ग्रंथ के प्रकाशन का उद्देश्य इन सब अभावों और वाधाओं को दूर करना है। मैंने संसाराश्रम का त्याग कर अनेक दिनों तक इधर उधर भटकने के बाद जगदगुरु भूत-भावन भवानीपति शिवजी की कृपा से सदगुरु पाया और उनकी कृपा से लुप्त होने वाली गुप्त योगसाधना के सहज और सुख-साध्य उपाय सीखे हैं। अनेक दिनों तक उन सब उपायों पर क्रिया करके उसका प्रत्यक्ष फल भी पाया है। इसलिए आज भारतवासी साधक भातृवृन्द के हितार्थ कृतसंकल्प होकर इस ग्रंथ का प्रकाशन कर रहा हूँ।

शास्त्र असीम, ज्ञान असीम और साधनाएं अनन्त हैं। मैंने जो सब साधनाएं और कौशल सीख रखे हैं, उन सब पर चर्चा और खोज करना व्यक्तिगत क्षमता के बाहर है। क्षमता के अन्दर हो भी तो उनका मुद्रण नहीं करने से उससे सर्व साधारण का भला कैसे होगा ? मेरा तो "अदृयर्भक्ष्यो धनुर्गुणः।" मुद्रित करने के लिए मुद्रा चाहिए। विशेषकर नेति, धौति, वस्ति, नौलिकी, कपालभाति और गजकारिणी आदि हठयोग की साधनाएं गृहत्यागी साधु सन्यास्यिों को ही शोभा देती हैं। अन्न के लिए हाहाकार मचाने वाली इस दुनिया में नौकरी करके जीविका निर्वाह करने के लिए समय नहीं मिलता, तो साधना के लिए समय और नियमों का पालन कैसे किया जाये। फिर देशवासियों के पास हठयोग आदि साधना के उपयोगी शरीर भी नहीं है। एक और बात है कि योग साधना की कुछ ऐसी क्रियायें हैं जिन्हें मौखिक रूप से बताने के साथ-साथ हाथों हाथ नहीं दिखाने से वह सब कलम की सहायता से नहीं समझायी जा सकती। वह

सब गुप्त विषयों का प्रकाशन कर व्यर्थ ही पुस्तक का आकार बढ़ाना अथवा बहादुरी दिखाना इस ग्रंथ प्रकाशन का उद्देश्य नहीं है। फिर भी यदि किसी में साधना के प्रति प्रवृत्ति होती है और वह कृपा करके इस ग्रंथकार के पास पहुंचता है तो परीक्षा द्वारा उसे उपयुक्त समझने पर मैं उसे यत्न के साथ सीखा देने के लिए तैयार हूँ।

कलियुग में दुर्बल, अल्पायु और अन्न के जुगाड़ के लिए अनियमित श्रम करने वाले मनुष्यों के लिए योगेश्वर जगद्गुरु महादेव ने सहज और सुख साध्य लययोग का विधान किया है। प्राणायाम आदि सही अर्थ में योग नहीं है। ये सब योग साधना के विशेष अनुकूल और सहायक मात्र है। परन्तु इनमें अनियम और वायु का व्यतितक्रम होने पर हिक्का, श्वास, खांसी और नेत्र, कान तथा मस्तक में पीड़ा आदि तरह-तरह के रोग पैदा होते हैं। इन सब बातों पर विवेचना करके मैंने योग साधना के कुछ सहज साध्य उपाय इस पुस्तक में प्रकाशित किये हैं। यदि जनसाधारण इनमें से किसी एक भी क्रिया का अनुष्ठान करेंगे, तो प्रत्यक्ष फल प्राप्त कर सकेंगे। परन्तु लिखित नियम और उपदेश के अनुसार कार्य करना चाहिये। अपने आप उस्तादी दिखाकर और Principle का प्रयोग करने पर कोई लाभ नहीं होगा। किसी भी एक क्रिया का नियमित अभ्यास करने पर क्रमशः शरीर स्वस्थ और निरोग होगा, मनको असीम आनन्द और शान्ति मिलेगी, शरीर में स्थित कुल कुण्डलिनी शक्ति का चैतन्य तथा आत्मा की मुक्ति होगी।

योग की साधना करनी हो तो शरीर तत्त्व और शरीर में स्थित चक्रों आदि की अच्छी जानकारी होनी चाहिए, अन्यथा साधना से कोई लाभ नहीं होगा। परन्तु इस सब का ज्यों का त्यों वर्णन करना हो, तो काफी बड़ी पुस्तक बन जायेगी। उसके लिए इतना लंबा समय और हजारों रुपये मैं कहाँ से लाऊं ? फिर भी साधना के कुछ कौशल प्रदर्शित किये हैं। उन सब क्रियाओं को करने वाले साधकों के लिए जितनी बातें जाननी आवश्यक है वह यथास्थान लिखी गई है। फिर भी यदि किसी को कोई बात समझ में नहीं आती अथवा दिक्कत होती है तो मेरे पास आने अथवा पत्राचार करने पर मैं उसे स्पष्ट कर दूंगा।

स्वधर्मनिरत पाठकों में से अनेक लोग मंत्र का जाप करते हैं। परन्तु मंत्र का जाप करके भी कोई सिद्धि प्राप्त नहीं कर पाता। उसके क्या कारण हैं ? मंत्र जप का रहस्य और जप को समर्पित करने की विधि के बिना मंत्र की सिद्धि नहीं होती। इसलिए जप का फल प्राप्त करना असंभव है। विधिपूर्वक जप के रहस्य आदि का क्रियान्वयन नहीं करने और मंत्र के प्राण रूपी मणिपुर चक्र में उसकी क्रिया नहीं करने से मंत्र का चैतन्य नहीं होगा। इसलिए प्राणरहित शरीर की तरह प्राणहीन मंत्र का जप करने से कोई लाभ नहीं होगा। यह मेरी मनगढन्त कहानी नहीं है—इस संबंध में शास्त्र की उक्ति इस प्रकार है—

"चेतन्यरहिता मंत्राः प्रोक्तवर्णास्तु केवलाः,
फलं नैव प्रयच्छन्ति लक्षकोटि जपैरपि।

—तंत्रसार

अचैतन्य मंत्र केवल वर्ण ही है। अचैतन्य मंत्र का लाखों जाप करने पर भी कोई लाभ नहीं होता। तब तो देखिये कि माला और झोला लेकर केवल बाह्य आडम्बर और अनुष्ठान करने पर मंत्र के जप से लाभ कैसे होगा ? परन्तु ऐसे कितने गुरु हैं जो गुरु दीक्षा के साथ शिष्य को मंत्र के चैतन्य का उपाय सिखाते हैं ? हो सकता है स्वयं गुरु देव को उसकी जानकारी नहीं हो। इसके परिणामस्वरूप गुरु प्रदत्त उस नीरस और शुष्क मंत्र का यथासाध्य जप करके भी बेचारा शिष्य जिस अंधकार में था, उसी अंधकार में रहता है। उसके हृदयक्षेत्र की अवस्था ज्यों की त्यों रहती है आज कल इस तरह के गुरुदेववृन्द कहते हैं "कलियुग में मनुष्य साधु और गुरु को नहीं मानते।" परन्तु, वे इस बात को स्वीकार नहीं करते कि यह सब उनकी अपनी त्रुटियों के कारण होता है।* केवल मंत्र देकर नियमित रूप से वार्षिक पावती चन्दा लेकर कृतकृत्य होने से भक्ति रहेगी भी कैसे ? विद्या, बुद्धि, आचरण, व्यवहार, आहार, विहार सांसारिकता अथवा क्रियाकर्म में शिष्य से गुरुदेव की कोई भिन्नता नहीं है। गुरु में शिष्य के

---

* मंत्र देकर विधिपूर्वक मंत्र का चैतन्य कराकर प्रत्यक्ष फल दिखाने से बुलन्द आवाज से कहता हूँ कि बहुत ही पाखंडी व्यक्ति के हृदय में भी भक्ति का संचार होगा।

अज्ञान रूपी अंधकार को दूरकर संसार के त्रिताप रूपी विष को नष्ट करने की एक कौड़ी की भी क्षमता नहीं है, ऐसी स्थिति में उनके प्रति प्रीति, भक्ति और आदर रहेगा भी कैसे ? इन सब बातों पर सोच विचार कर जापकों की भलाई के लिए मंत्र चैतन्य का सहज और सुगम उपाय अंतिम कल्प में दिया गया है। साधकगण जप के रहस्य से अवगत होकर उस कल्प में उल्लिखित प्रणाली के अनुसार क्रियानुष्ठान करने से मंत्र चैतन्य अवश्य होगा और वे जप में सिद्धि प्राप्त कर सकेंगे।

इस ग्रंथ का प्रतिपाद्य विषय मेरी पोथीगत विद्या नहीं है। श्री श्री गुरुदेव की कृपा से जो सब क्रियानुष्ठान करके मैंने कामयाबी पाई है, उनके आदेशानुसार उनमें से कुछ एक सहज और सुखसाध्य प्रक्रियायें इसमें शामिल की गई हैं। अब पाठकों से विशेष अनुरोध है कि अपने आप शास्त्र पढ़कर अथवा किसी की चिकनी-चुपड़ी बातों में आकर उसके उपदेशानुसार साधना में प्रवृत्त मत होइये। अनाड़ी व्यवसायियों के उपदेश से क्रियानुष्ठान करने से कोई लाभ नहीं होगा। वरन विहित कर्मों का अनुष्ठान नहीं करने से जो पाप होता है, वह पाप लगता है। तिस पर दमा और खांसी आदि कठिन रोगों का शिकार बनकर हमेशा के लिए साधना और भजन करने की आशा पर पानी फिर जायेगा और आप असमय ही मौत की गोद में चले जायेंगे अथवा स्वअर्जित रोग से आजीवन तकलीफें उठानी होंगी। इस ग्रंथ में योग की जो क्रियायें शामिल की गई हैं, वह सब बहुत ही सहज, सुखसाध्य और सिद्ध योगियों द्वारा अनुमोदित हैं। इनमें से किसी एक भी क्रिया को करने से निरोग होकर प्रसन्नतापूर्वक दिन प्रति दिन मुक्ति के पथ पर अग्रसर हो सकेंगे। फिर भी जो लोग अज्ञान से मलिन इस पृथ्वी में पूर्ण ज्ञान की विमल ज्योति देखना चाहते हैं, उनकी महत्वाकांक्षा अचंचल और अनन्त धारा युक्त सूर्यमंडल के मध्यवर्ती महा आलोकमय महापुरुष के सान्निध्य के अतिरिक्त इस छोटी सी पुस्तक से पूरी नहीं हो सकती।

पहले पहल वायुधारण का अभ्यास करते समय आंख, कान, पंजर की अस्थियों और सिर में दर्द अनुभूत होता है। यहां तक कि श्वास और खांसी के लक्षण भी प्रकट होते हैं। हठयोग आदि में इस तरह के रोग पैदा होने की सम्भावना रहती है, परन्तु इस ग्रंथ में शामिल साधनाओं में उसकी

कोई आशंका नहीं है। फिर भी स्वरकल्प में शरीर को स्वस्थ, निरोग और दीर्घजीवी तथा हृष्ट-पुष्ट करके उसमें तेज लाने के उपाय दर्शाये गये हैं। पाठक इसका परीक्षण करने पर ही सच्चाई जान सकेंगे।

मनुष्य भ्रम और प्रमाद का दास है। तिस पर यदि मैं कहूं कि मेरे पास विद्या और बुद्धि की पूंजी भी नहीं, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। मेरे पास हमेशा शिक्षित और अशिक्षित अनेक लोग आते रहते हैं। उनसे बातचीत करते समय और इलाहाबाद में आयोजित कुम्भ मेले में भाग लेने की तैयारी की जल्दी में मैंने इसकी पाण्डुलिपि लिखी है। इसलिए इसमें त्रुटियों का रहना अवश्यंभावी है। यदि हंसधर्मी जापक और साधक त्रुटियों का त्याग कर अपने काम में सफल होंगे तो इस अदने से ग्रंथकार को भी खुशी होगी।

असम प्रांत के गोरोहिल की हाजं वस्ती में रहने वाले मेरे परमभक्त और पुत्र के समान श्रीयुत् सीताराम सरकार और श्रीयुत् मदन मोहन दास ने मन, वचन और कर्म से श्रम दान और आर्थिक सहायता के द्वारा मेरे साधना कार्य में जिस तरह योगदान किया है, उसे व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। मेरे द्वारा उनके उपकार का प्रत्युपकार करना संभव नहीं है। दूसरों की दया पर अपना गुजारा करने वाले इस भिखारी का आजकल आशीर्वाद ही सम्बल है। इसलिए मन, वचन और कर्म से आशीर्वाद देता हूँ कि माँ दाक्षायणी की कृपा से उक्त दोनों सज्जन स्वस्थ और कार्यक्षम शरीर में दीर्घायु बनकर वैषयिक और आध्यात्मिक उन्नति की बुलन्दी तक पहुंचे।

पातिलदह परगना के तहसीलदार और मेरे प्रियभक्त श्री उमाचरण सरकार और उसकी धर्मपत्नी श्रीमती हेमलता देवी ने इस ग्रंथ के प्रकाशन में जिस तरह हर दृष्टि से मेरी देखभाल और सहायता की है, उसे व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। वास्वत में यदि मुझे उनकी सहायता नहीं मिलती तो इस ग्रंथ को प्रकाशित करना मेरे लिए असंभव हो जाता।

इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए मुझे अनेक शिक्षित लोगों की ओर से भी प्रोत्साहन और आर्थिक सहायता मिली। उनमें हरिपुर के ख्यातिप्राप्त जमींदार, आश्रित पालक, स्वधर्मनिरत, अकपट हृदय और मेरे अकारण

मित्र श्रीयुत शारदाप्रसाद सिंह ने शुरू से आखिरी तक जिस तरह मेरी सहायता की और मेरे प्रति सहानुभूति दिखाई, वह अवर्णनीय है। हरिपुर के निवासी वकील उदार हृदय बाबू ललित मोहन घोष, बी.एल., प्रवेशिका विद्यालय के प्रधान शिक्षक बाबू अन्नदाप्रसाद वन्दोपाध्याय, एम.ए., संस्कृत के अध्यापक मृदुभाषी श्रीयुत् अघोरनाथ भट्टाचार्य, काव्यतीर्थ, पोस्टमास्टर बाबू महेन्द्र नाथ सेन आदि शिक्षित महानुभवों ने स्वतः प्रवृत्त होकर मेरी पर्याप्त सहायता की है। मैं कृतज्ञ मन से मां सर्वमंगला से उनके सर्वांगीन मंगल की कामना करता हूं।

विदा लेते समय पाठकों से मेरा विनम्र निवेदन है कि यदि वे इस अदने से ग्रंथकार की गलतियों को माफ कर अपने साधना कार्य में आगे बढ़ेंगे, तो मेरी सारी आशाएं पूरी होंगी और मेरा श्रम सार्थक होगा। मैं नाम या यश नहीं चाहता हूं। आज कल समाज में बदनामी का भी अभाव नहीं है। परन्तु मुझे उससे डरने की आवश्यकता नहीं है। इस धर्म विप्लव के समय यदि एक भी साधक मेरे द्वारा बतायी गई क्रियाओं के अभ्यास से सफलता प्राप्त कर सकेगा तो मेरा लेखनी धारण करना सार्थक होगा और गृह और अन्न रहित होते हुए भी मैं अक्षुण्ण मन से जीवन को धन्य समझूँगा।

–निवेदन इति

गारोहिल योगाश्रम,
पौष 10, बड़ा दिन,
1312, बंगाब्द

भक्त पदारविन्द भिक्षु,
दीन-श्री निगमानन्द

वाणी आवाहन*

मरा मरा सुराराध्या वरदासि हरिप्रिये।
मे गतिस्त्वतपदाम्बुजं वागदेवीं प्रणमाम्यहंम।।

गीत
(राग भैरवी एकताल)
कुरु करणा जननी
सरोजिनी श्वेत सरोज-वासिनी।
अमल धवल उजलभाति
श्रीमुखे जड़ित तड़ित ज्योतिः
चांचर चिकुरे, चूड़ा शिरोपरे, फुल्लारविन्दलोचनी

शोभिछे कर्णेते कनक कुण्डल, सौदामिनी जिनिकरे ढलमल
झलसे ताहाते मानिक मण्डल, गजमति मतिहार,
सुचारु द्विभुज मृणाल गंजिता,
वीणा यंत्र करे, करे सुशोभिता।
कत शोभाकरे, नखर निकरे, प्रभाकर कर जिनि

चरणे तरुण अरुण किरण, लाजे द्विजराज लयछे शरण
हंस परे राखि युगल चरण, दाण्डाये त्रिभंग ठामे
तोमारि कृपाय कवि कालिदास

---

* बंगला में मूल रूप में

वेदविभाग क'रे नाम वेदव्यास
पुराओ अभिलाष नलिनेर भाष, नृत्यगीत रूपिणी।

प्रणमामि पदाम्बुजे अम्बुज वासिनी,
सुरासुर नराराध्या, विद्या विधायिनी,
आमि हीन दीन सत्त्व,
कि बुझिव तव तत्त्व–
गीर्वाण गणेश यार नाहिं पान सीमा
मूढमति आमि अति, ना जानि महिमा।

शुन मा प्राणेर उन्मादन आकुलता–
तोमा बिना कार काछे जानाइव व्यथा ?
विधिर विचित्र विधि,
साध्य नाहि आमि रोधि,
मम गति ये श्रीपति, ताहार विधाने
सौधराजि त्यजि आजि निवास श्मशाने।

नेमिनी चक्रेर मत अदृष्ट नियत,
कर्म सूत्र फले हइतेछे विघूर्णित।
विधिर निर्वन्ध याहा,
निश्चय फलिवे ताहा,
सुख दुख सम भावि ताहे नाहि खेद,
चरमे समान गति नाहिक प्रभेद

शान्ति सुख नाई मागो भवेर विभवे–
प्रकृत सुखेर मुख देखियाछि एवे।
गाये चिता भस्म माखि
'मा मा' बले सदा डाकि
नीरव निशिथे शुनि अनाहत नाद

कतई उपजे मने अमल आल्हाद।

अन्ते येन पाई आमि श्री हरिचरण
पार्थिव पदार्थ मोर नाहिं प्रयोजन।
ख्याति प्रतिप्रत्ति आशा।
प्रीति प्रेम भालवासा
माया मोह दया धर्म, दिछि विसर्जन
हृदय श्मशान सम भीतिर कारण।

मरु सम ए विषम आमार हृदय
आशार अंकुर केन ताहाते उदय ?
उदासीन धर्म नय
दुराशार अभ्युदय
धैर्य, बाँधे रोधिवारे नारि आशा नदी
सवेगे हृदय क्षेत्रे वहे निरवधि

लुप्त प्राय गुप्त शास्त्र करिते प्रकाश।
हयेछे आमार मने बड़ अभिलाष
श्रीगुरु कृपा बले
सिद्ध योगीगण स्थले।
योग साधनेर यत सहज कौशल
बहु दिन घुरे घुरे करेछि संबल

सेई सब सुख साध्य साधन पद्धति
प्रचार करिते साध सुन मा भारती
किन्तु कोन गुण भरे
लेखनी करेते धरे
शिवोक्त शास्त्रेर कथा करिव प्रचार ?
विद्या बुद्धि विवर्जित आमि दुराचार।

तवे केन असंभव आशा करि मने
खञ्जेर दुराशा यथा हिमाद्रि लंघने ?
जंवुक-शंवुक कवे
सिंह नक्रे विनाशिवे
तथापि हतेछि केन दुराशार दास ?
असंभव मरु भूमे कमल विकाश।

याहादेर उपकार साधिबार तरे
साधन पद्धति लिखि सानन्द अन्तरे
सेई वंग भ्रातागण
करि पुस्तक पठन
कौतुके हासिवे आर दिवे करतालि
कोन नीचाशय दिवे मुखे गालागालि

नाहि ए धराय एक बिन्दु अश्रुजल
खल पिशाचेते परिपूर्ण भूमण्डल
केह याक् अधः पाते
कारो क्षति नाहि ताते
हिंसुक पाषण्ड यत परश्रीकातर
पापे परिपूर्ण सब वाहिर अन्तर।

मदगर्वे स्फीत वक्षे भ्रमये संसारे
दुर्वल देखिले सुखे पदाघात करे
देखिभवे अविरत
दुखी तापी जन कत
आछे एई विश्वमाझे संख्या नाहि तार
मनोदुःखे मुह्यमान मन सवाकार

निराशाय निपीड़ित हईया जननि
डाकि मा कातरे तोरे माधव मोहिनी।
यार पाने मुख तुलें
चाओ तुमि कुतुहले
तार कि अभाव मातः ए भव भवने
साक्षी तार कालीदास भारत गगने।

तोमार प्रसादे महादस्यू रात्नाकर
लभिया भास्वर ज्ञान हल कवीश्वर
ताई मा तोमारे डाकि
हृदि माझे एस देखि
चरणे सौंपिया मन धरि मा लेखनी
विद्रुपेर भये भीत नहे ए पराणी।

कातरे करुणा मातः कर निजगुणे
कृपा सिन्धु फुरावे ना विन्दु वितरणे
वंगेर गौरव रवि
श्री मधुसूदन कवि
घ-ए रफला ई दिया घृत लिखिया से
तोमार प्रसादे काव्य प्रकाशित शेषे।

ताई मां भारती तोमा करेछि शरण
अवश्य हइवे मम वासनापूरण
मने हय यार याहा
सुखेते वलूक ताहा
धैर्य शिक्षा करिव मां तोर कृपा वले
उपेक्षा करिव सर्व वचन कौशले।

देह दिव्यज्ञान दासे अज्ञान नाशिनी
कुयश सुयशे येन ना टले पराणी
सुख दुख सम ज्ञाने
रव स्वकार्य साधने
नित्य निरंजने भावि नित्यानन्द पाव
सर्वजीवे ब्रह्मभावे सदा निरखिव

आर एक कथा मागो निवेदि चरणे
विरह विधुर मम आत्मीय स्वजने
देह दिव्यज्ञान दिया
दिव्य पथ दिखाइया
हतभागा तरे येन नाहि पान व्यथा
रेख मा भारती ! शेष किंकरेर कथा

सेवाकाधम
श्री नलिनीकान्त

योगीगुरु

प्रथम भाग

योग कल्प

योगीगुरु

ग्रंथकार द्वारा साधना पद्धति संग्रहण

नमः शिवाय शान्ताय कारणत्रय हेतवे।
निवेदयामिचात्मानं त्वं गतिः परमेश्वर ॥

भूतभावन भवानीपति शिवजी के भवभय को दूर करने वाले तथा भक्त हृदय को प्रसन्न करने वाले चरणयुगल का स्मरण और उनके पदचिह्न का अनुसरण करते हुए ग्रंथ को आरंभ करता हूँ।

जगतपिता विधाता के जगत में सब जगह एक नियम है—चिर दिन समान नहीं जाते। आज जो ऊँचे महल में सुख से सो कर चार तरह के रसों (चव्य, चोष्य, लेह्य, पेय) का आस्वादन करते हुए चटखारे ले रहा है, कल वह पेड़ के नीचे आश्रय लेकर एक कौर अन्न के लिए दूसरे के द्वार पर खड़ा होता है। जो पिता आज पुत्र के जन्मदिन में खुले हाथ हजारों रुपये खर्च कर अपने आपको भाग्यवान समझ रहा है, कल वह उस नयनाभिराम पुत्र के मृतशरीर को छाती से लगाकर शमशान में लोट कर छिन्नकंठ कबूतर की तरह छटपटा रहा है। आज जो विवाह के अवसर पर नई नवेली बालिका वधू के चेहरे पर नजर गड़ाकर भावी सुख से विभोर होकर खियाली पुलाव पका रहा है, कल वह प्राणप्रिय उस प्रियतमा को किसी दूसरे की प्रेमिका जानकर प्राण त्यागना चाहता है। आज जो पलंग पर प्रियपति के पास बैठ कर प्रेम के प्रवाह से तनमन को तृप्त कर रही है, कल वह बिखरे बाल और मैले कुचैल कपड़ों में पगली की तरह मृत पति के पास गिरकर धूल में लोट रही है। दूसरे देश के लोग जिस समय उलग्न अवस्था में वृक्ष के कोटर और पहाड़ी गुफाओं में निवास कर कषैले

कन्द और जड़ीबूटी खाकर अपनी भूख मिटा रहे थे, उस समय आर्यावर्त्त में आर्यगण सरस्वती के किनारे बैठकर मधुर स्वर से शाम गान कर दिशा दिशाओं को प्रतिध्वनित कर रहे थे। काल के क्रम से इस्लाम का अभ्युदय होने के कारण देश में उथलपुथल मचने के परिणामस्वरूप हिन्दू अपनी स्वतंत्रता खोने के साथ-साथ विपुल ज्ञान की गरिमा, आर्य, वीर्य, आचार, व्यवहार और धर्म से विच्युत हुए। भारत के आकाश पर अज्ञान का अंधेरा छा गया। वीर्य और ऐश्वर्यशाली आर्यगण आखिरकार हर बात में पूरी तरह दूसरों के मुँह की ओर ताकने लगे। क्रमशः मुसलमान राज समाप्त हो कर अंग्रेजों का आधिपत्य बढ़ा। पाश्चात्य शिक्षा से हिन्दुओं का मस्तिष्क विकृत हो गया और वे गुमराह हो गये। जो हिंदू कितने युगों से विमल और स्निग्ध किरण बिखेरते आ रहे हैं कितने अतीत समय से इस धर्म पर चर्चा, खोज, और इसमें साधनाओं के रहस्य उजागर कर रहे हैं, कितने वैज्ञानिक, दार्शनिक इस संबंध में वादविवाद और तर्क वितर्क कर चुके हैं, उसी सनातन धर्म के आश्रित उन हिंदुओं को वर्त्तमान युग के सभ्य, शिक्षित पाश्चात्य निवासी तथा पाश्चात्य शिक्षा से अपने मस्तिष्क को विकृत करने वाले भारतवासियों में से अनेक लोग पौतलिक, जड़ के उपासक और कुसंस्काराछन्न कह कर उनका मजाक उड़ा रहे हैं। चूंकि हिंदू धर्म की बुनियाद दृढ है, इसलिए वर्त्तमान युग में राष्ट्र विप्लव और धर्म विप्लव के समय भी अनेक अत्याचारों को सहन करके भी यह जी रहा है।

मैंने पहले ही बताया है कि 'चिर दिन समान नहीं जाते'। समय बदल चुका है। इस समय हिंदुओं के मन में ज्ञान, धर्म और स्वतंत्रता प्राप्ति की लालसा जाग चुकी है। हिंदु अब समझ पाये हैं कि इस वैचित्र्यपूर्ण सृष्टिराज्य की सीमा कहां है ? हिन्दू धर्म गंभीर और सूक्ष्म आध्यात्मिक विज्ञान द्वारा समर्थित दार्शनिकता से पूर्ण है। हिन्दू धर्म के निगूढ़ मर्म को थोड़ा-थोड़ा समझ कर पाश्चात्य जड़ विज्ञान की सिटीपिटी गुम हो जाती हैं। हिन्दू धर्म में दिन प्रतिदिन जिस तरह की उन्नति हो रही है, उससे आशा की जा सकती है कि थोड़े ही दिनों में इसकी मधुर ज्योत्स्ना से समूचा राष्ट्र और मानव समाज उद्भासित और प्रफुल्लित हो उठेगा। आजकल हिन्दू सन्तान हिन्दू शास्त्रों पर विश्वास कर रही है, हिन्दू धर्म

को मान रही है और हिन्दू मत में उपासना कर रही है। स्कूल और कालेज के छात्रों से लेकर अनेक युवकों और प्रौढ़ व्यक्तियों में साधना और भजन के प्रति रुचि दिखाई देती है। परन्तु उपयुक्त उपदेष्टाओं के अभाव में किसी को भी साधना का सही रास्ता नहीं दिखाई दे रहा है। हमारे देश के ख्यातिप्राप्त पण्डित लोग साधना के लिए जिस तरह की पाबन्दियों की बात करते हैं उससे साधना में प्रवृत्त होना तो दूर, उसे सुनते ही उस आशा को हमेशा के लिए तिलांजलि देनी पड़ती है। वे धर्म और कर्म की इस तरह लंबी चौड़ी सूची बनाते हैं कि आजीवन कष्ट से अर्जित धन का व्यय कर भी उसे पूरा करना अनेक लोगों के लिए टेढ़ी खीर है। धर्म करना हो तो बाल बच्चों को छोड़ना होगा, धन दौलत को तिलांजलि देनी होगी, घर-बार छोड़ना होगा, भूखा रह कर शरीर को सूखाना होगा, संन्यासी बनकर पेड़ के नीचे आश्रय लेकर सर्दी और गर्मी का ताप सहन करना होगा—वरना भगवान की कृपा नहीं होगी। धर्म के लिए इतनी विडंबनाएं भोगनी होती है, यह तो बड़े ही आश्चर्य की बात है। मैं जानता हूँ सुख के निमित्त ही धर्माचरण है। शास्त्र में भी इस बात का प्रमाण मिलता है।

सुखं वांछति सर्वोहि तच्च धर्म समुद्भवम।
तस्माद्धर्मः सदा कार्यः सर्ववर्णैः प्रयत्नतः॥

—दक्ष संहिता

तब देखिये, धर्माचरण का उद्देश्य है सुख प्राप्त करना। भूखा रह कर और धन का व्यय कर शारीरिक और मानसिक कष्ट भोगना अज्ञानता का परिचायक है। खेद की बात है कि घर में पर्याप्त भोजन रहते हुए भी उपवास में समय बिताना पड़ता है। हमारे पास असंख्य शास्त्र है और साधना कौशल भी असंख्य है। हम साल भर में भाद्रपद के महीने में शास्त्रों को एक बार धूप में सूखाकर उनकी गठरी बनाकर रख देते हैं और सूखे मुँह से दूसरों की ओर ताकते रहते हैं अथवा किसी विकृत साधना में हाथ देकर विडम्बनाएं भोगते हैं। वरना कलियुग के कंधे पर सारा दोष मढकर निश्चित हो जाते हैं। पाठको ! मैंने किस प्रकार विडम्बनाएं भोग कर अन्त में सर्वमंगलमय सत्य स्वरूप सच्चिदानन्द सदाशिव की कृपा से सदगुरु प्राप्त किया, वह बात आप को बताये बिना प्रतिपाद्य विषय का

वर्णन नहीं कर सकूंगा।

उस समय मेरी आयु 23 वर्ष की थी। मैं युवा प्राणों की समस्त सुख शांति, आशा-भरोसा, उद्यम और अध्यवसाय भाद्रपद में उफनती भैरवी नदी के किनारे स्थित कदम्ब के छांव में भस्मीभूत कर स्मृति की ज्वलंत आग को हृदय में लेकर घर से निकल पड़ा। बाद में कितने नगर-नगर, गांव-गांव का भ्रमण कर रंग-विरंगे कई महल देखे, परन्तु इससे मेरे दिल की आग शांत नहीं हुई। कितनी नद-नदियों, झीलों आदि की ऊंची लहरों से उत्पन्न दिल को दहला देने वाली कल कल ध्वनि मेरे कानों में पड़ी, परन्तु काल के कठोर दंताघात से उत्पन्न मेरी कातरता कम नहीं हुई। कितने पहाड़ों और घाटियों पर चढ़ कर विश्वपिता विधाता की विश्व सृष्टि के विचित्र क्रियाकलाप देखे, परन्तु उससे मेरे जीवन की ज्वाला शांत नहीं हुई। जंगली जानवरों के भय से पूर्ण वन भूमियों के अपूर्व प्राकृतिक दृश्य और वन फूलों के रमणीक दृश्य देखे परन्तु उससे मेरे अन्तर की ज्वाला शांत नहीं हुई। अनेक दिनों बाद मा आद्‌याशक्ति ब्रह्मा विष्णु और शिव द्‌वारा आराध्या तथा विंध्यवासिनी महामाया की कृपा से सावित्री पहाड़ के साधक श्रेष्ठ परमहंस श्रीमत् सच्चिदानन्द सरस्वती जी से मेरी भेंट हुई। परम ज्ञानी परमहंस देव के उपदेश से जीव के जन्म जन्मांतर का रहस्य, आवागमन, कर्मफल का भोग, माया आदि निगम के निगूढ़ तत्त्वों को अवगत होकर मेरी माया और मोह दूर हो गया। मैंने पार्थिव वस्तुओं की असारता समझी। मेरे हृदय निकुंज में कोयल ने कुहू तान छेड़ी। ऐसे एक अभूतपूर्व आनन्द से मेरा हृदय भर गया। मैंने मन ही मन स्थिर संकल्प किया कि इस मर जगत में जन्म-मृत्यु का अभिनय करने नहीं लौटूंगा। मैं किसका हूँ ? मेरा कौन है ? क्यों यह व्यर्थ का रोना धोना है ? अकेले आया हूँ, अकेला जाऊँगा। चाहते हुए अशांति की आग में क्यों जलूं ? (उस समय) हृदय के किसी कोने से शास्त्र का वाक्य गूंज उठा—

पिता कस्य माता कस्य कस्य भ्राता सहोदराः।
काया प्राणे न संबंधः का कस्य परिवेदना ॥

माया और मोह का आवरण काफी हद तक तो हट गया परन्तु प्राणों में एक तरह की तीव्र प्यास जागी। मैंने निश्चय किया कि किसी धार्मिक

संस्था में शामिल होकर किसी सुख साध्य साधना का आयोजन करके लीलामय की मधुर लीलाओं का मधुर स्वाद लेते-लेते जीवन के शेष कुछ दिन बिता दूँगा। यह सोच कर एक सिद्ध महापुरुष की खोज में लग गया। अनेक साधु संन्यासियों का अनुसरण किया। किसी ने राख को चीनी में बदलने का उपाय सिखाया तो किसी ने उबलते तेल में हाथ देने का उपाय बताया। किसी ने कपड़े में आग को बाँधने क़ा उपाय दिखाया। परन्तु इस सबसे मेरे प्राणों की उत्कट प्यास नहीं बुझी। एक ख्यातिप्राप्त तांत्रिक साधक का नाम सुनकर उसके पास पहुंचा। उसका शिष्यत्व स्वीकार कर मैंने नौकर की तरह उसकी सेवा की। कुछ दिन बाद उसने एक अस्वाभाविक पदार्थ संग्रह करने का आदेश दिया। उसने बताया कि शनि या मंगलवार को बज्र से आहत किसी गर्भवती चाण्डाल नारी के पेट में स्थित मृत शिशु पर आसन बनाये बिना तंत्रोक्त साधना में सिद्धि प्राप्त करना कठिन कार्य है। यह बात सुनते ही मैंने उससे विदा ली। जो योगी के रूप में जाने जाते थे, उन्होंने मुझे नेति-धौति आदि ऐसी कठिन क्रियायें करने का उपदेश दिया जो मेरे वंश में कोई भी उनका अभ्यास नहीं कर सकेगा। वैरागी बावाजियों में से एक संप्रदाय ने कहा, "बेल की तरह सिर पर जुड़ा बांध कर लंबी शिखा रखकर गले में पितल के मनकों से बनी माला झुलाकर लकड़ी के मनकों की माला से गुरुदत्त मंत्र का जप करो। नियमित रूप से हरिवासर का पालन न करने और शरीर पर थोड़ी गोपी मृतिका का लेप नहीं लगाने से गोपीवल्लभ की कृपा नहीं होगी।" एक और संप्रदाय ने आधुनिक वैरागी शास्त्र के कुछ बंगला पद बोलते हुए अपने मतानुसार उनका गलत अर्थ निकालकर कहा, "शक्ति के बिना मुक्ति का उपाय नहीं है।" उन्होंने नानी की उम्र वाली एक साधवी से मेरे विवाह की व्यवस्था भी कर दी। यही कारण बताते हुए श्री श्री वृन्दावन के राधाकुण्ड निवासी परोपकार परायण एक बावाजी ने अपनी अनाथ कन्या का निःस्वार्थ भाव से दान कर मेरी मुक्ति का पथ साफ करने को तैयार थे। मैं अकृतज्ञ ऐसे उदार हृदय, निस्स्वार्थ और परोपकारियों की प्रार्थना अस्वीकार कर वहां से भाग खड़ा हुआ। पंजाब प्रांत में अमृतसर के एक उदासीन संपद्राय ने कहा, "जनेऊ का त्याग कर छत्तीस जातियों का अन्न

खाने पर ही ब्रह्मभाव स्फुरित होगा।" संन्यासियों ने अखण्ड विभूति के लेपन, लंबी जटा धारण, चिम्टा ग्रहण और त्वरित आनन्द में गांजे का दम लेने का तरीका भी सीखा दिया। नगा संपद्राय ने नंगे होकर, कमर में लोहे की जंजीर डालकर तथा अन्न आदि छोड़ कर फल खाने की व्यवस्था दी। सावित्री पहाड़ के पूज्यवाद परमहंस देव ने इससे पहले मुझे थोड़ा पक्का कर दिया था। इसलिए इन सब फक्कड़ों की थोथी बातों से मेरा मन विचलित नहीं हुआ। इससे भी मेरा मनोबल नहीं टूटा। मैं जगदगुरु योगश्वर के चरणों का स्मरण करते हुए अपना उद्देश्य पूरा करने में लग गया।

पश्चिमांचल में कुछ दिन भ्रमण कर मां कामाख्या देवी के चरण दर्शन की आशा से कुछ साधु सन्यासियों के साथ असम प्रांत में पहुंचा। असम आने के बाद मेरे मन में परसुराम तीर्थ का भ्रमण करने की इच्छा जगी। मैं गौहाटी से स्टीमर से डिब्रूगढ़ आकर वहां से रेलगाड़ी से सादिया पहुंचा। सादिया से 20-25 साधुओं के साथ दुर्गम और जंगली जानवरों के भय से ग्रस्त वन भूमि और छोटी-मोटी पहाड़ियों को पार कर परसुराम तीर्थ पहुंचा। यह तीर्थ अनेक प्राकृतिक सौन्दर्य से पूर्ण है। शास्त्र में बताया गया है भृगुपति परसुराम का समस्त तीर्थों का भ्रमण करने के बाद इस ब्रह्मकुण्ड में स्नान करने पर मातृ हत्या जन्य महापातक से उद्धार हुआ था और उनके हाथ से सटा परशु छूट गया था। उस दिन से यह तीर्थ परसुराम तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है। इस ब्रह्मकुण्ड से ब्रह्मपुत्र नदी निकलती है। परन्तु आज कल की ब्रह्मपुत्र नदी के साथ इसका कोई संबंध नहीं है। ब्रह्मकुण्ड में पहुंच कर मैंने दूसरों की तरह ब्रह्मकुण्ड में स्नान और पूजा आदि की। मेरा श्रम सार्थक हुआ और मैंने जीवन को धन्य समझा !

जिस दिन ब्रह्मकुण्ड में पहुंचा उसके दो दिन बाद मैं ज्वर और पेचिश से आक्रान्त हो गया। रास्ते में कुछ दिनों के अनियमित श्रम के कारण पहले ही थकावट थी, जिस पर ज्वर और पेचिश शुरू हो गए। चार पांच दिन में ही मेरी उठने-बैठने की शक्ति भी जाती रही। मेरे साथी संन्यासी वापिस लौटने के लिए तैयार हो गए। इसलिए मैं विशेष चिंतित हो गया। मुझसे एक पग भी नहीं चला जाता। कैसे उस दुर्गम वन भूमि

और पहाड़ियों को पार कर पाऊंगा। साथियों को दो-चार दिन और प्रतीक्षा करने का विशेष अनुरोध भी किया। परन्तु उससे कोई लाभ नहीं हुआ। एक दिन वे मुझे बताए बिना रात को साधु जनोचित सहृदयता दिखाकर चले गए। मैं अकेला उस जनशून्य पहाड़ी क्षेत्र में भारी विपद में पड़ गया। थोड़ी ही दूरी पर असभ्य पहाड़ी लोगों की एक वस्ती थी। मैंने निरुपाय होकर उनसे कातर भाव से ठहरने की थोड़ी जगह मांगी। वे साधु ब्राह्मण को नहीं मानते। परन्तु मेरी युवा आयु और रोगग्रस्त शरीर को देखकर ही या किन्हीं अन्य कारणों से उन्होंने मुझे सादर रहने की जगह दे दी। नया स्थान, नये लोग और नई भाषा के कारण पहले पहल गूंगों की तरह रहने में बड़ी तकलीफ हुई। परन्तु दो-चार दिनों में मैंने उनकी भाषा सीख ली। धीरे-धीरे उनके साथ मेरा मेल-जोल बढ़ा। वे सेवकों की तरह मेरी सेवा करने लगे। मैं उनके सद्व्यवहार से मुग्ध हुआ। आशा से अधिक यत्न और सेवाशुश्रूषा के बावजूद पूरी तरह स्वस्थ और बल पाने में एक मास से थोड़ा अधिक समय लग गया। मैं बंगाल लौटने की आशा से ब्रह्मकुण्ड में लौट आया। परन्तु वहां पर आकर मुझे पता चला कि आगामी कार्त्तिक से पहले सादिया जाने के लिए साथी नहीं मिलेंगे। जंगली जानवरों से ग्रस्त उस वनभूमि को अकेले पार करना किसी के वश की बात नहीं है। इसलिए टूटे दिल से पुनः पूर्व आश्रयदाता की शरण में लौट गया। वे खुश होकर छः सात मास के लिए जगह देने को सहमत हुए। कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि यह स्थान भारत के अन्तर्गत ब्रिटिश शासन के अधीन नहीं है।

सर्व नियन्ता विश्वपिता विधाता के चरणों पर भरोसा रखकर 'जब जैसा तब तैसा' सोचकर उन अनपढ़ असभ्य लोगों के साथ एक तरह से सुख में दिन बिताने लगा। उनमें उदार स्वभाव, सरल प्राण, सत्य निष्ठा, परोपकार, सहानुभूति आतिथेयता आदि जो गुण मैंने देखे है, वर्त्तमान युग के पढ़े-लिखे और सभ्यता के प्रति अभिमान रखने वाले भारतीयों में वैसा कहीं भी नहीं दिखाई देती। किसी भी देश या किसी भी जाति में ऐसी सज्जनता और मनुष्यत्व इन बुरे दिनों में कहीं देखने को नहीं मिलेंगे। अनपढ़ और असभ्य मानकर हम लोग इन लोगों से घृणा करते हैं, परन्तु मैं बुलंद आवाज से कहता हूँ कि यदि इस मरणशील जगत में सच्चा

मनुष्यत्व देखना चाहते हो, तो इन असभ्य लोगों के अतिरिक्त वह कहीं अन्यत्र नहीं मिलेगा। और यदि हम मनुष्य के रूप में जाने जायें, तो ये लोग देवता हैं। हाय, किस बुरी घड़ी में हमने सभ्यता सीखी थी। एक सभ्य और शिक्षित साहेब के घर में नौकर-चाकर और कुत्ते-बिल्ली के खाने पर तो खाना खत्म नहीं होता। परन्तु साहेब द्वारा देश या गांव के लोगों की सहायता करनी तो दूर, उसका अपना भाई घर के पास रहते हुए भी सारा दिन भूखे घूम कर खाने का जुगाड़ न कर पाने के कारण दिन के अन्त में सूखे मुंह से लंबी सांस लेने पर भी साहब उस ओर नजर नहीं डालता। भूखे-प्यासे अतिथि को मुट्ठी भर चावल देना हम अपव्यय समझते हैं, विपदग्रस्त और निराश्रय पथिक को रातभर के लिए थोड़ी सी जगह देने में हिचकिचाते हैं। इन सब के बावजूद यदि हम सभ्य, शिक्षित और मनुष्य हैं तो अभद्र, पाखंड और पिशाच कौन है ? सूटबूट पहन कर हाथ में घड़ी और गले में टाई बांध कर गाड़ी चला सकने से मनुष्य सभ्य नहीं बन जाता। सभा-समितियाँ बुलाकर अंग्रेजी में दो चार शब्द बोलने से किसी को शिक्षित नहीं कहा जाता। हाय किस अशुभ घड़ी में भारत में विदेशी सभ्यता घुसी थी—हम लोग सच्चा मनुष्यत्व खोकर पशु से भी गये बीते हो चुके हैं। इसलिए अपनी हालत आप न समझ कर शिक्षा और सभ्यता के अभिमान से, हित क्या है और अहित क्या है, भूल चुके हैं। उन अनपढ़ और असभ्य लोगों के भीतर मैंने जो सज्जनता और मनुष्यत्व देखा है, इस जीवन में मैं उसे कभी नहीं भूला सकता। मैं मां जगदम्बा के चरणों में विनीत प्रार्थना करता हूँ कि मेरे देशवासी भाइयों के घर-घर में ऐसी असभ्यता दिखाई दे।

एक ही जगह अनेक दिन रहते-रहते धीरे-धीरे मैं आम लोगों से परिचित हो गया। आस-पास की वस्तियों के लोग भी मेरे पास आने जाने लगे। जब अनेक दिन एक जगह रहने से थोड़ी तकलीफ हुई तो मैंने भी नई-नई वस्तियों में घूमना शुरू कर दिया। इस तरह मैं ब्रह्मकुण्ड से चालीस मील उत्तर में आ गया। इन जगहों में समतल भूमि नहीं है। केवल पहाड़ी ढलानें हैं। पहाड़ों की तराई में आठ दस मकानों को लेकर छोटे-छोटे देहात होते हैं। मैं खा-पीकर सो जाता था। कभी-कभी साहस बटोर कर पहाड़ों

का प्राकृतिक सौन्दर्य देखने चला जाता था। एक दिन दोपहर के बाद इसी तरह घूमने निकल पड़ा। वर्षाकाल था। कहीं वर्षा न आये, इसलिए पहले ही एक टूटी-फूटी छतरी का जुगाड़ कर लिया था। अनेक वनों, जंगलों और टीलों को पार करता हुआ एक नई जगह आ पहुंचा। वह जगह पहाड़ के एक सुनसान क्षेत्र का सौन्दर्यपूर्ण स्थान था। वहां कोई जन बस्ती नहीं थी। केवल पहाड़ ही पहाड़ थे। पहाड़ों से झरने निकल रहे थे और उन झरनों के दोनों ओर हरी वनभूमि थी। वनभूमि की गोद में रंग-बिरंगे फूल खिले थे। फूलों की खुशबू और शोभा देखते ही बनती थी। उस मन लुभावन स्थान में काफी समय तक घूमने के बाद थक कर मैं वहां बैठ गया। विश्वस्रष्टा की सृष्टि के अपूर्व सृष्टि-कौशल और प्रकृति की विचित्र गति के संबंध में चिंतन करने लगा। धीरे-धीरे नदी की तरंगों की तरह एक के बाद दूसरी चिंताएं मन में जागने लगीं। कितनी जगहों की बातें, कितने लोगों की कहानियां, उनका आचरण, प्रेम-प्रीति और स्नेह श्रद्धा की बातें मन में आने लगीं और अन्त में अपनी जन्मभूमि की बातें स्मरण हो आई। वह बचपन, मां-बाप, उनकी प्यारभरी बातें, भाई बहनों का प्रेम, आत्मीय स्वजनों का स्नेह, बाल बंधुओं के सरल प्राणों का अकपट प्रेम; प्रणयिनी की दिल को छू जाने वाली बातें, ये सब मन में आते ही मन में उथल-पुथल मच गई। हृदय के बंधन शिथिल हो गए, छाती की धड़कनें बढ़ने लगी और आँखों में बिजली कौंध गई। पल भर में परमहंस देवजी के उपदेश तिनकों की तरह पूर्व स्मृति के तेज बहाव में न जाने कहां बह गये। दर्शन, विज्ञान, गीता, पुराण आदि शास्त्र ज्ञान धूलिसात हो गया। आखिर में मैं आत्मविस्मृत हो गया।

उस भाव में कितना समय रहा, मैं नहीं जानता। जिस समय पूर्व ज्ञान लौटा तो देखा कि सूर्य भगवान अपनी किरणों को समेटे अस्ताचल में पहुंच चुके हैं। संध्यारानी नई नवेली दुलहन की तरह घूंघट डाले धरती पर उतर चुकी थी। पक्षी उससे पहले ही अपने-अपने घोंसलों में लौट चुके थे। कहीं-कहीं एक आध पक्षी पेड़ों की टहनियों पर बैठे ललित मधुर सुर में कुहूतान छेड़े हुए थे। महामाया के इस मायामोह प्रभाव को देखकर मैं आश्चर्य चकित रह गया। मैंने विचार किया कि "मैं जो था, वही हूँ। एक

ही लहर के आघात से जब हृदय की सारी गांठें हिल गईं, तो शास्त्र आदि के ज्ञान का अभिमान व्यर्थ है।" जो भी हो, अधिक सोचने का मौका ही कहां था ? बस्ती में लौटना होगा। भयत्रस्त मन से चलने लगा। कुछ देर चलने के बाद मैंने महसूस किया कि मैं रास्ते से भटक चुका हूँ। उस समय उस जंगल में घनघोर अंधेरा घिर चुका था। डर के मारे घबराकर जंगल से बाहर निकलने की भरपूर कोशिश की, परन्तु मेरे समस्त प्रयास और श्रम व्यर्थ गये। जिस ओर बढ़ा वहां केवल जंगल ही जंगल और घनघोर अंधेरा था। हताश होकर मैं एक स्थान पर बैठ गया। मेरा सारा शरीर पसीने से तरवतर हो गया। अब उपाय क्या है ? इस घनघोर अंधेरे में दुर्गम वनभूमि को पार करना मेरे वश की बात नहीं थी। पहाड़ के किस ओर बस्ती है, उसका भी कोई पता नहीं चल रहा था। अनुमान पर निर्भर करके बस्ती का पता लगाना व्यर्थ था। वरन इस तरह अकारण घूमते-घूमते हो सकता है बाघ भालुओं का शिकार बन कर मौत के मुँह में जाना पड़ेगा अथवा जंगली हाथियों के झुंड के पैरों से रौंद दिया जाऊंगा। इसलिए मैंने सोचा कि व्यर्थ ही बस्ती का पता लगाने के लिए तकलीफ क्यों उठाऊं ? जो भी हो, यहीं रहूंगा। विपदा का चिंतन भय का कारण है, परन्तु विपदा आने पर अपने भीतर से स्वतः साहस निकलता है। मैं अकेले उस भयानक जंगल में बैठकर प्रतिक्षण मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगा। कभी-कभी लगता था जैसे कोई हिंस्र जन्तु अपना मुंह फैला कर मुझे निगलने आ रहा हो। कभी-कभी लगता बड़े-बड़े भूत-प्रेत और पिशाच दांत किटकिटा कर अपने अट्टहास्य से जंगल को हिला रहे हैं। मैं प्रतिक्षण मृत्यु की यंत्रणा भोगने लगा। मन में सोचा, इस तरह की यंत्रणा भोगने की बजाय मौत हो जाती तो अच्छा होता। जो भी हो, उसी हालत में काफी समय बीत गया। अन्त में मन को साहस बंधाया और तरह-तरह से मन को मजबूत किया। उस समय शास्त्रकारों का उपदेश स्मरण हो आया—

मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते,
अद्य वाव्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणीनां ध्रुवः।

श्रीमद्भागवत 10/1/26

जब एक दिन अवश्य ही मृत्यु होगी, तब उस मृत्यु के लिए इतना

परेशान क्यों हो रहे हो ?

"जातस्यहि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।"

गीता, 2/27

पूजनीय परमहंस देव जी के प्राणस्पर्शी वाक्य भी स्मरण हो आये।

"नासौ तव न तस्य त्वं वृथा का परिदेवना।"

मृत्यु का भय अपने आप काफी हद तक दूर हो गया। परन्तु निश्चेष्ट होकर इस तरह बैठे रहना कायरता है। पेड़ पर चढ़ने से हो सकता है हिंस्र जन्तुओं के हमले से बच जाऊं ! परन्तु पेड़ पर चढूं कैसे ? मुझे तो पेड़ पर चढ़ना भी नहीं आता। देहात में जन्म लेने पर भी मैं सही समय पर पेड़ पर चढ़ने के गुर नहीं सीख पाया। फिर भी कोशिश करने लगा। पास में एक बहुत बड़े पेड़ की टहनी करीब भूमि तक झुकी हुई थी। थोड़ी कोशिश करके उस टहनी को पकड़ कर कांपते-कांपते धीरे-धीरे उसके मूल तक पहुंच गया। वह टहनी जहां खत्म होती थी, वहां तने में बहुत बड़ा खोकर था। मैंने बड़े ध्यान से देखा कि उस खोकर में मिट्टी भरी हुई थी। वहां जितनी जगह थी, उसमें एक आदमी आसानी से बैठ सकता है। मैं साहस करके आस-पास का सहारा लेकर धीरे-धीरे खोकर में उतरा। किसी प्रकार के भय का कारण न देखकर नीचे बैठ गया और छतरी को तानकर खोकर के मुंह को ढक दिया। थोड़ा निश्चिंत होकर अपार करुणामय जगदीश्वर का धन्यवाद किया और आँखें मूंद कर इष्ट मंत्र का जाप करने लगा। काफी समय बीत गया, परन्तु काल रात्रि मानो खत्म होने का नाम नहीं लेती थी। काफी देर बाद रात खुलने के लक्षण दिखाई दिये। जंगली मुर्गा बांग देने लगा और दो एक और पक्षी चहचहाने लगे। मन को बड़ा चैन आया। इस बार बच गया, ऐसा जानकर मन ही मन भगवान के प्रति आभार व्यक्त किया। सारी रात जागने और मृत्यु की चिंता करते-करते बहुत थकान हो गई थी। अब निश्चिंत होने और उषा की ठंडी हवा शरीर को छूते ही बड़ी जोर की नींद आने लगी। उसी तरह बैठकर उस खोकर से सटे तने का सहारा लेकर सो गया।

नींद टूटने पर देखा कि उस पेड़ के चारों ओर रोशनी फैली हुई है।

मैंने हैरान होकर छतरी बन्द करके सिर ऊपर उठाया तो देखा कि मैं जिस पेड़ पर चढ़ा था उसके मूल में सूखे पत्तों में आग लगाकर एक मनुष्यमूर्ति बैठी हुई है। रात की समाप्ति पर इस घने जंगल में मनुष्य कहां से आया ? यह क्या मेरी तरह विपदग्रस्त है ? यह अब तक कहाँ था ? इस तरह इधर-उधर सोचकर कोई फैसला नहीं कर पाया। चिंता के अनुरूप भूत और प्रेत की कल्पना भी एकबार जगी। आखिर दुर्गा नाम का स्मरण कर हिम्मत करके उस कोटर से बाहर निकला और पहले की तरह उस टहनी को पकड़ कर नीचे उतरा और उस मनुष्य मूर्ति के सामने जाकर खड़ा हो गया। अचानक मुझे पेड़ से उतरते देखकर वे न तो डरे और न ही हैरान हुए। यहां तक कि मेरी ओर सिर उठाकर देखा तक नहीं। मैंने देखा कि वे सिर झुका कर गांजा बना रहे हैं। कौपीन के अतिरिक्त तन पर और कोई कपड़ा नहीं था। पास में एक बड़ा चिम्टा और एक बड़ी चिल्म पड़ी थी। यह सब देखकर मैंने अनुमान लगाया कि वह कोई गृहत्यागी संन्यासी हैं। परन्तु मैं कभी किसी से एकबार भी नहीं सुना था कि इस जंगल में संन्यासी आश्रम है। जो भी हो, मैं साहस करके कुछ भी नहीं पूछ सका और पास जाकर बैठ गया। गांजा तैयार हो जाने के बाद उन्होंने उसे चिलम में भरकर आग सुलगाई और कुछ कश लिए और उसके बाद चिलम को मेरी ओर बढ़ा दिया। यद्यपि मेरी गांजा पीने की आदत नहीं थी फिर भी चिलम पकड़ ली और एक दो कश लेने के बाद चिलम उन्हें लौटा दी। उन्होंने फिर एक कश लेकर उसे बुझा दिया। फिर वे चिम्टा उठा कर खड़े हो गये और इशारे से मुझे पीछे आने का निर्देश देकर चलना शुरू कर दिया। मैं मंत्र मुग्ध व्यक्ति की तरह उनके पीछे-पीछे चलने लगा। जाते-जाते सोचा मैं कहां जा रहा हूँ ? यह आदमी कौन है ? इसका उद्देश्य क्या है ? इसने मुझसे न कुछ पूछा न ही मेरा परिचय लिया ? फिर भी साथ चलने का निर्देश दिया ? इसके क्या कारण हो सकते हैं ? बंकिम बाबू की पुस्तक 'कपालकुण्डला' के कापालिक की बात मुझे स्मरण हो आई। साथ-साथ छाती कांपने लगी। फिर भी मां काली के चरणों पर भरोसा करके उनके साथ चलने लगा। वह कंटीली झाड़ियों और झाड़-झकांड़ की कोई परवाह किये बिना लंबे-लंबे डग भरते चले जा रहे थे। गांजे के नशे से मेरी आंखें लाल हो गई थीं

और छुईमुई के कांटों से मेरे पैरों से खून निकलने लगा था। फिर भी मैंने उनका पीछा करने में कोई कोताही नहीं की। कहना न होगा कि तब तक खुलकर सवेरा हो चुका था।

कुछ समय इस तरह चलकर हम उस घने जंगल को पार करने के बाद एक टीले के पास पहुंचे। यह स्थान प्राकृतिक सौन्दर्य से भरा हुआ था। एक ओर पहाड़ की ऊँची चोटी किसी बहादुर की तरह सर ऊँचा किये हुए खड़ी थी, दूसरी ओर दुर्गम हरा-भरा जंगल था। बीच में थोड़ी सी जगह थी जो साफ थी और उसमें कोई पेड़-पौधा नहीं था। एक छोटा सा झरना पहाड़ के एक तरफ से तेजी से कलकल करता हुआ बहता जा रहा था। इस जगह पहुंचने के बाद वह मेरी ओर देखकर खड़े हो गये। अब उनका पूरा चेहरा दिखाई दिया। कैसी विशाल थी वह मूर्ति ! खौलते सोने की तरह रंग, प्रशस्त ललाट, चौड़ी छाती, आजानुलंबित मांसल बाहु, लाल होंठ, काले और घुंघुराले बाल, कानों तक फैली आँखें, समूचे शरीर में सादगी और ब्रह्मज्योति निकल रही थी। उस अदृष्ट पूर्व और अपूर्व मूर्ति को देखकर मैं स्तब्ध, विस्मित और रोमांचित हो उठा। इस जीवन में अनेक साधु संन्यासी देखे, परन्तु ऐसी रमणीक मूर्ति अभी तक कहीं भी नहीं देखी थी। एक अभूतपूर्व आनन्द से मन भर गया, प्राणों से भक्ति का फव्वारा फूट पड़ा। मेरे अनजाने में ही मेरा शरीर अपने आप उनके चरणों में लोट गया।

उन्होंने बड़े स्नेह से मेरे हाथ पकड़कर मुझे उठाया और बड़े ही धीर, गंभीर और मधुर स्वर में कहा, "बाबा ! अचानक रात्रि के अन्त में पेड़ के नीचे मुझे देखकर और तुम्हारा परिचय पूछे बिना साथ आने का आदेश देने से तुम थोड़ा डर गये थे और हैरान भी थे। परन्तु इससे पहले तुम कौन हो, किस अभिप्राय से घूम रहे हो, आज पेड़ के खोकर में क्यों ठहरे हुए थे, वह सब मैं जानता हूं। इसलिए तुमसे कोई प्रश्न नहीं किया। रात के समय तुम्हारे बारे में जानकर मैं केवल तुम्हें लिवा लाने के लिए उस पेड़ के नीचे बैठकर प्रतीक्षा कर रहा था।"

मैं अवाक् था। ये मेरे बारे में पहले से ही कैसे जानते हैं ? मेरे मन में धारणा हुई कि ये एक सिद्ध पुरुष हैं। मैंने गत रात्रि के भीषण कष्ट को भुलाकर जीवन को सार्थक समझा। मैं उनमें आत्म समर्पण करके

उनका शरणागत बना।

उन्होंने अपनी मीठी बातों से मुझे ढ़ाढ़स दिलाया और मेरे पूर्व जन्म और इस जन्म के अनेक रहस्य खोले और योग शिक्षा तथा साधना कौशल सिखाने का वचन दिया। मैंने विस्मित और आनन्दित होकर विनीत भाव से उनके प्रति आभार व्यक्त किया। मैं समझ पाया कि गत रात्रि की विपदा संपदा का कारण था। इसलिए सर्वमंगलमय परमेश्वर का धन्यवाद किया। इतने दिनों बाद मनोरथ पूरा होने की संभावना को देखकर मेरी खुशी का ठिकाना न रहा।

उसके बाद उन सिद्ध महापुरुष ने टीले के पास जाकर एक बहुत बड़ा पत्थर बड़ी तरकीब से हटाया। बड़ा आश्चर्यमय दृश्य था वह। क्या बड़ी गुफा थी वह ! मैंने उसके भीतर प्रवेश करके देखा कि उस गुफा की लंबाई और चौड़ाई एक छोटे से कमरे जैसी थी तथा वह साफ सुथरी थी। उन्होंने मुझे हाथ से लिखे योग और स्वरोदय शास्त्र के कुछ पाठ पढ़ने को दिये। मैं अपने आपको धन्य मानकर उन महापुरुष के साथ उनके आश्रम में सुख पूर्वक समय बिताने लगा।

वह प्रतिदिन अपने बच्चे की तरह प्रेम से मुझे योग और स्वर शास्त्र की गूढ़ बातों को विस्तार से समझाकर उसकी शिक्षा देने लगे और मौखिक उपदेश देकर साधना के सहज और सुखसाध्य कौशल सिखाने लगे। मैंने वहां पर तीन मास से थोड़ा अधिक समय ठहर कर सिद्धमनोरथ होकर कृतज्ञ और भक्ति से गद्‌गद् होकर उनके चरणों की वन्दना करते हुए उनसे विदा ली। उन्होंने प्रसन्न चित्त मुझे पहले की उस पहाड़ी बस्ती में पहुँचा दिया।

मेरे उस बस्ती के आश्रयदाताओं ने जब मुझे लौटते हुए देखा तो वे बहुत हैरान हुए और बहुत प्रसन्न हुए। मेरे चले जाने के बाद उन्होंने तीन-चार दिन उन पहाड़ी क्षेत्रों में मेरी खोज की, परन्तु जब मेरा कोई पता नहीं चला तो उन्होंने समझ लिया कि मुझे किसी जंगली जानवर ने खा लिया है। वे इस कारण बहुत दुखी थे। मैंने उन्हें पूरी बातें बताईं। फिर प्रत्येक के घर दो-दो दिन ठहरने के बाद मैं ब्रह्मकुण्ड में पहुँचा। बाद में तीर्थ यात्रियों के साथ वहाँ से बंगाल लौट आया।

सिद्ध महापुरुष द्वारा प्रदर्शित उपाय से क्रियानुष्ठान करके शास्त्रोक्त साधना के सुफल के संबंध में मुझे सच्चाई की उपलब्धि हुई। इसलिए आज साधना के इच्छुक देशवासी भाइयों के हितार्थ कुछ एक सद्य, प्रत्यक्ष लाभप्रद, सहज और सुखसाध्य साधना-प्रक्रियायें शामिल करके मैं यह पुस्तक प्रकाशित कर रहा हूं। साधना के पथ पर अग्रसर होकर साधकों को जिस प्रकार किसी प्रकार की विडम्बना नहीं भोगनी पड़े, वही मेरी ऐकान्तिक इच्छा है। मैं इस कार्य में कितना सफल हो पाया हूँ, वह पाठकगण विचार करेंगे। यदि किसी को कोई बात समझने में कठिनाई होती है या कोई सन्देह होता है, तो मेरे पास पत्राचार करने अथवा मेरे पास पहुँचने पर मैं उन्हें विस्तार से समझा दूँगा। परन्तु मेरा कहीं कोई ठिकाना नहीं है। इसलिए 'कार्याध्यक्ष, सारस्वतमठ, पो. कोकिलामुख, जोरहाट, असम के पते पर जवाबी कार्ड देने पर मैं कहाँ हूँ, उसका पता चल जायेगा।*

योग की श्रेष्ठता

योग समस्त साधनाओं का मूल और सर्वोत्कृष्ट साधना है। शास्त्र में बताया गया है कि व्यास देव के पुत्र शुकदेव पूर्वजन्म में किसी पेड़ की टहनी पर बैठकर शिवजी के मुख से योग के उपदेश सुनकर पक्षी योनि से उद्धार पाकर अगले जन्म में परमयोगी बने थे। केवल योग के श्रवण से जब इतना लाभ होता है, तब योग की साधना करने से ब्रह्मानन्द और सर्वसिद्धि की प्राप्ति होगी, इस में क्या कोई सन्देह हो सकता है ? योग के संबंध में शास्त्र की उक्ति इस प्रकार है कि अविद्या से विमोहित होकर आत्मा 'जीव' की संज्ञा पाकर आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक,

---

* परम पूज्यवाद ग्रंथकार इस समय स्थूल जगत में नहीं हैं। उन्होंने 29 नवम्बर 1935 को महासमाधि ले ली है।

इन तीन तापों के अधीन हुई है। इन तीन तापों से मुक्ति प्राप्त करने का उपाय योग है। योग अभ्यास के बिना प्रकृति के माया कौशल को जानना संभव नहीं है। जो व्यक्ति योगी है, उसके समक्ष प्रकृति अपना मायाजाल नहीं फैला सकती, वरन वह शर्मींदा होकर भाग जाती है, सहज शब्दों में उस योगी व्यक्ति में प्रकृति लय प्राप्त होती है। प्रकृति के लयप्राप्त होने पर वह व्यक्ति फिर पुरुष जीव नहीं कहलाता, उस समय वह केवल आत्मा के नाम से सतस्वरूप में अवस्थान करता है। इस तरह सतस्वरूप में अवस्थान करने के कारण योग को श्रेष्ठ साधना बताया गया है।

योग ही धर्म जगत का एक मात्र पथ है। तंत्र का मंत्र, मुसलमानों का अल्लाह और ईसाइयों का ईसा मसीह, एक दूसरे से पृथक हो सकते हैं, परन्तु जिस समय वे उस चिंतन में आत्मविभोर हो जाते हैं तो वे अनजाने में योगाभ्यास नहीं तो और क्या करते हैं ? फिर भी किसी अन्य देश के किसी धर्मशास्त्र में आर्यों के योगधर्म की तरह परणिति या परिपुष्टि नहीं हुई है। मोटे तौर पर दूसरी जातियों के संबंध में चाहे जो कुछ भी हो, किन्तु भारत के तंत्र-मंत्र, पूजा-पद्धति आदि सब कुछ योगपरक है।

योगाभ्यास के द्वारा चित्त की एकाग्रता आने पर ज्ञान उत्पन्न होता है और उस ज्ञान के द्वारा मानवात्मा की मुक्ति होती है। वह मुक्ति दाता परम ज्ञान य़ोग के अतिरिक्त शास्त्र पाठ के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। भगवान शंकर देव ने कहा है–

अनेकशतसंख्याभिस्तर्क व्याकरणादिभिः,
पतिता शास्त्रजालेषु प्रज्ञया ते विमोहिताः।

–योग बीज, 8

सैकड़ों तर्क शास्त्र और व्याकरण आदि का अध्ययन करके मनुष्य शास्त्र के जाल में पड़कर विमोहित हो जाता है। वास्तव में सच्चा ज्ञान योगाभ्यास के बिना पैदा नहीं होता।

मथित्वा चतुरो वेदान सर्वशास्त्राणि चैव हि।
सारस्तु योगिभिः पीतस्तक्रं पिवन्ति पण्डिताः।

–ज्ञानसंकलिनी तंत्र

चार वेदों और समस्त शास्त्रों का मंथन कर नवनीत स्वरूप उनके

सार भाग को तो योगीजन पी चुके हैं और उनके असार भाग जो तक्र (छाछ) है, पण्डित लोग वही पी रहे हैं। शास्त्र के पाठ से जो ज्ञान पैदा होता है, वह मिथ्या प्रलाप मात्र है। वह सही ज्ञान नहीं है। वहिर्मुखी मन, बुद्धि और इन्द्रियों को बाह्य विषयों से निवृत्त कर अंतर्मुखी बनाकर सर्वव्याप्त परमात्मा में संयोग करने का नाम सच्चा ज्ञान है।

एक बार भरद्वाज ऋषि ने पितामह ब्रह्मा से प्रश्न किया था—"किं ज्ञानमिति ?" ब्रह्मा ने उत्तर दिया "एकादशेन्द्रियनिग्रहेण सदगुरुपासनया श्रवण मनन-निदिध्यासनैर्दृग दृश्य प्रकारं सर्वं निरस्य सर्वान्तरस्थं घटापटादि विकारपदार्थेषु चैतन्यं विना न किंचिदस्तीति साक्षात्कारानुभवो ज्ञानम्" अर्थात आंख, कान, जीभ, नाक और त्वचा, इन पंच ज्ञानेन्द्रिय और हाथ पैर, मुंह, पायु, और उपस्थ, इन पंच कर्मेन्द्रिय तथा मन रूपी एकादश इन्द्रिया का निग्रह करते हुए सद्गुरु की उपासना के द्वारा श्रवण, मनन और निदिध्यासन के साथ घट, पट और मठ आदि विकारों से पूर्ण समस्त दृश्य पदार्थों के नाम और रूप का त्याग कर उन सभी वस्तुओं के भीतर और बाहर स्थित एकमात्र सर्वव्याप्त चैतन्य के अतिरिक्त कोई भी सत्य वस्तु नहीं है, इस तरह के अनुभवात्मक जो ब्रह्मसाक्षात्कार है, उसका नाम ज्ञान है। योगाभ्यास नहीं करने से कभी भी ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। आम लोगों का जो ज्ञान है, वह भ्रम ज्ञान है। क्योंकि जीव मात्र ही माया के पाश से वद्ध है। माया के पाश को नहीं तोड़ सकने से सच्चा ज्ञान पैदा नहीं होता। माया के पाश को तोड़ कर सच्चे ज्ञानालोक का दर्शन करने के उपाय को योग कहते हैं। योग साधना के बिना किसी भी तरह मोक्ष प्राप्त करने का हेतु जो दिव्यज्ञान है, उसका उद्रेक नहीं होता। योग रहित सांसारिक ज्ञान केवल अज्ञान है। उसके द्वारा केवल सुख और दुख का बोध होता है। इससे मुक्ति के पथ पर जाने में सहायता नहीं मिलती। परमयोगी महादेव ने अपने मुंह से कहा है—

योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवतीश्वरि

योग वीज, 18

हे परमेश्वरि। योग रहित ज्ञान किस प्रकार मोक्ष देने वाला हो सकेगा ? योग की श्रेष्ठता दर्शाते हुए सदाशिव ने पार्वती को बताया—

"ज्ञाननिष्ठो विरक्तोऽपि धर्मज्ञोऽपि जितेन्द्रियः।
बिना योगेन देवोऽपि न मुक्तिं लभते प्रिये।"

योग बीज, 31

हे प्रिये, ज्ञानवान, संसार के प्रति विरक्त, धर्मज्ञ, जितेन्द्रिय अथवा कोई देवता भी योग के बिना मुक्ति प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते। बिना योगयुक्त ज्ञान के केवल साधारण शुष्क ज्ञान से ब्रह्म प्राप्ति नहीं होती। योग रूपी आग से अशेष पाप जल जाते हैं और योग के द्वारा दिव्य ज्ञान उत्पन्न होता है। उस ज्ञान से लोग निर्वाण पद प्राप्त करते हैं। योग के अनुष्ठान से समाधि के अभ्यास की परिपक्व अवस्था आने पर ही अन्तःकरण में असंभव आदि दोषों की निवृत्ति होती है और आत्मदर्शन होने पर अज्ञान का नाश होता है। अतः दिव्यज्ञान स्वतः प्रकाशित होता है। योग सिद्धि के बिना कभी भी सच्चा ज्ञान प्रकट नहीं होता। योगी के अतिरिक्त दूसरों का ज्ञान प्रलाप मात्र है।

"यावन्नैव प्रविशति चरन् मारुतो मध्यमार्गे,
यावद्विन्दूर्न भवति दृढः प्राणवातप्रबन्धात।
यावद् ध्यानं सहजसदृश्यं जायते नैव तत्त्वं,
तावज ज्ञानं वदति तदिदं दम्भमिथ्याप्रलापः।"

गोरक्ष संहिता, चतुर्थ अंश

जब तक प्राण वायु सुषुम्ना विवर के भीतर होते हुए ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश नहीं करता, जब तक वीर्य दृढ नहीं होता और जब तक चित्त का ध्येयाकार स्वाभाविक वृत्ति प्रवाह नहीं आता, तब तक जो ज्ञान है, वह मिथ्या प्रलाप मात्र है। वह सच्चा ज्ञान नहीं है। प्राण, चित्त और वीर्य को वश में नहीं कर सकने से सच्चे ज्ञान का उद्रेक नहीं हो सकता। चित्त सतत् चंचल है। वह कैसे स्थिर होगा ? शास्त्र में ही इसका उत्तर है। जैसे–

"योगात् संजायते ज्ञानं योगो मय्येकचित्तता।"

–आदित्यपुराण

योग अभ्यास के द्वारा ज्ञान उत्पन्न होता है और योग के द्वारा चित्त की एकाग्रता पैदा होती है। इसलिए चित्त को स्थिर करने का उपाय प्राणसंरोध है।

कुम्भक के द्वारा प्राण वायु के स्थिर होने पर चित्त अपने आप स्थिर होता है। चित्त के स्थिर होने पर वीर्य स्थिर होता है। वीर्य के स्थिर होने पर सच्चे ज्ञान का उदय होता है। कुम्भक के समय प्राणवायु सुषुम्ना नाड़ी के भीतर विचरण करते-करते जब ब्रह्मरन्ध्र में स्थित महाकाश में पहुंचता है, तब वह स्थिर होता है। प्राण वायु के स्थिर होने पर चित्त स्थिर होता है। क्योंकि–

"इंन्द्रियाणां मनो नाथो मनोनाथस्तु मारुतः।"

हठयोग प्रदीपिका, 29

मन इन्द्रियों का कर्त्ता है और मन प्राणवायु के अधीन है। इसलिए प्राणवायु के स्थिर होने पर चित्त अवश्यमेव स्थिर होगा। चित्त के स्थिर होने पर ज्ञान नेत्र उन्मिलित होकर आत्मसाक्षात्कार या ब्रह्मसाक्षात्कार होता है। इसलिए योग की आवश्यकता को समझ कर सब को उसका अभ्यास करना चाहिये। बिना योग के दिव्य ज्ञान की प्राप्ति अथवा आत्मा की मुक्ति नहीं होती।

इसी कारण मैंने पहले ही बताया है कि योग सर्वोत्कृष्ट साधना है। योग में हर कोई, हर समय और हर हालत में सिद्धि प्राप्त कर सकता है। साधक योग के बल पर अद्भुत शक्ति प्राप्त कर सकता है। कर्म, उपासना, मन संयम अथवा ज्ञान-इन सब को पीछे धकेल कर समाधि पद प्राप्त कर सकता है। मत, अनुष्ठान, कर्म, शास्त्र और मन्दिर में उपासना आदि इसके गौण अंग-प्रत्यंग मात्र हैं। समस्त क्रियाकलापों के भीतर रहते हुए भी साधक इस योग साधना के द्वारा कैवल्य पद प्राप्त कर सकता है। अन्य धर्मावलंबी भी आर्य शास्त्र में बताये गये योग का अनुष्ठान करके सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं।

योग के बल पर बड़ी आश्चर्यजनक और अलौकिक शक्ति प्राप्त होती है। योग से सिद्ध व्यक्ति अणिमा आदि अष्ट ऐश्वर्य प्राप्त करके स्वेच्छा से विहार कर सकते हैं। उन्हें वाक सिद्धि हो जाती है। उनके दूरदर्शन, दूरश्रवण, वीर्य स्तंभन, कायव्यूह धारण और परकाया प्रवेश करने की शक्ति पैदा होती है। विन्मूत्र के लेपन के द्वारा स्वर्ण आदि धात्वंतर होता है और अन्तर्धान होने की शक्ति भी पैदा होती है। योग के प्रभाव

से ये सब शक्तियाँ प्राप्त होती हैं तथा अन्तर्यामित्व और बेरोक टोक शून्यपथ में आने जाने की शक्ति पैदा होती है। परन्तु सावधान ! अलौकिक शक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से योग साधना नहीं करनी चाहिए। इससे समाज में दस लोगों में वाहवाही मिल सकती है, परन्तु जो जैसा था वैसा ही रह जायेगा। ब्रह्म के उद्देश्य से ही योग साधना करनी चाहिए—विभूति स्वतः विकसित होगी। इसलिए योगाभ्यास से आसक्ति रहित होने की बजाय जिस प्रकार आसक्ति की आग में न जलना पड़े अथवा कर्म का बंधन तोड़ने के लिए आगे बढ़ने पर कांटों के पिंजड़े में आवद्ध न होना पड़े उसका विशेष ध्यान रखें।

एक और बात है कि सिद्धि प्राप्त करने में जितने विघ्न हैं, उनमें सन्देह सबसे अधिक खतरनाक है। मैं इतनी मेहनत कर रहा हूँ, इससे कोई लाभ होगा या नहीं—यह संदेह ही साधना पथ का कांटा है। परन्तु योग में वह आशंका नहीं है। जितना अभ्यास करोगे, उसका उतना लाभ मिलेगा। यदि किसी में योग साधना करने की प्रबल इच्छा है, फिर भी सांसारिक बाधाओं के कारण वह नहीं कर पाता है और यदि उस इच्छा को लेकर वह मर जाता है तो अगले जन्म में जन्म स्थान आदि के रूप में ऐसे अनुकूल साधन उसे प्राप्त होंगे जिसके द्वारा उसे योग का अवलंबन लेने की सुविधा होगी और उसके लिए मुक्ति का मार्ग खुल जायेगा। यदि कोई योगानुष्ठान करके सिद्धि प्राप्त करने से पहले ही शरीर त्याग करता है तो इस जन्म में उसने जहां तक अनुष्ठान किया है, अगले जन्म में वह ज्ञान स्वतः खिल उठेगा और वहां से आगे उसकी साधना आरम्भ होगी। ऐसे व्यक्ति को योगभ्रष्ट कहते हैं। योग-भ्रष्ट व्यक्ति की मृत्यु के बाद की अवस्था के बारे में भगवान श्रीकृष्ण ने 'गीता' में अर्जुन को बताया,* 'योगभ्रष्ट व्यक्ति पुण्य करने वाले लोगों को जो स्थान प्राप्त होता है, वहां

---

* प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः,
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।
अथवा योगीनामेव कुले भवति धीमताम।
एतद्धि दुर्ल्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्।

गीता 6/41-42

पर अनेक दिन रहने के बाद किसी सदाचार संपन्न धनी व्यक्ति के घर या ब्रह्म बुद्धि संपन्न उच्च वंश में जन्म लेता है। इसी कारण पूर्व में जो देह बुद्धि थी वह प्राप्त कर मुक्ति के संबंध में वह अधिक प्रयत्न करता है। इस तरह की श्रेष्ठता संबंधी जानकारी प्राप्त कर योग का अनुष्ठान करने के लिए सब को प्रयत्नशील होना चाहिये। अब देखें–

योग क्या है ?

सर्वचिन्तापरित्यागो निश्चिन्तो योग उच्यते।

–योगशास्त्र

जिस समय मनुष्य सब चिंताओं का त्याग करता है उस समय के मन की लय अवस्था योग कहलाती है–इसके अतिरिक्त–

'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः

–पातंजल, समाधिपाद, 2

हृदय की सभी वृत्तियों का निरोध करने का नाम योग है। वासना कामनाओं से युक्त चित्त को वृत्ति कहते हैं। इस वृत्ति का प्रवाह स्वप्न, जाग्रत और सुषुप्ति, इन तीन अवस्थाओं में मनुष्य के हृदय में चलता रहता है। चित्त सदैव अपनी स्वाभाविक अवस्था को पुनः प्राप्त करने की चेष्टा करता है, परन्तु इन्द्रियाँ इसे बाहर की ओर खींचती हैं। इनका दमन करना, इनकी बाहर चले जाने की प्रवृत्ति को रोकना और उसे वापिस लाकर उन चिद्घन पुरुष के समीप जाने के रास्ते पर ले जाने को योग कहते हैं। चित्त शुद्ध नहीं होने पर उसका निरोध नहीं किया जा सकता, जैसे मैला कपड़ा रंग नहीं पकड़ता और उस पर कोई दूसरा रंग चढ़ाने के लिए पहले उसे साफ करना होता है। हम तालाब की तलहटी को नहीं देख सकते। उसके क्या कारण हैं ? तालाब का पानी गंदा होने और उस पर हमेशा तरंगें चलते रहने के कारण उसकी तलहटी नहीं दिखाई देती। यदि पानी साफ है और

उस पर बिल्कुल तरंग नहीं है, तब हम उसकी तलहटी को देख सकते हैं। तालाब की तलहटी हमारा सच्चा स्वरूप है। तालाब चित्त और उसकी तरंगें वृतियाँ हैं। हम अपने हृदय में स्थित चैतन्यघन पुरुष को क्यों नहीं देख पाते हैं ? हमारा चित्त हिंसा आदि पापों से मलिन और आशा आदि वृत्तियाँ से तरंगायित है। उसके परिणामस्वरूप हम हृदय को नहीं देख पाते हैं। यम, नियम आदि साधनाओं के द्वारा चित्त का मैल हटाकर चित्त वृत्तियों का निरोध करने का नाम योग है। यम, नियम आदि साधनाओं के द्वारा हिंसा, काम और लोभ आदि पापों के मैल को हटा कर कामनाओं और वासनाओं से युक्त चित्त वृत्तियों के प्रवाह का निरोध कर सकने से हृदय में स्थित चैतन्य पुरुष का साक्षात्कार होता है। ऐसा दर्शन होने पर "मैं कौन हूँ ?" वह कौन है ?—यह भ्रम दूर होता है। उससे जगत क्या है, बाल बच्चे क्या हैं, सोने का बंधन और लोहे का बंधन क्या है, उसका ज्ञान होता है। हृदय में दृढ़ भक्ति और अहेतुक प्रेम का उद्रेक होता है। फिर उस श्याम सुन्दर के चिद्घन रूप को नहीं भुलाया जा सकता। उस समय दिव्यज्ञान उत्पन्न होता है, उस समय विशेष रूप से पता चलता है कि बाल बच्चे, धन दौलत कुछ नहीं है, शरीर कुछ नहीं है। घट, पट, प्रेम और प्रीति, ये सब भी कुछ नहीं हैं। वही आदि और अन्त से रहित और चराचर विश्व में व्याप्त विश्वरूप ही सत्य हैं। सत्य स्वरूप के सत्य ज्ञान से असत्य दूर हो जाता है। जीव राधेश्याम के महारास के महामंच में आनन्द से मतवाला होकर एक हो जाता है।

चित्त में यह अवस्था लाने के लिए योग नितांत आवश्यक है। परन्तु इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए चित्त वृत्तियों का निरोध करना होगा। इस चित्तवृत्ति निरोध का नाम योग है। अब देखें कि चित्तवृत्तियों का निरोध कैसे किया जाता है। परन्तु उससे पहले शरीर तत्त्व के संबंध में पूरा ज्ञान होना चाहिये।

शरीर तत्त्व

योग शिक्षा करने से पहले अपने शरीर के संबंध में जानकारी होनी चाहिये। शरीर और प्राण, इन दोनों बातों के पूरे तत्त्व से अवगत नहीं होने से योग साधना विड़म्बना मात्र है। इसलिए योगी बनने से पहले या उसके साथ-साथ उसकी जानकारी होनी चाहिए। क्योंकि काया (शरीर) और प्राणों के बीच आपस में क्या संबंध है, वह नहीं जानने से प्राणों को संयत नहीं किया जा सकता और शरीर को निरोग नहीं रखा जा सकता और प्राणों का किस नाड़ी में किस तरह संचरण होता है, किस प्रकार प्राण का अपान के साथ सयोंग किया जाता है, उसका भी पता नहीं चलता। अतः. योग साधना भी नहीं होती। शास्त्र में बताया गया है।

नवचक्रं षोड़शाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपंचकम,
स्वदेहे जो न जानन्ति कथं सिध्यन्ति योगिनः।

–उत्पत्तितंत्र

जिस व्यक्ति को अपने शरीर के नवचक्र, षोड़शाधार, त्रिलक्ष्य और पंचाकाश की जानकारी नहीं है, उसकी सिद्धि कैसे होगी ? किसी भी साधना के लिए जो कुछ चाहिए, वह सब शरीर में मौजूद है।

त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः।
मेरुं संवेष्ट्य सर्वत्र व्यवहारः प्रवर्त्तते।

–शिवसंहिता

"भूः, भूवः स्वः'–इन त्रिलोक में जितने तरह के जीव हैं, वह सब इस शरीर के भीतर हैं। वे सभी मेरु को घेर कर अपने अपने कार्य को सपन्न कर रहे हैं।

"देहेऽस्मिन वर्त्तते मेरुः सप्तद्वीपसमन्वितः।
सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः॥
ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा।
पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्त्तन्ते पीठदेवताः॥
सृष्टिसंहारकर्त्तारौ भ्रमन्तो शशिभास्करौ।
नभो वायुश्च वह्निश्च जलं पृथ्वी तथैव च।"

–शिवसंहिता

जीव के शरीर में सप्तद्वीप के साथ सुमेरु पर्वत रहता है। इसमें समूचे नद, नदियाँ, समुद्र, पर्वत, क्षेत्र और क्षेत्रापाल भी रहते हैं। ऋषि-मुनि, ग्रह-नक्षत्र, समस्त पुण्यतीर्थ, पुण्यपीठ और पीठदेवता इस शरीर के भीतर नित्य रहते हैं। सृष्टि के संहार करने वाले चन्द्र और सूर्य इस शरीर के भीतर निरन्तर भ्रमण कर रहे हैं। फिर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश आदि पंच महाभूत भी इस शरीर के भीतर अधिष्ठित हैं।

"जानाति यः सर्वमिदं स योगी नात्र संशयः"

–शिवसंहिता

जो शरीर की इन सभी बातों से अवगत है, वही यथार्थ योगी है। इसलिए सर्वप्रथम शरीर तत्त्व को जानना चाहिए।

प्रत्येक जीव का शरीर शुक्र, शोणित, मज्जा, मेद, मांस, अस्ति और त्वक–इन सप्तधतुओं द्वारा निर्मित है। मृदा, वायु, अग्नि, जल और आकाश, इस पंचभूत से शरीर निर्माण के लिए समर्थ सप्तधातु और भूख, प्यास आदि शरीर के धर्म उत्पन्न हुए है। पंचभूत से उत्पन्न होने के कारण इस शरीर को भौतिक शरीर कहते हैं। भौतिक शरीर निर्जीव और जड़-स्वभाव युक्त है, परन्तु चैतन्य रूपी पुरुष का आवास स्थान होने के कारण यह सचेतन जैसा प्रतीत होता है। शरीर के भीतर पंचभूत में से प्रत्येक के अधिष्ठान के लिए पृथक-पृथक स्थान है। इन स्थानों को चक्र कहते हैं। वे अपने-अपने चक्र में रहते हुए शरीर के समस्त कार्यों का निर्वाह करते हैं। गुहय क्षेत्र में जो मूलाधार चक्र है, वह पृथ्वी तत्त्व का स्थान है। लिंगमूल में जो स्वाधिष्ठान चक्र है, वह जल तत्त्व का स्थान है। नाभिमूल में मणिपुर चक्र है, जो अग्नि तत्त्व का स्थान है। हृदय क्षेत्र में अनाहत चक्र वायुतत्त्व का स्थान है। कंठ क्षेत्र में विशुद्ध चक्र आकाश तत्त्व का स्थान है। योगीजन इन पांच चक्रों में पृथ्वी आदि के क्रम से पंचमहाभूत का ध्यान करते हैं। इसके अतिरिक्त ध्यान योग्य और भी कुछ चक्र हैं। ललाट क्षेत्र में आज्ञा नामक चक्र में पंचतन्मात्र तत्त्व, इन्द्रियतत्त्व, चित्त और मन का स्थान है। उसके ऊपर ज्ञान नामक चक्र में अहंतत्त्व का स्थान है। उसके ऊपर ब्रह्म रंध्र में एक शतदल चक्र है, जिसके भीतर मह तत्त्व का स्थान है। उसके ऊर्ध्व में महाशून्य में सहस्रदल चक्र में प्रकृति-पुरुष

परमात्मा का स्थान है। योगीजन इस भौतिक शरीर में पृथ्वी तत्त्व से लेकर परमात्मा तक समस्त तत्त्वों का चिंतन करते हैं।

नाड़ियों की बात

सार्द्धलक्षत्रयं नाडयः सन्ति देहान्तरे नृणाम।
प्रधानभूता नाड्यस्तु तासु मुख्याश्चतुर्दशः ॥

–शिवसंहिता, 2/13

भौतिक शरीर को कार्यक्षम रखने के लिए मूलाधार से मुख्यतः साढ़े तीन लाख नाड़ियाँ उत्पन्न होकर जिस प्रकार पीपल या कमल के सूखे गले पते पर शिराओं का जाल दिखाई देता है, ठीक वैसे ही ये अस्तिपंजर पूर्ण शरीर के ऊपर चारों ओर फैलकर अंग और प्रत्यंग के समस्त कार्य संपन्न करा रही हैं। इन साढ़े तीन लाख नाड़ियों में चौदह नाड़ियाँ मुख्य हैं– जैसे–

"सुषुम्नेड़ा पिंगला च गांधारी हस्तिजिह्विका,
कुहूः सरस्वती पूषा शंखिनी च पयस्विनी,
वारुण्यलम्बुषा चैव विश्वोदरी यशस्विनी,
एतासु त्रिस्रो मुख्याः स्युः पिंगलेड़ासुषुम्निकाः"

–शिवसंहिता, 2/14-15

इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, गांधारी, हस्तिजिह्वा, कुहू, सरस्वती, पूषा, शांखिनी, पयस्विनी, वारुणी, अलंबुषा, विश्वोदरी और यशस्विनी, इन चौदह नाड़ियों में से इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना–ये तीन नाड़ियाँ मुख्य हैं। सुषुम्ना नाड़ी मूलाधार से निकलकर नाभिमण्डल में अण्डे के आकार में जो नाड़ी चक्र है, उसके ठीक बीच से होकर ऊपर आते हुए ब्रह्मरन्ध्र तक गई है। सुषुम्ना की बाईं तरफ से इड़ा और दाईं तरफ से पिंगला निकल कर स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, और विशुद्ध चक्र को धनुष के आकार में घेर कर इड़ा दायें नासापुट और पिंगला बायें नासपुट तक गई है। सुषुम्ना

नाड़ी मेरुदण्ड के भीतर के रन्ध्र और इड़ा और पिंगला नाड़ियाँ मेरुदण्ड के बाहर होकर गई है। इड़ा चन्द्र स्वरूप, पिंगला सूर्य स्वरूप, और सुषुम्ना चन्द्र, सूर्य और अग्नि स्वरूप सत्व, रजः और तमः—इन तीन गुणों से युक्त और खिले हुए धतूरे के फूल की तरह श्वेत वर्ण है।

पहले बताई गई अन्य मुख्य नाड़ियों में कूहू नाड़ी सुषुम्ना की बाईं तरफ से निकल कर मेढ्रक्षेत्र तक गई है। वारुणी नाड़ी शरीर के ऊपर और नीचे पूरे शरीर में फैली हुई है। यशस्विनी दायें पैर के अंगूठे के अग्रभाग तक, पूषा नाड़ी दायें नेत्र, पयस्विनी दायें कान, सरस्वती जीभ के अग्रभाग, शंखिनी बायें कान, गांधारी बायें नेत्र, हस्तिजिह्वा बायें पैर के अंगूठे, अलम्बुषा मुहं और विश्वोदरी उदर तक गई है। इस तरह समूचा शरीर नाड़ियों द्वारा आवृत है। नाड़ियों की उत्पत्ति और विस्तार के संबंध में मन को स्थिर करके सोचने पर पता चलेगा कि कन्दमूल जिस प्रकार पद्मबीजकोष के चारों ओर स्थित केसर की तरह नाड़ियों द्वारा घिरा हुआ है और बीजकोष के बीच से इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ी पराग केसर की तरह उठकर पहले बताई गई जगहों तक गई है। क्रमशः इन नाड़ियों से शाखाएँ और प्रशाखाएं निकलकर कपड़े के ताने-बाने की तरह सिर से पैर तक पूरे शरीर में फैली हुई हैं।

योगीजन इन मुख्य चौदह नाड़ियों को पुण्यनदी कहते हैं। कुहू नामक नाड़ी को नर्मदा, शंखिनी को ताप्ती, अलंबुषा को गोमती, गांधारी को कावेरी, पुषा को ताम्रपर्णी और हस्तिजिह्वा को सिन्धु कहते हैं। इड़ा गंगा, पिंगला यमुना और सुषुम्ना सरस्वती स्वरूप हैं। ये तीन नाड़ियाँ आज्ञाचक्र के ऊपर जिस जगह मिलती हैं, उसका नाम त्रिकूट या त्रिवेणी है। लोग इलाहाबाद के पास स्थित त्रिवेणी में कष्ट से अर्जित धन का व्यय कर अथवा शारीरिक तकलीफ उठाकर स्नान करने जाते हैं। यदि इन सब नदियों में स्थूल स्नान करने से मुक्ति हो जाती तो त्रिवेणी के अन्तर्गत आने वाले जल में जलचर प्राणी नहीं रहते, सब का उद्धार हो जाता। शास्त्र में भी बताया गया है—

"अन्तःस्नानविहीनस्य वहिः स्नानेन किं फलम् ?"

अन्तः स्नान रहित व्यक्ति का बाह्य स्नान से कोई लाभ नहीं है।

श्रीगुरु की कृपा से आत्मतीर्थ को ज्ञात होकर जो व्यक्ति आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित तीर्थराज त्रिवेणी में मानस स्नान या यौगिक स्नान करता है, वह अवश्य ही मुक्ति प्राप्त करता है—इस शिववाक्य में सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं है।

इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना—इन तीन मुख्य नाड़ियों में से सुषुम्ना सब से मुख्य है। इसके भीतर वज्राणी नामक एक नाड़ी है। यह नाड़ी शिश्न स्थान से आरम्भ होकर शिरः स्थान तक गई हुई है। वज्रनाड़ी शरीर के भीतर आदि से अन्त तक प्रणव से युक्त है अर्थात इस का आदि और अन्त चन्द्र, सूर्य और अग्नि रूपी ब्रह्मा, विष्णु और शिव द्वारा आवृत है। मकड़ी के जाल की तरह चित्राणी नामक एक और बहुत ही सूक्ष्म नाड़ी है। इस चित्राणी नाड़ी में पद्म या चक्र सब गूथें हुए हैं। चित्राणी नाड़ी के भीतर बिजली के वर्ण जैसी और एक नाड़ी है जिसका नाम ब्रह्मनाड़ी है। यह मूलाधार पद्म में रह रहे महादेव के मुख से निकल कर सिर पर स्थित सहस्रदल तक गई हुई है। जैसे

"तन्मध्ये चित्राणी सा प्रणवविलसिता योगिनां योगगम्या,
लूतातन्तुपमेया सकलसरसिजान मेरुमध्यान्तरस्थान।
भित्त्वा देवीप्यते तदग्रथनरचनया शुद्धबुद्धिप्रबोधा,
तस्यान्तब्रह्मनाड़ी हरमुखकुहरादादिदेवान्तसंस्था॥

पूर्णानन्द परमहंसकृत 'षटचक्र'

यह ब्रह्मनाड़ी दिन रात योगियों द्वारा परिचिन्तनीय है। क्योंकि योगसाधना का चरम फल इस ब्रह्मनाड़ी से प्राप्त होता है। इस ब्रह्मनाड़ी के भीतर होकर जा सकने से आत्मसाक्षात्कार होता है और योग का उद्देश्य पूरा होकर मुक्ति मिलती है। अब किस नाड़ी में किस तरह वायु का संचरण होता है, वह जानना आवश्यक है।

वायु की बात

इस भौतिक शरीर में जितने प्रकार के शारीरिक कार्य संपन्न होते हैं वह सब वायु की सहायता से ही होते हैं। चैतन्य की सहायता से इस जड़ शरीर में वायु ही जीव के रूप में समस्त शारीरिक कार्य कर रहा है। शरीर केवल यंत्र मात्र है। वायु इस यंत्र को संचालित करने का उपकरण है। इसलिए वायु को वश में करने के उपाय का नाम योगसाधना है। वायु को वश में करने पर मन वशीभूत होता है और मन को अपने वश में करने पर इन्द्रियों को जीता जाता है। इन्द्रियों को जीतते ही सिद्धि आसान हो जाती है। वायु को जीत कर जिस तरह चैतन्यरूपी पुरुष से साक्षात होगा उसके लिए योगीजन साधना करते हैं। इसलिए सब से पहले वायु संबंधी जानकारी प्राप्त करना बहुत आवश्यक है।

मनुष्य के शरीर में **अनाहत** नामक लाल रंग का एक कमल है। उसमें त्रिकोणाकार पीठ पर **वायुबीज** (यं) है। उस वायु बीज या वायु यंत्र को प्राण कहते हैं। शरीर के विभिन्न स्थानों में रहते हुए शारीरिक कार्य के भेद से प्राणवायु के दस नाम हैं।

"प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च वायवः,
नागः कूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनजंयः।

–गोरक्ष संहिता, 29

प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनंजय–प्राणवायु के ये दस नाम हैं। इन दस वायु में प्राण आदि पंचवायु अन्तरंग और नाग आदि पंचवायु वहिरंग हैं। शरीर के भीतर पंचप्राणों के लिए अलग-अलग स्थान है। जैसे

"हृदि प्राणो वसेन्नित्यमपानो गुह्यमण्डले,
समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमध्यगः,
व्यानो व्यापी शरीरे तु प्रधाना : पंचवायवः ॥

गोरक्ष संहिता, 30

मुख्य पांच वायु में से प्राणवायु हृतपिण्ड क्षेत्र, अपान वायु गुह्यक्षेत्र, समान वायु नाभिमण्डल, उदान वायु कण्ठ और व्यान वायु पूरे शरीर में

फैला हुआ है।

अलग-अलग नाम होते हुए भी एक प्राणवायु इनमें मूल और मुख्य है।

"प्राणस्य वृत्तिभेदेन नामानि विविधानि च"

–शिवसंहिता

वृत्तियों के भेद से प्राण वायु के नाम विविध है–अब इन

दस वायु के गुण

को जानना चाहिए कि कैसे प्राण आदि अन्तरंग पंचवायु और नाग आदि बहिरंग पंच वायु यथास्थान रहते हुए समस्त शारीरिक कार्यों को पूरा कर रहे हैं। जैसे–

"निः श्वासोच्छ्वासरूपेण प्राणकर्म समीरितम।
अपानावायोः कर्म्मैतद्विन्मुत्रादिविसर्जनम॥
हानोपादानचेष्टादिर्व्यानकर्मेति चेष्यते।
उदानंकर्म तच्चोक्त देहस्योन्नयनादि यत॥
पोषणादि समानस्य शरीरे कर्म कीर्त्तितम।
उद्गारादिर्गुणो यस्तु नागकर्म समीरितम्॥
निमीलनादि कूर्मस्य क्षुतृष्णे कृकरस्य च।
देवदत्तस्य विपेन्द्र तन्द्राकर्मेति कीर्त्तितम्
धनंजयस्य शोषादि सर्वकर्म प्रकीर्त्तितम्।

योगी याज्ञवल्क्य 4/66-69

नाक के द्वारा हृदय में श्वास-प्रश्वास लेना, पेट में खाये गये अन्न और जल का पाचन और पृथकीकरण करना, नाभिस्थान में अन्न को मल, पानी को पसीना और मूत्र तथा रस आदि को वीर्य में बदलना प्राण वायु का कार्य है। पेट में अन्न आदि के पाचन के लिए अग्नि प्रज्वलित करना, गुह्यस्थान में मल, उपस्थ में मूत्र और अण्डकोष में वीर्य का निःसरण

करना तथा मेढ्र, उरु, जानु, कमर और दोनों जाघों के कार्य संपन्न करना अपान वायु का कार्य है। पचे हुए रस आदि को बहत्तर हजार नाड़ियों में फैलाना, शरीर की पुष्टि करना तथा पसीना निकालना समान वायु का कार्य है। अंग प्रत्यंग के संधि स्थानों और अंगों का विकास करना उदान वायु का कार्य है। कान, नेत्र, कंधा, टखना, गले और कमर के निम्न भाग का कार्य संपन्न कराना व्यान वायु का कार्य है। नागवायु उदगार, कूर्मवायु संकोचन, कृकर वायु भूख और प्यास, देवदत्त वायु निद्रा और तंद्रा तथा धनंजय वायु शोषण आदि कार्य संपन्न कराते हैं। वायु के इन समस्त गुणों को जान कर वायु को जीत सकने से शरीर के ऊपर स्वेच्छानुसार अधिकार जमाया जाता है तथा शरीर को स्वस्थ, निरोग, हृष्ट-पुष्ट और कान्तियुक्त किया जा सकता है।

जब तक शरीर में वायु रहेगा तब तक यह शरीर जीवित रहता है। यदि वह वायु शरीर से निकलकर उसमें पुनः प्रवेश नहीं करता, तो मृत्यु होती है। प्राणवायु नाक से खींचकर नाभि तक आवागमन करता है और अपान वायु योनिस्थल से नाभितक निम्नभाग में आवागमन करता है। जिस समय प्राण वायु नासारन्ध्र द्वारा आकृष्ट होकर नाभिमण्डल के ऊपरि भाग को फुलाता है उसी समय अपान वायु योनिक्षेत्र द्वारा आकृष्ट होकर नाभिमण्डल के निम्नभाग को फुलाता है। इस तरह नासारन्ध्र और योनिस्थान दोनों ओर प्राण और अपान, ये दोनों वायु ही पूरक के समय नाभिमण्डल में आकृष्ट होते है और रेचक के समय दोनों वायु अपनी-अपनी दिशा में चले जाते हैं—जैसे

"अपान कर्षति प्राणं प्राणोऽपानंच कर्षति,
रजुवद्धो यथाश्येनो गतोऽप्याकृष्यते पुनः ॥
तथा चैतौ विसम्वादे सम्वादे सन्त्यजेदिदम्।

—षटचक्रभेदटीका

अपान वायु प्राण वायु को खींचता है और प्राण वायु अपान वायु को खींचता है। जिस प्रकार रस्सी से बंधा बाज पक्षी उड़ने पर भी पुनः लौट आता है, ठीक वैसे ही नासारन्ध्र से निकल जाने पर भी प्राण वायु अपान वायु द्वारा आकृष्ट होकर पुनः शरीर के भीतर प्रवेश करता है। इन

दोनों वायु के विसंवाद से अर्थात नासा और योनिस्थान की ओर विपरीत दिशा में चलने से जीवन की रक्षा होती है। फिर जिस समय दोनों वायु नाभिग्रंथि को वेधकर एक साथ मिलकर जाते हैं, उस समय वे शरीर का त्याग करते है। सांसारिक भाषा में जीव की मृत्यु होती हैं। निकलते समय इस भाग को नाभिश्वास कहते हैं। वायु के इन समस्त तत्त्वों को जानकर ही योगाभ्यास में लगना चाहिए। अब शरीर स्थित हंसाचार की जानकारी प्राप्त करें।

हंस तत्त्व

मानव शरीर के भीतर हृदय क्षेत्र में अनाहत नामक पद्म में त्रिकोणाकार पीठ पर वायुबीज 'यं' रहता है। इस वायु मंडल में कामकला रूपी तेजोमय रक्त वर्ण के पीठ आसन पर करोड़ों विद्युत के समान तेजोमय सोने के रंग का **वाणलिंग** शिव हैं। उनके माथे पर श्वेतवर्ण और तेजोमय और बहुत ही सूक्ष्म एक मणि है। उसके भीतर निर्वात दीपकली के समान हंसबीज का प्रतिपाद्य तेजो विशेष है। यह जीव की **जीवात्मा** है। अहंभाव को आश्रय कर यह जीवात्मा मानव के शरीर में रहती है। हम लोग माया से मोहग्रस्त और शोक से कातर तथा हर तरह के जिस सुखदुख आदि के फल का भोग करते हैं, वह सब हमारे हृदय में स्थित यह जीवात्मा ही भोगती है। यंह जीवात्मा अनाहत पद्म में दिन रात साधना, योग या ईश्वर चिंतन करती है। जैसे–

सोऽहं-हंसं-पदेनैव जीवो जपति सर्वदा।

जीव सदैव हंस का विपरीत सोऽहं का जप करता है। श्वास प्रश्वास में हंस उच्चारित होता है। श्वास वायु के निर्गमन के समय हं और ग्रहण के समय सः, ये शब्द उच्चारित होते हैं। हं शिव स्वरूप और सः शक्ति रूपिणी है। जैसे–

हंकारो निर्गमे प्रोक्तः सकारस्तु प्रवेशने।
हंकारः शिवरूपेण सकारः शक्तिरुच्यते ॥

–स्वरोदय शास्त्र 11-7

यदि श्वास को छोड़कर पुनः उसे ग्रहण नहीं किया जाये, तो उससे मृत्यु हो सकती है। अतः हं शिव स्वरूप या मृत्यु है। सः कार का अर्थ ग्रहण करना है। यही शक्ति स्वरूप है। अतः यह श्वास प्रश्वास ही जीव का जीवत्व और श्वासरोध ही मृत्यु है। इसलिए हंस ही जीव की जीवात्मा है। शास्त्र में भी भूतशुद्धि में लिखा है, हंस इति जीवात्मानं' अर्थात हंस ही जीवात्मा है।

इस हंस शब्द को ही **अजपा** गायत्री कहते हैं। जितनी बार श्वास प्रश्वास होता है उतनी बार परम मंत्र हंस का अजपा जप होता है। जीव दिन रात 24 घंटे में 21,600 बार अजपा गायत्री का जप करता है। यही मनुष्य का स्वाभाविक जप और साधना है। यह जान सकने से माला और झोला लेकर बाह्य अनुष्ठान अथवा उपवास आदि कठोर शारीरिक तकलीफें नहीं उठानी पड़ती। खेद की बात है कि इसके सही तत्त्व और संकेतों के उपदेशों के अभाव के कारण इस तरह सहज जप और साधना को कोई नहीं समझ रहा है। गुरु के उपदेश से यह हंसध्वनि सामान्य चेष्टा से साधक को सुनाई दे सकती है। इस हंस का विपरीत 'सोऽहं' साधक की साधना है। जीवात्मा इस सोऽहं (अर्थात् मैं वही हूँ अथवा मैं वही परमेश्वर हूँ) शब्द का निरंतर जप करती है, परन्तु अज्ञान तमसा से आच्छन्न और विषय से विमूढ़ हमारे मन को उसकी उपलब्धि नहीं होती। साधक सामान्य प्रयत्न से स्वतः उठने वाले, अश्रुतपूर्व और अलोक सामान्य 'हंस' और 'सोऽहं' ध्वनि सुनकर अपार्थिव परमानन्द प्राप्त कर सकता है।

प्रणव तत्त्व

अनाहत पद्म की पूर्व कथित हंस ध्वनि को प्रणव ध्वनि कहते हैं। जैसे–

"शब्दब्रह्मेति तां प्राह साक्षाद्देवः सदाशिवः।
अनाहतेषु चक्रेषु स शब्दः परिकीर्त्यते।

परापरिमलोल्लास

अर्थात् शब्द ही ब्रह्म है। वह प्रत्यक्ष देवता सदाशिव है। वह शब्द अनाहत चक्र में है। अनाहत पद्म में हंस उच्चारित होता है। वह हंस ही **प्रणव** या ऊँकार है। जैसे–

"हकारंच सकारंच लोपयित्वा ततः परं।
सन्धिं कुर्यात्ततः पश्चात प्रणवोऽसौ महामनुः।"

–योगस्वरोदय

अर्थात् हंस का विपरीत 'सोऽहं' होता है, परन्तु स और ह का लोप होने पर केवल ऊँ रहता है। यही हृदय में स्थित शब्द ब्रह्मरूपी ऊँकार है। यदि साधकगण शब्द ब्रह्म रूपी प्रणवध्वनि (ऊँकार) को सुनने की लालसा में बारह पंखुडियों वाले अनाहत पद्म को उर्ध्वमुख में चिंतन करके गुरु के उपदेश के अनुसार क्रिया करेंगे तो हंस या ऊँकार ध्वनि सुनाई देगी।

इस शब्द ब्रह्म रूपी ऊँकार के अतिरिक्त और एक वर्ण ब्रह्मरूपी ऊँकार है। वह आज्ञाचक्र के उर्ध्व में निरालंबपुरी में नित्य विराजित है। भौंहों के बीच द्विदल (दो पंखड़ियों वाला) श्वेतवर्ण का **आज्ञाचक्र** है। इस चक्र के ऊपर जहां पर सुषुम्ना नाड़ी समाप्त और शंखिनी नाड़ी आरंभ होती है, उस स्थान को **निरालंबपुरी** कहते हैं। वही तेजोमेय तारकब्रह्म का स्थान है। यहीं पर ब्रह्मनाड़ी पर आश्रित तारक बीज प्रणव (ऊँकार) विद्यमान है। यही प्रणव वेद के प्रतिपाद्य ब्रह्मरूपी और शिवशक्ति के योग से प्रणवरूपी है। शिव शब्द से ह-कार है। उसका आकार गजकुम्भ के समान है अर्थात ऊँकार है। ऊँकार रूपी पलंग पर नादरूपिणी देवी विराजमान हैं। उसके ऊपर विन्दुरूपी परमशिव है। तब कहीं ऊंकार होता है। इसलिए शिवशक्ति या प्रकृति और पुरुष के संयोग से ऊंकार बनता है। तंत्र में इस ऊंकार की स्थूल मूर्ति या **राजराजेश्वरी** रूपी महाविद्या प्रकाशित है।*

---

* श्रीमतः स्वामी विमलानन्द कृत और कलकत्ता चोराबागान आर्ट स्टूडियो से प्रकाशित श्री श्री कालिका मूर्ति प्रणव का स्थूल रूप है। पंच प्रेतासन में महाकाल पर शायित हैं। उनके नाभि कमल में शिवशक्ति है। यह मिलन अपूर्व है।

उसका गूढ़ रहस्य और विस्तृत विवरण इस ग्रंथ का प्रतिपाद्य विषय नहीं है।

साधक जब योग के अनुष्ठान से यथाविधि षटचक्र को भेद कर ब्रह्मनाड़ी का आश्रय लेकर इस निरालंबपुरी में आता है, उसे महाज्योति रूंपी ब्रह्म ऊँकार अथवा अपने इष्टदेवता के दर्शन होते हैं और वह वास्तव में निर्वाण प्राप्त करता है। समस्त देवी-देवताआं के बीज स्वरूप और वेद के प्रतिपाद्य ब्रह्मरूपी प्रणव तत्त्व को अवगत होकर साधना करने से इस तारक ब्रह्म के स्थान पर ज्योतिर्मय देवी-देवताओं के दर्शन प्राप्त होते हैं। तब तो इस तीर्थ या उस तीर्थ में घूमकर अकारण तकलीफें नहीं उठानी पड़ती।

ऊँकार प्रणव का दूसरा नाम ही है। ऊँकार के तीन रूप हैं—श्वेत, पीत और लोहित। अ, उ, म के योग से प्रणव बना है और ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर प्रणव में प्रतिष्ठित हैं—जैसे

"शिवो ब्रह्मा तथा विष्णुरोंकारे च प्रतिष्ठिताः।
अकारश्च भवेदब्रह्मा उकारः सच्चिदात्मकः।
मकारो रुद्र इत्युक्तः...

अ-कार ब्रह्मा, उ-कार विष्णु, म-कार महेश्वर हैं। इसलिए प्रणव में ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, ये तीन देवता, इच्छा क्रिया और ज्ञान, ये तीन शक्तियाँ तथा सत्व, रजः और तम, ये तीन गुण प्रतिष्ठित हैं। इसलिए इसे **त्रयी** कहते हैं। शास्त्र में है, "त्रयीधर्मः सदाफलः अर्थात त्रयी अ-कार, उ-कार और म-कार युक्त शब्द प्रणव धर्म सदैव फलदाता है। जो इस प्रणव त्रय युक्त गायत्री का जप करता है, वह परमपद को प्राप्त करता है। यदि ब्राह्मणों के गायत्री जप में तीन प्रणवों के संयुक्त तथा इष्ट मंत्र के आदि और अन्त में प्रणव के द्वारा सेतु बंधन करके जप नहीं किया जाये तो गायत्री या इष्ट मंत्र के जप का फल व्यर्थ जाता है। हमारे देश के ब्राह्मण गायत्री के आदि और अन्त में दो प्रणव जोड़कर गायत्री का जप करते हैं। परन्तु वह शास्त्र विरुद्ध है। आदि में व्याहति के बाद और अन्त में इन तीन जगहों पर प्रणव को जोड़ कर जप करना चाहिए।

पहले ही बताया गया है कि अ, उ और म के योग से प्रणव बना है। प्रणव का यह अ-कार नाद रूपी, उ-कार विन्दु रूपी म-कार कलारूपी तथा ऊँकार ज्योति रूपी है। साधकगण साधना करते समय पहले नाद को सुनकर उसके लालच में आ जाते हैं, उसके बाद विन्दु द्वारा और तत्पश्चात कला द्वारा प्रलुब्ध होकर अन्त में ज्योतिदर्शन करते हैं।

प्रणव में अष्ट अंग, चतुष्पाद, त्रिस्थान, पंचदेवता आदि अनेक गुप्त रहस्य हैं परन्तु उन सबके तत्त्वों की जानकारी अथवा विस्तृत विवरण देना इस ग्रंथ का उद्देश्य नहीं है।

कुलकुण्डलिनी-तत्त्व

मलद्वार से दो अंगुल ऊपर और लिंगमूल से दो अंगुल नीचे चार अंगुल विस्तार वाला **मूलाधार कमल** है। उसमें पहले बताई गई ब्रह्मनाड़ी के मुंह में स्वयंभूलिंग है। उसके शरीर में दाक्षिणावर्त्त होकर साढ़े तीन फेरे मार कर **कुण्डलिनीशक्ति** विद्यमान है जैसे–

पश्चिमाभिमुखी योनिर्गुदमेढ्रान्तरालगा।
तत्र कन्दं समाख्यातं तत्रास्ते कुण्डली सदा।।

–शिवसंहिता

मलद्वार और लिंग, इन दोनों के बीच की जगह में पीछे की ओर मुंह करके **योनिमंडल** है–उस योनिमण्डल को कन्द भी कहते हैं। योनिमण्डल में कुण्डलिनी शक्ति समस्त नाड़ियों को लपेट कर साढ़े तीन कुटिलाकार सर्प के रूप में अपनी पूंछ को मुंह में रखकर सुषुम्ना नाड़ी के छिद्र को रोक करके रहती है।

यही कुण्डलिनी ही नित्यानन्द स्वरूपा परमा **प्रकृति** है। उसके दो मुंह है तथा वह विदयुल्लताकार और अति सूक्ष्म है। वह देखने में अर्ध ऊँकार की प्रकृति के समान है। मर, अमर और सुर आदि समस्त प्राणियों के शरीर में कुण्डलिनी विराजमान है। जिस प्रकार कमल पर भौंरा बैठता

है, ठीक वैसे ही शरीर के भीतर कुण्डलिनी विराजमान रहती है। इस कुण्डलिनी के भीतर केले के कोष की तरह कोमल मूलाधार में चितशक्ति विद्यमान है। उसकी गति बहुत ही दुर्लक्ष्य है।

कुण्डलिनीशक्ति प्रचण्ड, स्वर्ण वर्ण, तेज स्वरूप दीप्तिमती और सत्व, रजः और तमः, इन तीन गुणों को जन्म देने वाली **ब्रह्मशक्ति** है। यही कुण्डलिनी शक्ति ही इच्छा, क्रिया और ज्ञान, इन तीन नामों से विभाजित होकर समूचे शरीर में प्रत्येक चक्र में घूमती है। यही शक्ति ही हमारी जीवनी शक्ति है। इस शक्ति को वश में लाना ही योग साधना का उद्देश्य है।

यही कुलकुण्डलिनी शक्ति ही जीवात्मा का प्राणस्वरूप है। परन्तु कुलकुण्डलिनी शक्ति ब्रह्मद्वार को रोककर सुखपूर्वक सोयी हुई है। उसके कारण ही जीवात्मा रिपुओं और इन्द्रियों द्वारा संचालित होकर अहंभावापन्न हुई है तथा अज्ञान-माया से पूरी तरह आच्छन्न होकर भ्रमवश कर्मफल का भोग करती है। यदि कुलकुण्डलिनी शक्ति जागृत नहीं होगी, तो सैकड़ों शास्त्रों के पाठ और गुरु के उपदेश से सच्चा ज्ञान पैदा नहीं होगा तथा तप, जप, साधना और भजन, सब कुछ व्यर्थ जाता है। जैसे–

''मूल पद्मे कुण्डलिनी यावन्निद्रायिता प्रभो,
तावत किंचिन्न सिध्येत मंत्रयंत्रार्च्चनादिकम,
जागर्त्ति यदि सा देवी बहुभिः पुण्यसचयैः,
तदा प्रसादमायाति मंत्रयंत्रार्च्चनादिकम ॥

–गौतमीय तंत्र

जब तक मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी शक्ति जागृत नहीं होती, तब तक मंत्र के जप और मंत्र आदि से पूजा और अर्चना व्यर्थ जाती है। यदि पुण्य के प्रभाव से वह शक्ति जागृत होती है तो मंत्र जप आदि का फल भी सिद्ध होगा।

योग के अनुष्ठान से कुण्डलिनी का चैतन्य करा सकने से मनुष्य का जीवन पूर्णत्व को प्राप्त होगा। प्रतिदिन भक्ति भाव से कुण्डलिनी शक्ति के ध्यान संबंधी पाठ करने से साधक का इस शक्ति

के संबंध में ज्ञान होता है और यह शक्ति धीरे-धीरे उद्‌वोधिता होती है।

''ध्यायेत् कुण्डलिनीं सूक्ष्मां मूलाधारनिवासिनीम्।
तामिष्टदेवतारूपां सार्द्धत्रिवलयान्विताम।
कोटि सौदामिनीभसां स्वयम्भूलिंगवेष्टिताम॥''

अब शरीर में स्थित नवचक्रों का विवरण जान लेना आवश्यकं है अन्यथा योग साधना विडम्बना मात्र होगी।

''नवचक्रं कलाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपंचकम्,
स्वदेहे यो न जानाति स योगी नामधारकः

–योगस्वरोदय

जो व्यक्ति शरीर में स्थित नवचक्र, षोड़श आधार, त्रिलक्ष्य और पांच आकाश से अवगत नहीं है, वह केवल नाम मात्र का योगी है अर्थात् वह योग तत्त्व के बारे में कुछ भी नहीं जानता। परंन्तु नवचक्र का विस्तृत विवरण देना इस निर्धन अर्थहीन लेखक के वश की बात नहीं है। फिर भी इस ग्रंथ में जो कुछ साधनाकौशल शामिल किये गये हैं, उनकी साधना के अनुकूल नवचक्र का विवरण यथार्थ रूप में दिया गया है। जो इस की पूरी जानकारी चाहता है, उसे पूर्णानन्द परमहंस लिखित 'षटचक्र' को पढ़ना चाहिए। योगसाधना के अतिरिक्त अन्य नित्य नैमित्तिक तथा काम्य जप पूजा के लिए भी चक्रों का विवरण जानना चाहिए।

नवचक्र

मूलांधारं चतुष्पद्मं गुदोर्द्धे वर्त्तते महत्।
लिंगमूले तु पीताभं स्वाधिष्ठानन्तु षडदलम॥
तृतीयं नाभिदेशे तु दिग्‌दलं परमाद्‌भुतम।
अनाहतमिष्टपीठं चतुर्थं कमलं हृदि॥
कलापत्रं पंचमन्तु विशुद्धं कण्ठदेशतः।

आज्ञायां षष्ठंक चक्रं भ्रुवोर्मध्ये द्विपत्रकम ॥
चतुःषष्टिदलं तालुमध्ये चक्रन्तु मध्यमम्
ब्रह्मरन्ध्रेऽष्टमं चक्रं शतपत्रं महाप्रभम्।
नवमन्तु महाशून्यं चक्रन्तु तत् परात्परम
तन्मध्ये वर्त्तते पद्मे सहस्रदलंमद्भुतम् ॥

–प्राणतोषिणीधृत तंत्रवचन

इस तंत्रवचन की व्याख्या से साधकगण नवचक्र का विवरण कुछ भी नहीं जान सकते। इसलिए षटचक्र के संस्कृत अंश को छोड़कर अनुवाद में से साधकों के लिए अवश्य ज्ञातव्य विषय नीचे दिया गया है।

प्रथम–मूलाधार चक्र

मानव शरीर के मलद्वार से दो अंगुल ऊपर और लिंगमूल से दो अंगुल नीचे चार अंगुल विस्तृत जो योनिमण्डल है, उसके ऊपर **मूलाधारपद्म** है। यह सामान्य रक्तवर्ण और चतुर्दल युक्त या चार पंखुड़ियों वाला है। चतुर्दल अर्थात् व, श, ष, स, ये चार वर्णात्मक है। इन चार वर्णों के रंग सोने की तरह है। इस पद्म की कर्णिका में अष्टदल शोभित चतुष्कोण **पृथ्वीमण्डल** है। उसके एक पार्श्व में पृथ्वी बीज **लं** है। उसमें पृथ्वी बीज के प्रतिपाद्य **इन्द्र देव** विराजित हैं। इन्द्र देव के चार हाथ हैं। उनका रंग पीला और वह श्वेत हाथी पर विराजमान हैं। इन्द्र की गोद में शैशवावस्था में चतुर्भुज ब्रह्मा विराजमान हैं। ब्रह्मा की गोद में रक्तवर्ण, चतुर्भुज, सालंकृता **डाकिनी** नाम की उनकी शक्ति विराजमान है।

लं बीज के दायें में कामकलास्वरूप रक्तवर्ण त्रिकोणमण्डल है। उसके भीतर तेजोमय रक्तवर्ण **क्लीं** बीजरूपी कन्दर्प नामक रक्तवर्ण स्थिरतर वायु की अवस्थिति है। उसके भीतर बिल्कुल ब्रह्मनाड़ी के मुख में **स्वयम्भूलिंग** है। यह लिंग रक्तवर्ण का और करोड़ों सूर्यों के समान तेजोमय है। उनके शरीर को साढ़े तीन कुण्डल मार कर कुण्डलिनी शक्ति

विराजित है। इस कुलकुण्डलिनी शक्ति के भीतर चित् शक्ति है। यह कुण्डलिनी शक्ति सब की इष्टदेवी स्वरूपिणी है। यह मूलाधार चक्र मानव शरीर का आधार स्वरूप है। इसलिए इसका नाम आधार पद्म है। साधना और भजन का मूल यही स्थान है। इसलिए इसे मूलाधार पद्म कहते हैं।

इस मूलाधार पद्म का ध्यान करने से गद्य और पद्य आदि में वाक् सिद्धि और आरोग्य की प्राप्ति होती है।

द्वितीय–स्वाधिष्ठान चक्र

लिंगमूल में स्थित दूसरे पद्म का नाम **स्वाधिष्ठान** है। यह सुप्रदीप्त अरुणवर्ण का तथा षड़दल युक्त (छः पंखुडियों वाला) है। षडदल अर्थात् ब, भ, म, य, र, ल–यह षडमातृका वर्णात्मक है। प्रत्येक दल में अवज्ञा, मूर्च्छा, प्रश्रय, अविश्वास, सर्वनाश और क्रूरता, ये छः वृत्तियाँ हैं। इसकी कर्णिका के भीतर श्वेतवर्ण और अर्ध चन्द्राकार **वरुणमण्डल** है। उसके भीतर वरुण बीज श्वेतवर्ण **वं** है। उसके भीतर वरुण बीज के प्रतिपाद्य श्वेतवर्ण द्विभुज वरुण देवता मगरमच्छ पर विराजमान होकर अधिष्ठित हैं। उनकी गोद में जगत पालक और नव यौवन संपन्न **हरि** हैं। उनके चतुर्भुज है। चार हाथ में शंख, चक्र, गदा और पद्म है। उनकी छाती पर श्रीवत्स कोस्तुभ शोभायमान तथा उनका परिधान पिताम्बर है। उनकी गोद में दिव्य वस्त्र और आभूषण पहने चतुर्भुजा, गौर वर्णी **राकिनी** नाम की उनकी शक्ति विराजमान है।

इस पद्म का ध्यान करने से भक्ति, आरोग्य और प्रभुत्व आदि में सिद्धि प्राप्त होती है।

तृतीय–मणिपुर चक्र

नाभिदेश में तृतीय पद्म **मणिपुर** है। इसका रंग बादल जैसा और इसमें दस दल (पंखुड़ियाँ) हैं। दस दल अर्थात् ड, ढ ण, त थ, द, ध, न, प फ, ये दसमातृका वर्णात्मक है। ये दस वर्ण नीले रंग के हैं। प्रत्येक दल में लज्जा, पिंशुनता, ईर्षा, सुषुप्ति, विषाद, कषाय, तृष्णा, मोह, घृणा और भय–ये दस वृत्तियाँ हैं। मणिपुर पद्प की कर्णिका के भीतर लाल रंग का त्रिकोण **वह्निमण्डल** है। उसके भीतर वह्नि बीज रं है। यह लाल रंग का है। इस वह्नि बीज में चार हाथों वाले रक्त वर्ण **अग्निदेव** मेष पर आरोहण पूर्वक अधिष्ठित हैं। उनकी गोद में जगत का नाश करने वाले भस्म का लेप लगाये सिन्दूर वर्ण के **रुद्र** व्याघ्रचर्म पर बैठे हुए हैं। उनके दो हाथ हैं। इन दो हाथों में वर और अभय शोभायमान है। उनके त्रिनयन और उनका परिधान व्याघ्र चर्म है। उनकी गोद में पीले रंग के वस्त्र पहने और अनेक आभूषण पहने चतुर्भुजा सिन्दूर वर्णी **लाकिनी** नामक उनकी शक्ति विराजमान है।

इस पद्म का ध्यान करने से आरोग्य और ऐश्वर्य प्राप्त होता है तथा जगत का नाश आदि करने की सामर्थ्य पैदा होती है।

चतुर्थ–अनाहत चक्र

हृदय में बन्दूक फूल के समान रंग वाला द्वादश दल युक्त चौथा पद्म **अनाहत** है। द्वादश दल अर्थात् क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ–ये द्वादश मातृकावर्णात्मक है। इन वर्णों का रंग सिन्दूर जैसा है। प्रत्येक दल में आशा, चिंता, चेष्टा, ममता, दम्भ, व्याकुलता विवेक, अहंकार, लोलता, कपटता, वितर्क और अनुताप, ये बारह वृत्तियाँ हैं। इस पद्म की कर्णिका के भीतर अरुण वर्ण का सूर्यमण्डल और धुएं के रंग जैसा षटकोणयुक्त **वायुमण्डल** है। उसके एक पार्श्व में धुएं के रंग वाला

वायु बीज यं है। इस वायुबीज के भीतर उसके प्रतिपाद्य धूम्र वर्ण चतुर्भुज **वायुदेव** कृष्णसार पर आरोहण पूर्वक अधिष्ठित हैं। उनकी गोद में वराभयलसिता त्रिनेत्रा, सर्वालंकार भूषिता, मुण्डमालाधारिणी पीले रंग की **काकिनी** नामक उनकी शक्ति विराजमान है। इस अनाहत पद्म के भीतर स्थित वाण लिंग शिव और जीवात्मा की बात 'हंस तत्त्व' में पहले बतायी जा चुकी है।

इस अनाहत पद्म का ध्यान करने से अणिमा आदि अष्ट ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

पंचम–विशुद्ध चक्र

कण्ठदेश में धूम वर्ण षोडशदल युक्त **विशुद्ध** पद्म है। षोडशदल अर्थात् अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ औ, अं, अः—ये षोलह मातृका वर्णात्मक है। इन वर्णों का रंग षोण फूल के रंग जैसा है। प्रत्येक दल में निषाद, ऋषभ, गांधार, षड़ज, मध्यम, धैवत, पंचम—ये सप्त स्वर और हुं फट, वौषट, वषट, स्वाहा, नमः विष और अमृत आदि हैं। इस पद्म की कर्णिका में श्वेतवर्ण के चन्द्रमण्डल के भीतर स्फटिक जैसे रंग वाला हं है। उसके भीतर हं बीज के प्रतिपाद्य **आकाश देवता** श्वेतहस्ती पर आरूढ़ हैं। उनके चार हाथ हैं। इन चार हाथों में पाश, अंकुश, वर और अभय शोभायमान है। इन आकाशदेवता की गोद में त्रिलोचनान्वित, पंचमुखलसित, दसभुजा सदसत् कर्म के नियोजक, व्याघ्र, चर्माम्वर **सदाशिव** हैं। उनकी गोद में शर, चाप, पाश और शूल से लैस चतुर्भुज पीले वस्त्र वाली, रक्तवर्ण **शाकिनी** नामक उनकी शक्ति अर्धांगिनी के रूप में विराजित है। इन अर्धनारीश्वर शिवजी के पास सब का बीजमंत्र या मूलमंत्र है।

इस विशुद्ध पद्म का ध्यान करने से जरा और मृत्युपाश रहित भोग आदि प्राप्त होते हैं।

षष्ठ–आज्ञाचक्र

दोनों भौहों के बीच श्वेतवर्ण द्विदल युक्त **आज्ञापद्म** है। दो दल ह और क्ष–ये दो वर्णात्मक है। इस पद्म की कर्णिका के भीतर शरतचन्द्र के समान निर्मल श्वेतवर्ण त्रिकोणमण्डल विद्यमान है। त्रिकोण के तीन कोनों में सत्व, रजः और तम, ये तीन गुण और त्रिगुणान्वित ब्रहमा, विष्णु और शिव, ये तीन देवता विराजमान हैं। त्रिकोणमण्डल के भीतर शुक्लवर्ण का चन्द्रबीज ठं दीप्तिमन्त होकर रहते हैं। त्रिकोणमण्डल के एक पार्श्व में श्वेतवर्ण की विन्दु है। उसके पार्श्व में चन्द्रबीज के प्रतिपाद्य, वराभययुक्त द्विभुज देवविशेष की गोद में जगन्निधान स्वरूप, द्विभुज, त्रिनेत्र ज्ञानदाता **शिव** है। उनकी गोद में चांद जैसी शुक्लवर्णी, षडवदना, विद्या-मुद्रा-कपाल, डमरू-जपवटी वराभय-शर-चाप अंकुश-पाश और पंकजयुक्त द्वादशभुजा **हाकिनी** नाम की उनकी शक्ति विराजमान हैं।

आज्ञा चक्र के ऊपर इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना, इन तीन नाड़ियों का मिलन स्थान है। इस स्थान का नाम **त्रिकूट** या त्रिवेणी है। इस त्रिवेणी के ऊर्ध्व में सुषुम्ना के मुख के नीचे अर्धचन्द्राकार मण्डल है। अर्धचन्द्र के ऊपर तेजपुंज के स्वरूप एक विन्दु है। इस विन्दु के ऊपरि भाग में ऊर्ध्व और अध रूप में दण्डाकार नाद है। यह देखने में मानो कोई तेजो रेखा हो। इसके ऊपर श्वेतवर्ण युक्त एक त्रिकोणमण्डल है। उसके भीतर शक्ति के रूप में शिवजी के आकार का हकारार्द्ध है। यहाँ पर वायु की क्रिया समाप्त होती है। इस के संबंध में अन्य **बातें** प्रणव तत्त्व में दी गई है।

इस आज्ञापद्म का और एक नाम **ज्ञानपद्म** है। परमात्मा इसके अधिष्ठाता और इच्छा उनकी शक्ति है। यहाँ पर प्रदीप्त शिखा रूपी आत्मज्योतिः गाढ़े पीले रंग के स्वर्णरिणु के सदृश्य विद्यमान है। यहाँ जिस ज्योतिः के दर्शन होते हैं वही साधक का **आत्मप्रतिविम्ब** है। इस पद्म का ध्यान करके दिव्यज्योतिः के दर्शन होने पर योग का चरम फल सही अर्थ में निर्वाण की प्राप्ति होती है।

सप्तम–ललना चक्र

तालु के मूल में लाल रंग का चौंसठ दल युक्त **ललनाचक्र** है। इस पद्म में **अहं तत्त्व** का स्थान है। यहाँ पर श्रद्धा, सन्तोष, स्नेह, दम, मान, अपराध, शोक, खेद, अरति, सम्भ्रम, उर्मि और शुद्धता–ये द्वादश वृत्तियां और अमृतस्थाली है। इस पद्म का ध्यान करने से उन्माद, ज्वर, और पित्त जन्य जलन, शूल आदि पीड़ा, शिरः पीड़ा और शरीर की जड़ता दूर होती है।

अष्टम–गुरुचक्र

ब्रह्मरन्ध्र में श्वेतवर्ण शतदल युक्त अष्टम पद्म है। इस पद्म की कर्णिका में त्रिकोणमण्डल है। इस त्रिकोणमण्डल के तीन कोनों में क्रमशः ह, ल, क्ष–ये तीन वर्ण हैं। इसके अतिरिक्त तीन कोनों में समूचा मातृकावर्ण है। इस त्रिकोणमण्डल को **योनिपीठ** और **शक्तिमण्डल** कहते हैं। इस शक्तिमण्डल के भीतर तेजोमय **कामकलामूर्ति** है। इसके माथे पर एक तेजोमय विन्दु है। उसके ऊपर दण्डाकार में तेजोमय नाद है।

इस नाद के ऊपर धुआं रहित अग्नि शिखा के समान तेजपुंज है। इसके ऊपर हंस-पक्षी की शय्या के आकार में एक तेजोमय पीठ है। उसके ऊपर एक श्वते हंस है। इस हंस का शरीर ज्ञानमय है। आगम और निगम के नाम से इसके दो पंख हैं। इसके दोनों चरण शिवशक्तिमय, चोंच प्रणवस्वरूप तथा नेत्र और कंठ कामकलारूपी है। यही हंस ही गुरुदेव के पादपीठ के समान है।

इस हंस के ऊपर श्वेतवर्ण **वाग्भवबीज** (गुरुबीज) **ऐं** है। उनके पार्श्व में उस बीज के प्रतिपाद्य **गुरुदेव** हैं। उनका वर्ण श्वेत और वे करोड़ों सूर्य के समान तेजःपुंज हैं। उनके दो हाथ हैं। एक हाथ में वर और दूसरे हाथ में अभय शोभायमान है। वे श्वेतमाल्य और श्वतेगंध को धारण और

श्वेत वस्त्र पहने मुस्कराते हुए करुण दृष्टि से देख रहे हैं। उनकी बाईं गोद में रक्त वसन पहने और सर्व अलंकार आभूषिता तथा तरुण अरुण के सदृश्य रक्तवर्णा **गुरुपत्नी** विराजित हैं। उन्होंने बायें हाथ में एक कमल पकड़ रखा है और दायें हाथ से श्रीगुरु के शरीर को घेर कर बैठी हुई हैं। श्रीगुरु और गुरुपत्नी के मस्तक पर सहस्रदल कमल छतरी के सदृश्य शोभायमान है।

इस सहस्रदल कमल में हंस की पीठ के ऊपर गुरुपादुका और सब के गुरु विराजमान हैं। वे अखण्डमण्डलाकार में चराचर में व्याप्त होकर रह रहे हैं। इस पद्म में उपर्युक्त रूप में सपत्नीक गुरुदेव का ध्यान करना होता है।

इस शतदल पद्म का ध्यान करने से सर्वसिद्धि और दिव्यज्ञान प्रकाशित होता है।

सहस्रार

ब्रहमरन्ध्र के ऊपर महाशून्य में रक्त पद्मकेसर श्वेतवर्ण सहस्रदलयुक्त नवम चक्र **सहस्रार** है। सहस्रदल पद्म के चारों ओर पचासदल विराजित हैं तथा ऊपर बताये गये क्रम में बीस स्तरों में सज्जित हैं। प्रत्येक स्तर में पचास दल में पचास मातृकावर्ण हैं।

सहस्रदल कमल की कर्णिका के भीतर त्रिकोणाकार चन्द्रमण्डल है। उसका एक नाम शक्तिमण्डल भी है। इस शक्तिमण्डल के तीन कोनों में क्रमशः ह, ल और क्ष, ये तीन वर्ण हैं और तीन ओर समस्त स्वर और व्यंजन वर्ण है।

उस शक्तिमण्डल के भीतर तेजोमय विसर्गाकार मण्डल विशेष विद्यमान है। उसके ऊपर मध्याह्न सूर्य से करोड़ों गुणा तेजयुक्त एक **विन्दु** है। वह शुद्ध स्फटिक के समान श्वेतवर्ण है। यही विन्दु ही **परमशिव** के नाम से जगत की उत्पत्ति-पालन और नाशकारी परमेश्वर है। वे अज्ञान

तिमिर के नाशक सूर्य स्वरूप परमात्मा हैं। इन्हीं को ही भिन्न-भिन्न संप्रदाय भिन्न-भिन्न नाम देते हैं। साधना के बल पर इन्हीं विन्दु को प्रत्यक्ष करने को ही **ब्रह्मसाक्षात्कार** कहते हैं।

परमशिव स्वरूप यह विन्दु सतत टपकते अमृत के समान है। इसमें समस्त सुधा का आधार गोमूत्र जैसे रंग वाली अमा नामक कला है। यही आनन्द भैरवी है। इसके भीतर अर्ध चन्द्रकार में निर्वाण कामकला है। यही निर्वाण कामकला ही सब के इष्टदेवता हैं। उसके भीतर तेजोरूपी परम निर्वाण शक्ति और उसके बाद **निराकार महाशून्य** है।

इस सहस्रदल कमल में कल्पतरु है। उसके मूल में चतुर्द्वार युक्त ज्योति मन्दिर है। उसके भीतर पन्द्रह अक्षरात्मिका वेदिका है। उसके ऊपर रत्न सिंहासन पर चणकाकार महाकाली और महारुद्र हैं। वह महाज्योतिर्मय है। इनका नाम चिंतामणिगृह में माया से आच्छादित **परमात्मा** है।

इस सहस्रदल कमल का ध्यान करने से जगदीश्वरत्व की प्राप्ति होती है।

अब कामकला तत्त्व को जानना चाहिए। परन्तु श्री श्री गुरुदेव ने भक्त और पूर्णाभिषिक्त के अतिरिक्त

कामकला-तत्त्व

को आम लोगों को प्रकाशित करने का निषेध किया है। इसलिए आम पाठकों के पास उस गुप्त तत्त्व को प्रकाशित नहीं कर सकता। इस पुस्तक में जहां-जहां कामकला का उल्लेख है, उन स्थानों में उसे त्रिकोणाकार समझ लेना होगा। पूर्वोक्त नवचक्र के अतिरिक्त मनश्चक्र, सोमचक्र आदि अनेक गुप्त चक्र हैं और पहले बताये गये नवचक्र में से प्रत्येक चक्र के नीचे एक-एक खिला हुआ ऊर्ध्वमुखी चक्र है। अतिशयोक्ति के भय से और पैसे के अभाव में ग्रंथ का मुद्रण नहीं हो सकेगा, इस चिंता से विस्तृत वर्णन नहीं कर पाया। फिर भी जहां तक दिया गया, मैं समझता हूँ कि साधकों

के लिए वह पर्याप्त है। पूर्व कथित नवचक्र का ध्यान करते समय साधकों को एक

विशेष बात

जाननी चाहिए। समस्त कमलों का मुख सभी तरफ है। परन्तु जो भोगी है, जो फल की कामना रखता है, वह सोचेगा कि कमलों का मुंह नीचे की ओर है और जो योगी है अर्थात मोक्ष की अभिलाषा रखता है, वह सोचेगा कि कमलों का मुख ऊपर की ओर है। इस तरह भाव के भेद से ऊर्ध्व या अधोमुख सोचेंगे। फिर कमल बहुत ही सूक्ष्म हैं। चूंकि इन्हें चिंतन में रूप देना संभव नहीं है, इसलिए इन्हें चार अंगुल वाला सोचकर उनका चिंतन करना होता है।

षोडशाधार

पादांगुष्ठौ च गुलफौ च ***
पायुमूलं तथा पश्चात देहमध्यंच मेढ्रकम्।
नाभिश्च हृदय गार्गी कण्ठकूपस्तथैव च।
तालुमूलंच नासाया मूलं चाक्ष्णोश्च मण्डले,
भुवोर्मध्यं ललाटंच मूर्द्धा च मुनिपुंगवे।

–योगी याज्ञवल्क्य

प्रथम–दायें पैर का अगूंठा, द्वितीय–पैर का टखना, तृतीय–मलद्वार, चतुर्थ–लिंगमूल, पंचम–नाभिमण्डल, षष्ठ–हृदय, सप्तम–कण्ठकूप, अष्टम–जिह्वाग्र, नवम–दन्ताधार, दशम-तालुमूल, एकादश-नाक का अग्रभाग, द्वादश-भ्रुमध्य, त्रयोदश–नेत्राधार, चतुर्दश–ललाट, पंचदश–मूर्द्धा और षोड़श–सहस्रार, ये षोलह आधार हैं। इनमें से एक-एक स्थान पर

विशेष-क्रियाओं के अनुष्ठान से लययोग की साधना की जाती है। क्रियाओं का विवरण साधना कल्प में दिया गया है।

त्रिलक्ष्य

आदिलक्ष्यं स्वयम्भूश्च द्वितीयं बाणसंज्ञकम,
इतरं तत्परे देवि ज्योतिरूपं सदा भज ॥

स्वयम्भू लिंग, बाणलिंग और इतर लिंग, ये तीन लिंग ही त्रिलक्ष्य हैं। ये तीन लिंग क्रमशः मूलाधार, अनाहत और आज्ञाचक्र में अधिष्ठित हैं।

व्योमपंचक

आकाशन्तु महाकाशं पराकाशं परात्परम्,
तत्त्वाकाशं सूर्याकाशं आकाशं पंचलक्षणम् ॥

आकाश, महाकाश, पराकाश, तत्त्वाकाश और सूर्याकाश—ये पंचव्योम हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—इन पंचतत्त्वों को पंचाकाश कहते है। शरीर तंत्त्व में इन पंचतत्त्वों का स्थान निर्देशित किया गया है।

ग्रथिं त्रय

ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि और रुद्रग्रन्थि—इन तीन ग्रंथियों को ग्रंथित्रय कहते हैं। मणिपुर पद्म ब्रह्मग्रन्थि, अनाहत पद्म विष्णुग्रंथि और

आज्ञापद्म रुद्र ग्रंथि के नाम से जाना जाता है।

शक्ति त्रय

ऊर्ध्वः शक्तिर्भवेत् कण्ठअधःशक्तिर्भवेद् गुदः,
मध्यशक्तिर्भवेन्नाभिः शक्त्यतीतं निरंजनम् ॥

–ज्ञानसंकलिनी तंत्र

कण्ठदेश में विशुद्ध चक्र में ऊर्ध्व शक्ति, मलद्वार स्थान में मूलाधार चक्र में अधः शक्ति और मणिपुर चक्र में मध्य शक्ति है। इन्हें ज्ञान, इच्छा और क्रिया अथवा **गौरी, ब्राह्मी** और **वैष्णवी** कहते हैं। ये तीन शक्ति ही प्रवण के ज्योतिस्वरूप हैं। जैसे

इच्छा क्रिया तथा ज्ञानं गौरी ब्राह्मी च वैष्णवी,
त्रिधा शक्ति स्थिता लोके ततपरं ज्योतिरोमिति।

महानिर्वाण तंत्र, 4

मूल प्रकृति सत्त्व, रजः और तम के भेद से तीन गुणों से विभाजित होकर सृष्टि का कार्य संपन्न करती है।

सर्वार्थसाधिनी, सर्वशक्ति प्रदायिनी, सच्चिदानन्दस्वरूपिणी, शम्भु सिमन्तिनी शिवानी की शक्ति से सुधी साधकों के साधना-पथ को सुगम बनाने के उद्देश्य से और उनकी सुविधार्थ सब से पहले अपनी सामर्थ्य के अनुसार सानन्द शरीर तत्त्व का पूर्ण, व्यवस्थित और सुन्दर विवरण देने के बाद अब

योग तत्त्व

पर चर्चा आरम्भ करता हूँ।

योग किसे कहते है ?—

संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मा परमात्मानोः

—योगी याज्ञवल्क्य

जीवात्मा और परमात्मा का संयोग ही योग है। इसके अतिरिक्त शरीर को बलिष्ठ बनाने का नाम योग है, मन को सुस्थिर करने का नाम योग है, चित्त को एक तान में डालने का नाम योग है, प्राण और अपान वायु का संसोग करने का नाम योग है, नाद और विन्दु को एकत्र करने का नाम योग है, प्राण वायु को रुद्ध करने का नाम योग है, सहस्रार में स्थित परमशिव के साथ कुण्डलिनी शक्ति के संयोग का नाम योग है। इसके अतिरिक्त शास्त्र में असंख्य प्रकार के योग की बात बताई गई है। जैसे सांख्य योग, क्रिया योग, लययोग, हठयोग, राजयोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्ति योग, ध्यानयोग, विज्ञानयोग, ब्रह्मयोग, विवेकयोग, विभूतियोग, प्रकृति पुरुष योग, मंत्रयोग, पुरुषोत्तमयोग, मोक्षयोग और राजाधिराज योग हैं। मौटे तौर पर जिस कर्म में भाव की अभिव्यक्ति है, उसे योग कहते हैं। इस तरह जितने योग हैं, वे सब उसी एक प्रकार के योग अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा के सम्मेलन के अंग-प्रत्यंग मात्र हैं। वस्तुतः योग एक प्रकार के अतिरिक्त दो नहीं है। फिर भी उसी एक प्रकार की योग साधना के विभिन्न सोपान के रूप में जो सब क्रियायें हैं, वे सब ही स्थान विशेष, उपदेश विशेष में एक-एक स्वतंत्र योग के रूप में बताये गये हैं। मूलतः जीवात्मा और परमात्मा का संयोग करना ही योग का सही उद्देश्य है। अब देखें कि किस उपाय से जीवात्मा और परमात्मा का योग होता है। उसका सहज उपाय आगे बताई गई योग प्रणाली है। योग के आठ अंग हैं। योग साधना में सफल होने के लिए

योग के आठ अंग

की साधना करनी होगी। साधना का अर्थ अभ्यास है। योग के आठ अंग ये हैं। जैसे–

यमश्च नियमश्चैव आसनंच तथैव च,
प्राणायामस्तथा गार्गि प्रत्याहारश्च धारणा,
ध्यानं समधिरेतानि योगांगानि वरानने ॥

–योगी याज्ञवल्क्य, 1/45

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि–योग के ये आठ अंग हैं। योग साधना करनी हो अर्थात पूर्ण मनुष्य बनकर स्वरूप ज्ञान प्राप्त करना हो, तो अष्टांगयोग की साधना या अभ्यास करना होता है। पहले

यम

किसे कहते है और उसकी साधना प्रक्रिया जाननी चाहिए।

अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।

पातंजल, साधनपाद, 30

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह–इन सब को **यम** कहते है।

अहिंसा

मनोवाक्कायैः सर्वभूतानामपीडनं अहिंसा।

मन, वचन और कर्म से भूत समूह में से किसी भी जीव को पीड़ा न पहुंचाने का नाम **अहिंसा** है। जिस समय मन में हिंसा की परछाई तक भी नहीं पड़ेगी, तब समझो कि अहिंसा की साधना पूरी हुई।

अहिंसा प्रतिष्ठायां ततसन्निधौ वैरत्यागः

पातंजल, साधनपाद, 35

जिस समय किसी के हृदय में अहिंसा पक्की हो जायेगी, उस समय दूसरे लोग भी उसके प्रति स्वाभाविक वैर भाव त्याग देंगे अर्थात चित्त हिंसा रहित होने पर सांप, बाघ आदि हिंस्र जन्तु भी उसके प्रति हिंसा नहीं करेंगे।

सत्य

परहितार्थ वाङ्मनसोर्यथार्थत्वं सत्यं

दूसरों की भलाई के लिए बात करने और दूसरों की भलाई के लिए मन का जो यथार्थ भाव है, उसे **सत्य** कहते हैं। सरल भाव में अकपट बात करना जिसमें लेशमात्र दूरभिसंधि नहीं हो, वही सत्यभाषण है। जिस समय सत्य स्वभावगत होकर मन में मिथ्या का उद्रेक नहीं होगा, तब समझो कि सत्य की साधना हुई।

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।

पातंजल, साधनपाद, 36

अन्तर में सत्य की स्थापना हो जाने से कोई भी क्रिया न करके भी उसका फल मिलता है अर्थात् सत्य में प्रतिष्ठित व्यक्ति की वाणी सिद्ध होती है।

अस्तेय

परद्रव्यापहरण त्यागोऽस्तेयम।

दूसरों के द्रव्य (वस्तु) के अपहरण को त्यागने का नाम **अस्तेय** है। जिस समय मन में पराये द्रव्य को ग्रहण करने की इच्छा तक नहीं जागेगी, तब समझना कि अस्तेय की साधना हुई है।

अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्।

पातंजल, साधनपाद, 37

अचौर्य में प्रतिष्ठित होने पर, उस व्यक्ति के पास समस्त रत्न स्वयं हाजिर होते हैं अर्थात् अस्तेय में प्रतिष्ठित व्यक्ति को कभी भी धनदौलत का अभाव नहीं रहता।

ब्रह्मचर्य

वीर्यधारणं ब्रह्मचर्यम्।

शरीर में स्थित वीर्य को अविचलित और अविकृत रूप में धारण करने का नाम **ब्रह्मचर्य** है। शुक्र ही ब्रह्म है। इसलिए सर्वत्र, सदैव और सब अवस्थाओं में मैथुन का वर्जन करके वीर्य धारण करना चाहिए। आठ प्रकार के मैथुन का त्याग करने से ब्रह्मचर्य की साधना होगी।

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।

पातंजल, साधनपाद, 38

ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित होने से वीर्य की प्राप्ति होती है अर्थात् ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित व्यक्ति के शरीर में ब्राह्मण्य देव की विमल ज्योति प्रकट होती है।*

अपरिग्रह

देहरक्षातिरिक्त भोगसाधनास्वीकारोऽपरिग्रहः।

शरीर रक्षा के अतिरिक्त भोग के उपायों का त्याग करने का नाम **अपरिग्रह** है। मोटे तौर पर लोभ के त्याग को **अपरिग्रह** कहते हैं। जिस समय मन में यह चाहिये, वह चाहिये-आदि बातों का उद्रेक ही न हो, तब समझो कि अपरिग्रह की साधना हुई।

अपरिग्रह प्रतिष्ठायां जन्मकथन्ता संबोधः

पातंजल, साधनपाद, 39

अपरिग्रह में प्रतिष्ठित होने पर स्मृतिपटल में पूर्वजन्म की बातें याद आ जाती हैं।

उपर्युक्त समस्त साधनाएं होने पर समझना कि यम साधना हुई। सच्चा मनुष्यत्व प्राप्त करना हो तो सभी देशों में हर किस्म के लोगों को इस यम साधना में सिद्धि प्राप्त करनी होगी। ऐसा नहीं करने से मनुष्य और पशु में कोई भेद नहीं रहता। अब

---

* मेरी "ब्रह्मचर्य साधना' नामक पुस्तक में इसकी पूरी जानकारी दी गई है।

नियम

किसे कहते हैं और उसकी साधना कैसे करनी होती है, उसकी जानकारी होनी चाहिये।

शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः

पातंजल, साधनपाद, 32

शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान—इन पंचविध क्रियाओं का नाम नियम है। इन सब का अभ्यास करने का नाम **नियम-साधना** है।

शौच

शौचं तु द्विविध प्रोक्तं बाह्यमभ्यन्तरन्तथा।
मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं मनः शुद्धिस्तथान्तरम्।

—योगी याज्ञवल्क्य

शरीर और मन के मैल को दूर करने का नाम **शौच** है। इसका मतलब स्नो, साबुन, इत्र और एसेंस आदि विलासपूर्ण सामग्रियों का प्रयोग करना शौच कतई नहीं है। गोमय, मृतिका और पानी आदि से शरीर का और दया आदि सदगुणों से मन का मैल दूर करना होता है।

शौचात् स्वांगजुप्सा परैरसंगश्च।

पातंजल, साधनपाद, 40

यदि मनुष्य यथार्थ में शुचि संपन्न होगा तो अपने शरीर को अशुचि मानकर उसका उसके प्रति अवज्ञा पैदा होगी और दूसरों का संग करने पर भी घृणा होगी। उस समय उसे अवधूत गीता का यह महान वाक्य स्मरण होगा, जैसे

विष्ठादिनरकं घोरं भगं च परिनिर्मितम।
किमु पश्यसि रे चित्त ! कथं तत्रैव धावसि ?

—अवधूत गीता 8/14

सन्तोष

यदृच्छा लाभतो नित्यं मनः पुंसो भवेदिति,
या धीस्तामृषयः प्राहुः सन्तोषं सुखलक्षणम ॥

–योगी याज्ञवल्क्य

प्रतिदिन जो कुछ मिलता है, उससे मन में संतुष्टि रूपी बुद्धि के रहने को **सन्तोष** कहा जाता है। मोटी बात यह है कि दुराकांक्षा के त्याग का नाम सन्तोष है।

सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः

–पातंजल, साधनपाद, 42

सन्तोष में सिद्ध होने पर अनन्य सुख मिलता है। वह सुख अनिर्वचनीय है। वह विषय निरपेक्ष सुख है अर्थात् बाह्य वस्तुओं से इस सुख का कोई संबंध नहीं है।

तपस्या

विधिनोक्तेन मार्गेण कुच्छ्रचान्द्रायणादिभिः,
शरीर शोषणं प्राहुस्तपस्या तप उत्तम्।

–योगी याज्ञवल्क्य

वेद के विधान के अनुसार कुच्छ्र चान्द्रायणादि व्रत और उपवास के द्वारा शरीर को शुष्क करने को उत्तम **तपस्या** कहते हैं। तपस्या नहीं करने से योग में सिद्धि प्राप्त नहीं की जा सकती। जैसे–

नातपस्विनो योगः सिध्यति।

तपस्या करने पर अणिमादि ऐश्वर्य प्राप्त होता है। जैसे

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः

–पातंजल साधनपाद, 43

तपस्या के द्वारा शरीर और इन्द्रियों की अशुद्धि दूर होती है अर्थात् शरीर की शुद्धि होने पर उसे इच्छानुसार छोटा या बड़ा करने की शक्ति उत्पन्न होती है। इन्द्रियों की शुद्धि होने पर सूक्ष्म दर्शन, सूक्ष्म श्रवण, सूक्ष्म घ्राण, स्वादग्रहण और स्पर्श आदि सूक्ष्म विषयों को ग्रहण करने की शक्ति उत्पन्न होती है।

स्वाध्याय

स्वाध्यायः प्रणव श्रीरुद्रपुरुषसूक्तादिमंत्रणांजपः मोक्षशास्त्राध्ययनंच।

प्रणव और सूक्त मंत्र आदि के अर्थ का चिंतनपूर्वक जप करने और वेद तथा भक्ति शास्त्रों आदि का भक्तिपूर्वक अध्ययन करने को **स्वाध्याय** कहते हैं :

स्वाध्यायादिष्टदेवता संप्रयोगः

–पातंजल साधनपाद, 44

स्वाध्याय के द्वारा इष्ट देवता के दर्शन प्राप्त होते हैं।

ईश्वर प्रणिधान

ईश्वर प्रणिधानाद्वा

–पातंजलदर्शन

भक्ति और श्रद्धा के साथ ईश्वर में चित्त को समर्पित करके उनकी उपासना करना ही **ईश्वरप्रणिधान** है।

समाधिश्वरप्रणिधानात्,

पातंजल, साधनपाद, 45

ईश्वर प्राणिधान के द्वारा योग के चरम फल समाधि में सिद्धि प्राप्त होती है।

ईश्वर प्रणिधान के द्वारा जितना शीघ्र चित्त की एकाग्रता होती है, किसी दूसरे उपाय से उतना शीघ्र कभी भी कार्य सिद्धि नहीं होगी। क्योंकि उनके चिंतन से उनकी भास्वर ज्योति हृदय में प्रतिफलित होकर वह समस्त मैल दूर कर देती है। अब योग के तीसरे अंग

आसन

की साधना कैसे की जाती है, वह जानना होगा

"स्थिरसुखमासनम्।"

–पातंजल, साधनपाद, 46

शरीर न हिले, न डुले, कोई पीड़ा न हो, चित्त में किसी प्रकार का उद्वेग पैदा न हो, इस तरह सुखपूर्वक बैठने का नाम **आसन** है। योग शास्त्र में अनेक प्रकार के आसनों का उल्लेख है। उनमें से कुछ मुख्य आसन और उनके साधना-कौशल साधना-कल्प में दिये गये हैं।

"ततोद्वन्द्वानभिघातः।"

–पातंजल, साधनपाद, 48

आसन के अभ्यास से हर तरह के द्वन्द्व दूर होते हैं अर्थात् सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, राग और द्वेष आदि द्वन्द्व समूह योग सिद्धि में बाधा उत्पन्न नहीं कर पाते। आसन का अभ्यास हो जाने पर योग का श्रेष्ठ और गुरुतर क्रिया तथा चतुर्थ अंग

प्राणायाम

का अभ्यास करना होता है। पहले देखें प्राणायाम किसे कहते हैं ?

तस्मिन सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणयामः।

पातंजल, साधनपाद, 49

श्वास-प्रश्वास की स्वाभाविक गति को तोड़ कर उसे शास्त्रों में बताये गये नियमानुसार विधृत करने को प्राणायाम कहते हैं। इसके अतिरिक्त प्राण और अपान वायु के संयोग को भी प्राणायाम कहते हैं। जैसे–

प्राणापानसमायोगः प्राणायाम इतौरितः।
प्राणायाम इति प्रोक्तो रेचक पूरककुम्भकैः।

योगी याज्ञवल्क्य, 6/2

प्राणायाम कहने से हम लोग साधारणतया रेचक, पूरक और कुम्भक, इस त्रिविध क्रिया को समझते हैं। बाहर की वायु को खींच कर भीतरी भाग को भरने को **पूरक**, जल से पूर्ण कुम्भ की तरह वायु को भीतर धारण करने को **कुम्भक** और धारण किये गये वायु को बाहर निकालने को **रेचक** कहते हैं। पहले दायें हाथ के अँगूठे से दायें नासापुट को बन्द करके वायु को रोक कर के प्रणव (ॐ) अथवा अपने-अपने इष्ट मंत्र का सोलह बार

जप करते हुए बायें नासापुट से वायु भरकर, कनिष्ठा और अनामिका उंगलियों से बायें नासापुट को बंद करके वायु को रोकते हुए ऊं अथवा मूलमंत्र का चौंसठ बार जप करते-करते कुम्भक कीजिये। उसके बाद दायें नासापुट से अंगूठा उठाकर ऊँ या मूलमंत्र का बत्तीस बार जप करते-करते दायें नासापुट से वायु का रेचन कीजिये। इस तरह पुनः विपरीत क्रम से अर्थात श्वास का त्याग करने के बाद दायें नासापुट से ऊँ या मूलमंत्र का जप करते-करते पूरक और दोनों नासापुटों को पकड़ कर कुम्भक और अन्त में बायें नासापुट से रेचक कीजिये। उसके बाद पुनः हुबहू पहले की तरह नासापुट को पकड़ कर क्रमानुसार पूरक, कुम्भक और रेचक कीजिये। बायें हाथ की कर-रेखा से जप की गिनती करें।

प्रारम्भ में पहले बताई गई संख्या से प्राणायाम करने में कष्ट हो तो 8-32-16 अथवा 4-16-8 बार जाप करते-करते प्राणायाम करें। दूसरे धर्मावलंबियों अथवा जिनके लिए मंत्रजप की सुविधा नहीं है, उन्हें एक दो के हिसाब से गिनती करके प्राणायाम करना चाहिए वरना कोई लाभ नहीं होगा। क्योंकि ताल के साथ श्वास-प्रश्वास का कार्य पूरा होता है। फिर सावधान ! रेचक अथवा पूरक तेजी से नहीं होने चाहिये। रेचक के समय विशेष सतर्कता और सावधानी बरतनी होगी। श्वास की गति इतनी धीमी हो कि हथेली पर रखे सत्तु भी श्वास के वेग से उड़ने न पाये। प्राणयाम के समय मेरुदण्ड, गर्दन और सिर को सीधा रखना चाहिए और दृष्टि को भौं के बीच स्थिर करना चाहिए। इसे **सहित कुम्भक** कहते हैं। योगशास्त्र में आठ प्रकार के कुम्भकों का उल्लेख है। जैसे–

सहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी शीतला तथा।
भस्त्रिका भ्रांमरी मूर्च्छा केवली चाष्टकुम्भिका ॥

–गोरक्ष संहिता, 195

सहित, सूर्यभेद, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और केवली, ये आठ प्रकार के कुम्भक हैं।* इस सब का विशेष विवरण हाथों

---

* मेरी "ज्ञानीगुरु" पुस्तक में उपर्युक्त आठ प्रकार के प्राणायमों की साधना पद्धति लिखी गई है।

हाथ दिखाकर नहीं सिखाने से सर्वसाधारण का कोई भला नहीं होगा। इसलिए इसके आगे इस संबंध में नहीं लिख पाया। विशेषतः चांदी के सिक्कों (धन) का अभाव है। रुपये होते, तो चिंता की कोई बात नहीं थी, डंका बजाकर हिमालय से कुमारिका तक लिख डालता।

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्

–पातंजल, साधनपाद, 52

प्राणायाम में सिद्ध होने पर मोहजन्य आवरण दूर होकर दिव्यज्ञान प्रकाशित होता है। प्राणायाम परायण व्यक्ति समस्त रोगों से मुक्त होता है। परन्तु उसे करने में गलती होने पर अनेक रोग पैदा होते हैं। जैसे–

प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत्।
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुद्भवः॥
हिक्का श्वासश्च कासश्च शिरःकर्णाक्षिवेदना।
भवन्ति विविधा दोषाः पवनस्य व्यक्तिक्रमात।

–सिद्धियोग

यथा नियम से प्राणायाम करने से सभी रोग ठीक हो जाते हैं, परन्तु अनियम अथवा वायु का व्यतिक्रम होने पर हिक्का, श्वास, काश, और आंख, कान और सिर पीड़ा आदि अनेक रोग पैदा होते हैं।

प्राणायाम का नियमित अभ्यास होने पर योग के पंचम अंग

प्रत्याहार

की साधना करनी होती है। प्राणायाम से प्रत्याहार और कठिन है। जैसे–

स्वस्वविषयसंप्रयोगाभावे चित्तस्य स्वरूपानुकार
इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः

–पातंजलपाद, 54

प्रत्येक इन्द्रिय को अपने-अपने ग्रहणीय विषय को त्याग कर

अविकृत अवस्था में चित्त का अनुगत बनकर रहने का नाम **प्रत्याहार** है। इन्द्रियगण स्वभावतया भोग्य विषय की ओर भागते हैं। उन विषयों से उन्हें निवृत्त कराने को प्रत्याहार कहते हैं।

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्।

–पातंजल, साधनपाद; 55

प्रत्याहार साधना से इन्द्रियगण वशीभूत होते हैं। प्रकृति को अपने चित्त के वश में लाने के परिणास्वरूप प्रत्याहार परायण योगी परमधैर्य प्राप्त करता है। इससे ही वाह्य प्रकृति वशीभूत होती है। प्रत्याहार के बाद योग के छठे अंग

धारणा

की साधना करनी होती है। धारणा किसे कहते हैं ?

देशवन्धश्चित्तस्य धारणा–

–पातंजल, विभूतिपाद, 1

चित्त को देश विशेष में बांध कर रखने का नाम धारणा है अर्थात् पहले बताये गये षोडशाधार अथवा किसी देवी-देवता की प्रतिमूर्ति में चित्त को आवद्ध कर रखने का नाम **धारणा** है।

दूसरे विषयों की चिंता का त्यागकर किसी भी एक वस्तु में चित्त को लगाते हुए उसे आवद्ध करने की चेष्टा करने से चित्त क्रमशः एकमुखी होगा। धारणा स्थायी होने पर धीरे-धीरे वही

ध्यान

नाम के योग के सातवें अंग में बदल जायेगा। जैसे–

तत्र प्रत्यऐकतानता ध्यानम्।

–पातजंल, विभूतिपाद, 2

धारणा के द्वारा धारणीय पदार्थ में चित्त की जो एकाग्रता पैदा होती है, वही **ध्यान** है। चित्त के द्वारा आत्मा के स्वरूप चिंतन को ध्यान कहते हैं। सगुण और निर्गुण के भेद से ध्यान दो प्रकार के हैं।

परमब्रह्म अथवा सहस्रार में स्थित परमात्मा का ध्यान करने का नाम **निर्गुण ध्यान** है।

सूर्य, गणपति, विष्णु, शिव और आद्या प्रकृति अथवा षडचक्र में स्थित भिन्न-भिन्न देवताओं का ध्यान करने का नाम **सगुण ध्यान** है।

सगुण और निर्गुण ध्यान के अतिरिक्त अनेक लोग ज्योति का ध्यान करते हैं। ध्यान की परिपक्व अवस्था ही

समाधि

है। ध्यान गाढ़ा होने पर ध्येय वस्तु और मैं–ऐसा पृथक ज्ञान नहीं रहता। उस समय चित्त केवल ध्येय वस्तु में ही संलग्न अर्थात् लीन होता है। उस लय अवस्था को समाधि कहते हैं।

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः

–पातंजल, विभूतिपाद, 3

केवल वही पदार्थ (स्वरूप आत्मा) विद्यमान है, ऐसा आभास ज्ञान रहेगा और दूसरा कोई ज्ञान नहीं रहेगा। ध्येय वस्तु में चित्त की इस तरह की जो तन्मयता है, उसका नाम **समाधि** है। जीवात्मा और परमात्मा की समतावस्था को समाधि कहते हैं, जैसे–

समाधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनोः

–दत्तात्रेय संहिता।

वेदान्त मत में समाधि दो प्रकार की है–जैसे–सविकल्प और निर्विकल्प। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय–इन तीन पदार्थों के भिन्न-भिन्न ज्ञान

के बावजूद अद्वितीय ब्रह्मवस्तु में अखण्डाकार चित्तवृत्ति के अवस्थान का नाम **सविकल्प समाधि** है। पातंजल दर्शन में इसे ही **सम्प्रज्ञात समाधि** बताया गया है।

ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय, इन तीन पदार्थों में भिन्न-भिन्न ज्ञान का अभाव होकर अद्वितीय ब्रह्म वस्तु में अखण्डाकार चित्त वृत्ति के अवस्थान का नाम **निर्विकल्प समाधि** है। पातंजल मत में यह असम्प्रज्ञात समाधि है।

इस प्रकार बताये गये अष्टांग योग की प्रक्रिया सर्वोत्कृष्ट है। धीरे-धीरे इस अष्टांग योग की साधना में सिद्धि प्राप्त करने पर इस मरणशील जगत में अमरत्व प्राप्त होता है। अधिक क्या कहूँ, किसी प्रकार की क्रियाओं का अनुष्ठान न करके भी इस यम और नियम का पालन करने से ही सच्चे मनुष्यत्व का उद्रेक होता है। अष्टांग योग साधना करने पर और क्या बाकी रहा ? इससे मानव जन्म धारण सार्थक हो जायेगा। परन्तु यह जैसा सर्वोत्कृष्ट है वैसा ही कठिन और गुरुतर कार्य है। सब के बस की बात नहीं है। इसलिए सिद्ध योगियों ने इस मूल अष्टांग योग से जोड़ तोड़ कर सुख साध्य योग कौशलों की खोज की है। इसलिए मैंने अष्टांग योग के विशेष विवरण को विस्तार में न बता कर उसे संक्षेप में समाप्त कर दिया है।

ब्रह्मा, विष्णु और शिव, इन तीनों ने भी योगसाधना की थी। इनमें से परमयोगी सदाशिव के पंचम आम्नाय में दसविध योग की बात दी गई है। उनमें से मुख्यतः—

चार प्रकार के योग

प्रचलित हैं।

मंत्रयोगा हठश्चैव लययोगस्तृतीयकः।
चतुर्थो राजयोगः स्यात द्विधाभाववर्जितः॥

—शिव संहिता, 5/17

मंत्र योग, हठयोग, लय योग और राज योग, योग शास्त्र में इन चार प्रकार के योगों का उल्लेख है—परन्तु इस समय

मंत्र योग

में साधना करके सिद्धि प्राप्त करना एक तरह से असंभव हो चुका है।

मंत्रजपान्मनोलयो मंत्रयोगः

मंत्र का जाप करते-करते जो मनोलय होता है, उसका नाम **मंत्रयोग** है। मंत्रजप के रहस्य को जाने बिना और जप समर्पण के बिना मंत्रजप सिद्ध नहीं होता। विशेषतः उपयुक्त उपदेष्टा का अभाव है। गुरु अथवा उपदेष्टा का अभाव न होने पर भी अनेक जन्मों तक परिश्रम नहीं करने पर मंत्रयोग में सिद्धि नहीं हो सकती। इसलिए सभी साधनाओं में मंत्रयोग को अधम बताया गया है। जैसे—

मंत्रयोगश्च य प्रोक्तो योगानामधमः स्मृतः।
अल्पबुद्धिरिम योगं सेवते साधकाधमः ॥

—दत्तात्रेय संहिता

योगों में मंत्रयोग बहुत ही अधम है। अधम अधिकारी और अल्प बुद्धिमान व्यक्ति ही मंत्रयोग की साधना करता है। द्वितीय—

हठ योग

की साधना आजकल एक तरह से साध्यातीत है। हठयोग के लक्षण में बताया गया है—

हकारः कीर्त्तितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते।
सूर्याचन्द्रमसोयोगाद्धठयोगो निगद्यते।

—सिद्धि-सिद्धान्त पद्धति

ह शब्द में सूर्य और ठ शब्द में चन्द्र है। हठ शब्द में चन्द्र और

सूर्य का एकत्र संयोग है। अपान वायु का नाम चन्द्र और प्राणवायु का नाम सूर्य है। अतः प्राण और अपान वायु के एकत्र संयोग का नाम **हठयोग** है। हठयोग आदि की साधना करने जैसी उपयुक्त अवस्था और शरीर आज के जमाने में बहुत कम है। फिर द्वैतभाव रहित होने पर भी इस में कोई सन्देह नहीं है कि

राज योग

संसारी लोगों के लिए बहुत ही कष्ट साध्य है। विशेषकर राजयोग की क्रियाओं को हाथों हाथ बता कर नहीं समझाने से पुस्तक पढ़कर हृदयंगम करना एक तरह से असंभव है। इसलिए कलियुग के अल्पायु और अन्न के अभावी लोगों के लिए सहज और सुख साध्य

लय योग

निर्दिष्ट है। दूसरे योगों के अतिरिक्त लययोग का अनुष्ठान करके अनेक लोगों ने सहज ही और शीघ्र सिद्धि प्राप्त की है। मैंने भी इस सद्य और प्रत्यक्ष फलप्रद लययोग को सर्व साधारण में प्रकाश करने की इच्छा से ही इस ग्रंथ को आरंभ किया है।

लययोग अनन्त प्रकार के हैं। अन्दर और बाहर के भेद से जितने पदार्थ बन सकते हैं, उन सभी में लय योग की साधना हो सकती है अर्थात् चित्त को जिस किसी पदार्थ पर लगाकर उसके साथ एकतान बन सकने से **लययोग** सिद्ध होता है।

सदाशिवोक्तानि सपादलक्षलयविधानानि वसन्ति लोके

–योग तारावली

जगत में सदाशिव द्वारा बताये गये एक लाख पच्चीस हजार प्रकार के लययोग हैं। परन्तु साधारणतया योगीजन चार प्रकार के लययोग का अभ्यास करते हैं। चार प्रकार के लययोग हैं–

शाम्भव्या चैव भ्रामर्या खेचर्या योनिमुद्रया,
ध्यानं नादं रसानन्दं लयसिद्धिश्चतुर्विधा।

–घेरण्ड संहिता

शाम्भवी मुद्रा द्वारा ध्यान, खेचरीमुद्रा द्वारा रसास्वादन, भ्रामरी कुम्भक द्वारा नादश्रवण, योनिमुद्रा द्वारा आनन्द भोग, इन चारों के उपायोग से लययोग में सिद्धि होती है।

इन चार प्रकार के लययोगों के अतिरिक्त सिद्ध योगियों द्वारा और भी सहज कौशल सृष्ट हुए हैं। उन्होंने लययोग में नादानुसंधान, आत्मज्योतिः दर्शन और कुण्डलिनी उत्थापन, इन तीन प्रक्रियाओं को श्रेष्ठ और सुख साध्य बताया। इनमें से कुण्डलिनी उत्थापन थोड़ा कठिन कार्य है। क्रिया विशेष के द्वारा मूलाधार को संकुचित कर जाग्रत कुण्डलिनी शक्ति को उत्थापित करना होता है। जिस प्रकार जोंक एक तिनके को छोड़ दूसरे तिनके को पकड़ कर आगे बढ़ती है, ठीक वैसे ही कुण्डलिनी को भी मूलाधार से धीरे-धीरे समस्त चक्रों में उठाकर आखिर में सहस्रार तक लेकर उसे परमशिव के साथ संयोग करना होता है। परन्तु मूलाधार को किस प्रकार संकुचित करना होगा, किस तरह बहुत ही कठिन ग्रंथि त्रय को भेदना होगा, उसे हाथों हाथ नहीं दिखाने से लेखनी से लिखकर उसे समझाने लायक भाषा नहीं है। इसलिए मैं अकारण कुण्डलिनी उत्थापन की प्रक्रिया लिखकर पुस्तक का आकार नहीं बढ़ाना चाहता हूँ। यदि कोई इसका क्रम जानना चाहता है तो मेरे पास आने पर उसका संकेत बता सकूंगा* परन्तु अनुपयुक्त व्यक्ति के पास उसे कदापि व्यक्त नहीं करूँगा।

लययोग में नादानुसंधान और आत्मज्योतिः दर्शन की क्रिया बहुत ही सहज और सुखसाध्य है। इन दो क्रियाओं का साधना कौशल बताकर पाठकों का उपकार करना ही इस ग्रंथकार का उद्देश्य है।

साधु, संन्यासी अथवा गृहस्थों में, बाद में कहे गए उपायों को थोड़े से लोग भी जानते हैं अथवा नहीं, उसके बारे में मुझे सन्देह है। नादानुसंधान और आत्मज्योतिदर्शन–इन दो क्रियाओं में से एक-एक के दो

---

* मेरे द्वारा प्रणीत 'ज्ञानीगुरु' ग्रंथ में कुण्डलिनी उत्थापन के साधनोपाय दिये गये हैं।

तीन कौशल नीचे दिये गये हैं। जिसको जो अच्छा लगे वह उस क्रिया को कर सकता है। यह सद्य और प्रत्यक्ष फल प्रदायक है और जिससे मुझे फल प्राप्त हुआ है, उसका वर्णन साधना कल्प में दिया गया है। इनमें से किसी एक क्रिया का अनुष्ठान करने से धीरे-धीरे मन को अपार आनन्द और तृप्ति प्राप्त होगी। इससे आत्मा की मुक्ति भी होगी।

वर्त्तमान समय में हमारे देश की जो अवस्था है, उसमें पूर्वोक्त क्रिया का अभ्यास करना भी अनेक लोगों के लिए कठिन होगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसलिए उनके लिए 'साधनाकल्प' में पहले लय के संकेत लिखे गये हैं। इनमें से किसी भी एक प्रकार के लय संकेत का अनुष्ठान करने से चित्त का लय होगा। साधको में जिसको जैसी सुविधा होगी, वह उस क्रिया का अनुष्ठान करके मनोलय कर सकेगा।

जपातच्छतगुणं ध्यानं ध्यानाच्छतगुणं लयः

जप की तुलना में ध्यान से सौ गुना अधिक फल मिलता है। ध्यान की तुलना में लययोग में सौ गुना अधिक फल मिलता है। इसलिए जप करने के बजाय सब को लय योग की साधना करनी चाहिए।

योगाभ्यास करने से आत्मा की मुक्ति के अतिरिक्त अनेक आश्चर्यजनक और अमानुषी शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। परन्तु विभूति प्राप्त करना योग का सही उद्देश्य नहीं है। इसलिए मैंने भी इस ग्रंथ में उस पर चर्चा नहीं की है। विभूति बिना चेष्टा के स्वतः खिल उठती है। परन्तु साधकों को उसकी परवाह किये बिना मुक्ति पथ पर अग्रसर होना चाहिए। विभूति पर मुग्ध होने से मुक्ति की आशा कोसों दूर रह जायेगी।

आजकल यूरोपीय देशों में योगसाधना को लेकर काफी आन्दोलन और चर्चाएं चल रही हैं। पाश्चात्य लोग आर्यशास्त्रों में बताये गये योगांग की शिक्षा लेकर थियोसाफीस्ट कहला रहे हैं। वे मैसमेरिजम, हिप्नोटिजम, क्लेयरोवयेन्स, साइकोपैथी और मेंटल टलीग्राफी आदि विधाएं सीखकर संसार के लोगों को मुग्ध और चौंका देते हैं। हम लोग अपने घर की पुस्तकों को धूप में सूखा कर उनकी गठरी बाँधकर रख देते हैं तथा उनमें चूहों, काक्रोचों और कीड़ों के खाने और घूमने-फिरने की अच्छी व्यवस्था

कर देते हैं और हम यह कहते गर्व महसूस करते हैं कि "हमारे पास काफी कुछ हैं।" परन्तु क्या हैं, न हम उसकी खोजखबर लेते हैं और न ही साधना करके कार्य में उसका महत्त्व दिखा पा रहे हैं। दोष केवल हमारा नहीं है। शास्त्र में योग और उनके विभिन्न अंगों के जो विषय और नियम दिये गये हैं, वह सब बहुत ही संक्षिप्त और जटिल है। यदि कोई जानता भी है, तो उसे प्रकाश नहीं करता। ऐसे लोग कहते हैं कि यह बहुत ही

गुप्त विषय

है। योग जटिल अथवा गुप्त विषय नहीं है। जिस प्रकार टेलीग्राफ के द्वारा संदेश प्रेषित करना, आकाश में चन्द्र ग्रहण या सूर्यग्रहण देखना, ग्रामफोन और रेडियो से संगीत सुनना बाह्य विज्ञान का कार्य है, ठीक वैसे ही योग भी अध्यात्म विज्ञान का कार्य है। तब जानबूझकर वे क्यों इसे प्रकाश नहीं करते ? शास्त्र में इसका निषेध है। जैसे :

"वेदशास्त्रपुराणानि सामान्य गणिकाईव।
इयन्तु शाम्भवी विद्या गुप्ता कुलवधूरिव।"

–स्वरोदय शास्त्र

वेद और पुराण आदि समस्त शास्त्र साधारण वेश्या की तरह प्रकाश्य है, परन्तु शिवजी द्वारा बतायी गई शाम्भवी विद्या कुलवधू के समान है। इसलिए यत्न के साथ हमें इसे गुप्त रखना चाहिये। इसे सर्वसाधारण में प्रकाश करना ठीक नहीं हे।

न देयंऽपरशिष्येभ्योऽप्यभक्तेभ्यो विशेषतः।

–शिववाक्यम

परशिष्य, विशेषकर अभक्त लोगों के सामने इस शास्त्र को कदापि प्रकाश मत कीजिये। और भी बताया गया है–

इदं योगरहस्यंच न वाच्यं मूर्खसन्निधौ।

–योग स्वरोदय।

योग रहस्यको मूर्ख लोगों के सामने व्यक्त नहीं करना चाहिये।

निंदुक, वंचक, धूर्त, खल, कदाचारी और तामसिक व्यक्तियों के पास योगरहस्य को प्रकाश करना ठीक नहीं है।

अभक्ते वंचके धूर्त्त पाषण्डे नास्तिके नरे।
मनसापि न वक्तव्यं गुरुगुह्यं कदाचन।।

भक्तिहीन, वंचक, धूर्त्त, पाखंडी और नास्तिक—ऐसे दोषयुक्त लोगों के पास गुरुद्वारा बताये गये गुप्त विषय को कदापि नहीं बताना चाहिये। इन्हीं कारणों से शास्त्रज्ञ योगीजन आम लोगों के पास आत्मतत्त्व विद्या को प्रकाश न कर इसे गुप्त विषय कहते हैं। किसी को भी इस संबंध में शिक्षा देने से पहले उसे सर्वसाधारण के पास प्रकाश नहीं करने के लिए विशेष रूप से आदेश देते हैं। ऐसा निषेध रहने के कारण ही मैं भी समस्त विषय को प्रकाश नहीं कर पाया। जो बात आम लोगों के पास प्रकाश्य और सब के करने योग्य है, उसे ही इसमें शामिल किया गया है। इसके अनुसार कार्य करने से प्रत्यक्ष फल प्राप्त किया जा सकेगा। अब सुधी साधक—

"क्षन्तव्योमेऽपराधः।
ॐ शान्ति"

योगीगुरु

द्वितीय भाग

साधना कल्प

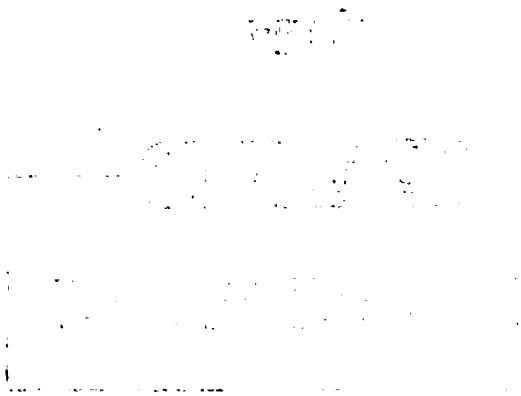

साधकों के प्रति उपदेश

दुर्गादेवी जगन्मातर्जगदानन्ददायिनी,
महिषासुरसहंत्रि प्रणमामि निरन्तरम् ॥

मदन के मद का दमन करने वाली मनोमोहिनी महिषासुरमर्दिनी भवानी के मृत्युपतिलांछित सुरनर वांछित चरण कमल में प्रणाम करते हुए साधना कल्प आरंभ करता हूँ।

योगाभ्यास के समय साधकों को कुछ नियम और संयम के अधीन रहना पड़ता है। आम लोगों की तरह चलने से साधना नहीं होती। योगकल्प में अष्टांगयोग के वर्णन के समय यम और नियम में उसका आभास दिया गया है। परन्तु घर संसार में रह कर उन नियमों का पालन नहीं किया जा सकता। कर सकने पर भी गुणी ग्रामवासियों के गुण से शीघ्र ही सब कुछ गंवा कर पेड़ के नीचे आश्रय लेना होगा। इसलिए घर संसार करना हो, तो शिवत्व को छोड़कर बाहर सोलह आने जीवत्व वर्करार नहीं रखने से चलेगा नहीं। ऐसी स्थिति में उपाय क्या है ? इसका उपाय है कि फुफकारिए, परन्तु काटिये मत।

एक समय किसी रास्ते के किनारे एक फनधारी भयंकर नाग रहता था। लोगों को उस रास्ते पर जाते देखते ही वह सांप फुफकारते हुए तेजी से भाग कर उन्हें डस लेता था। जिसको डसता था, वह वहीं गिर कर राम को प्यारा हो जाता था। धीरे धीरे इस सांप की बात चारों ओर फैल गई। मारे डर के लोगों ने उस रास्ते से आना-जाना ही बंद कर दिया।

एक दिन एक महापुरुष उस रास्ते से जा रहे थे। लोगों ने सांप की बात बताकर उन्हें उस रास्ते पर जाने से रोका। परन्तु महापुरुष ने किसी

की बात पर ध्यान नहीं दिया। सांप के पास पहुँचते ही वह फुफकारते हुए उन्हें डसने दौड़ा। महापुरुष खड़े हो गये। सांप जैसे ही उनके पास पहुंचा, उन्होंने थोड़ी धूल उस पर फेंकी। इससे सांप सिर झुकाकर शांत हो गया। उसके बाद महापुरुष ने जलदगंभीर स्वर में कहा, "बेटा ! पूर्व जन्म में यही हिंसा करने के कारण ही सांप की योनि में जन्म लिया, फिर भी हिंसा नहीं छोड़ सका।

यह बात सुन कर सांप को दिव्यज्ञान का उदय हुआ। उसने विनम्र भाव से कहा, "प्रभो ! मुझे पूर्व जन्म की सारी बातें स्मरण हो आई हैं। अब मेरे उद्धार का उपाय क्या है, कृपया बताइये।"

"पूरी तरह हिंसा छोड़ दो"—इतना कह कर महापुरुष वहां से चल दिये। उस दिन से सांप शांत हो गया। एक के बाद एक करके धीरे-धीरे सब को इस बात का पता चल गया। पहले पहल डर के कारण लोग सावधानी के साथ आने-जाने लगे। वास्तव में सांप ने किसी से हिंसा नहीं की। रास्ते के किनारे पड़ा रहा। पास में कोई गया भी तो सांप ने सिर उठाकर किसी को देखा तक नहीं। यह देख कर धीरे-धीरे सब का साहस बढ़ गया। किसी ने सांप को पीटा तो किसी ने डण्डे से उठाकर उसे दूर फेंक दिया। बच्चे सांप की पूँछ पकड़ कर उसे घसीटने लगे। फिर भी सांप ने किसी से हिंसा नहीं की। लोगों के ऐसे अत्याचारों से वह धीरे-धीरे कमजोर और अधमरा हो गया।

कुछ दिन बाद जब वही महापुरुष लौटे तो सांप को अधमरा पाकर उन्होंने पूछा, "अरे। तेरी यह हालत क्यों हुई ?" सांप ने उत्तर दिया, "आप के आदेशानुसार हिंसा छोड़ने के कारण मेरी यह हालत हुई है।"

महापुरुष ने मुस्कराते हुए कहा, "मैंने तुझे हिंसा छोड़ने के लिए कहा था, परन्तु फुफकारने के लिए तो मना नहीं किया था। अब यदि कोई तुझे मारने आये तो सांप के स्वभावानुसार तू फुफकारना, परन्तु किसी को काटना मत।"

यह कह कर महापुरुष चल दिये। उस दिन से लोगों को पास आते देखकर सांप पूर्व स्वभाव में आ गया। परन्तु किसी को काटता नहीं था। फिर से सांप का रौब देखकर किसी ने भी उसके पास आने का साहस

नहीं किया।

इसलिए मैं कहता हूँ कि बाहर सोलह आने जीवत्व रखो। परन्तु मन ही मन निश्चय कर रखो कि किसी का बुरा नहीं करूंगा। यदि मन पवित्र रहता है, तो बाहरी काम से कुछ बिगड़ता नहीं है।

मनः करोति पापानि मनो लिप्यते पातकैः।
मनश्च तन्मना भूत्वा न पुणैर्न च पातकैः।

ज्ञानसंकलिनी तंत्र, 45

अतः मन को दृढ़ करके समस्त कार्य करने चाहिए। यह स्मरण रहे कि यदि कोई मुझ पर अत्याचार करता है या मुझे पीड़ा पहुंचाता है, मेरी चीजें चुराता है, दुरभिसंधि रखकर मेरे घर में आता है, तो मुझे जितनी तकलीफ होती है, किसी के प्रति मेरे द्वारा ऐसे कार्य किये जाने पर उसे भी उतना ही कष्ट होगा। अपने दिल की तकलीफ को महसूस कर दूसरे से व्यवहार कीजिए। एक समय था जब सड़े गले पते और जंगल के कषैले फल और कन्दमूल खाकर भी मनुष्य जीवित रह सकता था। तो अब दूसरों को तकलीफ पहुँचाकर और कमजोर पर अत्याचार करके पेट भरने की चेष्टा करने की क्या आवश्यकता है ? प्रतिदिन जो कुछ मिलेगा, उससे सन्तुष्ट रहना चाहिए। अमीर के साथ अपनी हालत की तुलना करके हम क्यों दुखी हों ? जो व्यक्ति दुराकांक्षापरायण है वह कभी भी सुखी नहीं बन सकता। गरीब व्यक्ति को भूखे व्यक्ति की बात सोच कर दिन के अन्त में सूखी रोटी खाकर तृप्त होना चाहिए। निराश्रय लोगों को देखकर अपनी झुग्गी झोंपड़ी में चिथड़ों पर सोकर शान्ति प्राप्त करनी चाहिए। सर्दियों में जूते खरीदने में अक्षम होने पर अपने आप को न धिक्कार कर किसी लूले लंगड़े की बात सोचकर अपनी मजबूत टांगों को देखकर अपने आपको भाग्यवान समझना चाहिए। जो व्यक्ति पुत्रहीन है, उसे असत पुत्रवान पिता की दुर्दशा के बारे में सोच कर सुखी होना चाहिए। मंगलमय परमेश्वर सब कुछ जीव के मंगल के लिए करते हैं। पुत्र के निधन से दुखी न होकर, घर के जल जाने से सुध बुध न खोकर, धन दौलत से वंचित होने पर उसके लिए कातर न होकर यह सोचना चाहिए कि इस पुत्र के जीवित रहने पर हो सकता है उसके असद व्यवहार से मुझे आजीवन मर्मपीड़ा झेलनी

पड़ती, घर रहता तो हो सकता है उस घर में रहने वाले सांप के डसने से मेरी मृत्यु हो जाती, धन दौलत रहता तो हो सकता है, उस के लोभ से कोई मेरी हत्या कर देता। जिस समय जिस किसी अवस्था में क्यों न रहो, उसी में ही परमेश्वर का धन्यवाद करके सन्तुष्ट चित्त में कालयापन करना चाहिए। कितने दिन के लिए इस संसार का वैभव है ? जिस समय शैशव की शुभ्र ज्योत्स्ना देखते देखते डूब जाती है, यौवन का बल और विक्रम ज्वार के पानी की तरह क्षणिक है, प्रौढ़ अवस्था दो दिन का खेल है, संसार को आरंभ करते न करते वह खत्म हो जाता है। "अभी तक ठीक तरह से जीवन नहीं बिताया, इसके मन को कष्ट दिया, उसके साथ ऐसा बर्ताव करना ठीक नहीं था, " ऐसा आक्षेप करते-करते बुढ़ापा बीत जाता है, तब दो दिन के लिए यह आसक्ति क्यों ? दूसरे पर बलप्रयोग क्यों ? दुर्बल के प्रति अत्याचार क्यों ? परनिन्दा में इतनी खुशी क्यों ? पार्थिव पदार्थों के लिए चिंता क्यों ? परन्तु मैं क्या कह रहा था भूल गया।

हाँ मन के अतिरिक्त बाहरी कार्य को देखकर सत और असत पर विचार नहीं किया जाता। कोई बड़े समारोह पूर्वक तीज-त्योहार मना रहा है, गरीब लोगों को लंगर दे रहा है परन्तु उसमें लेशमात्र अहंकार पैदा होने से सब कुछ व्यर्थ जाता है—नरक का द्वार खुल जाता है। एक ही कार्य मन की विभिन्न गति से भिन्न-भिन्न फल देता है। हर कोई शरीर को घिसता मांजता है परन्तु असत चित्त और कलुषित व्यक्ति शरीर को घिसते मांजते समय उस पर नजर डालकर सोचते हैं, "कि तपते सोने के रंग वाले मेरे इस शरीर को देख कर कितने नर-नारी मुग्ध होंगे, कितने लोग मुझसे मिलने की कामना करेंगे"—यह सोचकर वह शरीर को और अधिक घिसता मांजता है। इससे उसके नर्क का रास्ता साफ होगा, इसमें सन्देह नहीं है। परन्तु सत ज्ञान संपन्न लोग शरीर को भगवान का भोग मन्दिर सोच कर उसे साफ करते हैं। इसके परिणामस्वरूप वे हरिमन्दिर की मार्जना करने का फल प्राप्त करते हैं। परन्तु विवेकशील व्यक्तियों का अपने शरीर की मार्जना करते-करते उस के प्रति उनमें वितृष्णा पैदा हो जाती है। नौ द्वार वाला यह शरीर रक्त, पसीना, मलमूत्र और झाग से बदबूदार है। इसे निरंतर साफ नहीं करने से जब यह बहुत ही मैला और बदबूदार हो जाता

है, तो इस शरीर के प्रति इतनी आसक्ति क्यों ? तब तो फिर नारी की कवि कल्पना प्रसूत स्वर्ण कांति, कान तक फैले विशाल नेत्र, लाल लाल गाल, तरुण अरुण के समान सुन्दर होंठ और पतली कमर के प्रति मन नहीं दौड़ेगा।

धर्म या अधर्म कार्य के रूप में कुछ भी निर्दिष्ट नहीं है। एक अवस्था में जो कार्य पापजनक है, दूसरी अवस्था में वही पुण्यजनक है। पुराण में बताया गया है कि बलाक नामक व्याध प्राणीहिंसा करके भी स्वर्ग में गया था, परन्तु कौशिक नामक ब्राह्मण सच बोल कर भी नर्क में गया था। इसलिए वाह्य कार्य से अच्छा बुरा नहीं होता। मन के संलिप्त नहीं रहने से उसके फलाफल का भोग नहीं करना पड़ता। मनुष्य का मन ही बन्धन का कारण है, जैसे–

"मन एव मनुष्याणां कारणं वन्धमोक्षयोः।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्तै निर्विषयं स्मृतम"

–अन्य मनस्क गीता, 55

मन ही मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण हैं। क्योंकि विषय के प्रति आसक्त होने पर ही मन बन्धन का हेतु बनता है और विषय के प्रति वैराग्य पैदा होते ही मुक्ति होती है। शिवावतार शंकराचार्य ने कहा है–

"बन्धो हि को ?-यो विषयानुरागः।
को वा विमुक्तिः ? विषये विरक्तिः ॥

–मणिरत्नमाला

अर्थात बन्धन किसे कहते हैं–विषय के भोग में मन का जो अनुराग है, उसका नाम बन्धन है और मुक्ति किसे कहते हैं–विषय वासना से रहित या विषय के प्रति विरक्ति का नाम मुक्ति है। इसलिए आसक्ति रहित हो सकने से किसी भी कार्य में दोष नहीं है। कार्य में आसक्ति ही दोष है।

"न मद्यभक्षणे दोषो न मांसे न च मैथुने,
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला।"

–मनु संहिता

शराब पीने, मांस खाने अथवा मैथुन में कोई दोष नहीं है। भूतसमूह की यही प्रवृत्ति है, परन्तु उनकी निवृत्ति ही महाफलदायक है। अर्थात जो

कार्य आसक्ति रहित है, वह श्रेष्ठ है। सतपथ में रह कर जितना हो सके, उतना धन कमाइये, परन्तु उसके लिए व्याकुल मत होइये। व्याकुलता ही आसक्ति है। यह स्मरण रहे कि सब कुछ भगवान का है। हम केवल कुछ अनिश्चित समय के लिए ही दो पल के सन्तरी हैं। बाल, बच्चों, सगे-संबंधियों, रुपये-पैसों, घर संसार-इन सब चीजों पर जिस प्रकार "यह मेरा है" का ठप्पा जोर से न लगाया जाये, यह बात ध्यान रहे। हमारे सिर पर भयंकर मौत नाच रही है। कर्मसूत्र के व्यवधान में यह संसार है। यह धन दौलत यहीं पड़ी रहेगी। अनादि काल से यह यहां पड़ी है। मेरी तरह कितने लोग, मेरे पिता, मेरे दादाजी, परदादाजी आदि ने इस घर, इस जमीन, तालाब और बगीचे पर दो दिन के लिए दानवी दीप्ति की नजर डालकर वासना से विवश होकर आलिंगन के बंधन से इसे बांधने की चेष्टा की थी, परन्तु समय के प्रभाव और काल के स्रोत से वे कहीं बहते गये। जिसके अक्षय भण्डार की चीजें उसके अक्षय भण्डार में ही पड़ी रहीं। मैं उनका दास मात्र हूँ। इस संसार में मौत का परवाना आते ही मुझे सब कुछ छोड़ चले जाना होगा। जिस प्रकार कोई नौकर अपने मालिक के घर कार्य करते हुए मालिक की धन दौलत के रखरखाव में पूरा ध्यान देता है, परन्तु उसे इस बात का ज्ञान अवश्य रहता है और वह मन ही मन दृढ़तापूर्वक अवगत रहता है कि "मैं नौकरी करने आया हूँ—यह धन दौलत भी मेरी नहीं है—मालिक का आदेश मिलते ही मुझे ये सब छोड़कर चले जाना होगा।" हमें भी वैसा ही सोचना चाहिए। वरना धनदौलत के प्रति आसक्ति पैदा होने पर इस धरती पर प्रेतयोनि में कितने ही दीर्घ काल तक घूमना होगा।

पत्नी, पुत्र और पुत्री के प्रति माया के संबंध में ऐसा ही ज्ञान रखना चाहिए। भगवान ने उनकी रक्षा और पालन पोषण का भार मुझे दिया है। इसलिए मैं यत्न के साथ उनका पालन पोषण कर रहा हूँ। उनके द्वारा भविष्य के सुख की आशा करते ही आसक्ति की आग में जलना होगा। पुत्र या पुत्री की मृत्यु में परेशान न होकर "भगवान के गुरुदायित्व से मुक्ति मिली है" ऐसा सोच कर खुश होना चाहिए। आत्मसुख के लिये जो कुछ किया जाता है, वही बन्धन का कारण है और ईश्वर के प्रेम के अनुगत

होकर उनकी प्रीति के लिए जो कुछ किया जाता है, उससे कमल के पते पर पड़े पानी की तरह आसक्ति या पाप में लिप्त नहीं होना पड़ता। भक्तियोग के श्रेष्ठ अधिकारी श्री कविराज गोस्वामी ने कहा है :

आत्मेन्द्रिय प्रीति इच्छा तारे बलि काम।
कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा धरे प्रेम नाम॥
कामेर तात्पर्य निज संभोग केवल।
कृष्णसुख तात्पर्य मात्र प्रेमेते प्रबल ॥*

—चैतन्य चरितामृत

आत्मेन्द्रिय की तृप्ति के लिए जो कार्य किया जाता है, उसे काम कहते हैं। और कृष्ण अर्थात ईश्वरेन्द्रिय की प्रीति के लिए जो किया जाता है, उसे प्रेम कहते हैं। समस्त कार्यों को अपने संभोग के रूप में प्रयुक्त न करके कृष्ण सुख के उद्देश्य से करने से उसमें फलाफल का भोग नहीं करना पड़ेगा। किसी को दूसरे का भला करने पर आनन्द होता है, इसलिये वह परोपकारी है। दुखियारों को खिलाने पर किसी को शकून मिलता है, इसलिए वह दाता है। कोई काफी नाम और यश मिलने पर सुखी होता है, इसलिए वह योग, यज्ञ, व्रत और उपवास आदि करता है। इनमें से किसी का भी कार्य काम की गंध से रहित नहीं है। सब के मूल में आत्मेन्द्रिय प्रीति की इच्छा है। क्योंकि ऐसा करने से मुझे सुख मिलता है, इसलिए मैं यह करता हूँ। भगवान समस्त जीवों के हृदय में अधिष्ठित हैं। उनकी प्रीति के लिए मैं कर्म करता हूँ। उनकी सेवा में आनन्द पाता हूँ। इसलिए उनके सुख के लिए मैं कार्य करता हूँ। उन्हें सौंदर्य अच्छा लगता है, तब हम सोलह सिंगार क्यों न करें ? उन्हें चन्दन अच्छा लगता है, तो हम खुशबूदार चीजों और इत्र का प्रयोग क्यों न करें ? उन्हें फूलों की माला अच्छी लगती है, तब हम चेन और अंगूठी क्यों न पहने ? उनका आनन्द ही हमारा आनन्द है ? अमीर, गरीब, पण्डित, मूर्ख, काने, लूले, रोगी, भोगी,

---

* मूल बंगला में :
जिसमें आत्मेन्द्रिय प्रीति की इच्छा रहती है, उसे काम कहते हैं और जहां कृष्णेन्द्रिय प्रीति की इच्छा है, उसका नाम प्रेम है। काम का तात्पर्य केवल अपना संभोग है जबकि कृष्ण सुख में प्रेम प्रबल होता है।

इन सब का भला करने पर उन्हें जो खुशी होती है उस आनन्द का प्रतिभास ही मेरा आनन्द है। मेरा पृथक आनन्द और क्या है? इसका नाम ईश्वरानन्द है। भगवान को सौन्दर्य का उपभोग कराकर, भगवान की सेवा करके आनन्द का जो पूर्णतम भाव है, वही प्रेम है। धर्म जगत के एक श्रेष्ठ महाजन ने लिखा है।

आर एक अद्‌भुत गोपी भावेर स्वभाव।
बुद्धिर गोचर न हे याहार प्रभाव ॥
गोपीगण करे यवे कृष्ण दरशन।
सुखवांछा नाहि, सुख हय कोटिगुण ॥
गोपिका दर्शने कृष्णेर ये आनन्द हय,
ताहा हईते कोटिगुण गोपी आस्वादय ॥
तां सवाव नाहि निज सुख अनुरोध,
तथापि वाड़ये सुख-पड़िल विरोध ॥
ए विरोध एक एई देखि समाधान।
गोपिकार सुख कृष्ण सुखे पर्यवसान॥

–चैतन्य चरितामृत

श्रीकृष्ण के दर्शन में गोपियों की सुख की इच्छा नहीं है। परन्तु श्रीकृष्ण का दर्शन करके उन्हें करोड़ों गुना सुख होता है। यह बड़ी कठिन बात है। इसके भाव को महसूस करना पाण्डित्य बुद्धि के वश की बात नहीं हैं। गोपियों को देखकर श्रीकृष्ण को जो आनन्द होता है, उसकी तुलना में गोपियों को करोड़ों गुना आनन्द होता है। क्योंकि गोपियों का सुख कृष्ण के सुख में पर्यवसित है। कृष्ण सुखी हुए हैं, यह देखने पर गोपियों को सुख होता है। अर्थात उन्हें अपने इन्द्रियों आदि के सुख की इच्छा नहीं

---

* मूल बंगला में

गोपी भाव का स्वभाव अद्‌भुत है। वह भाव बुद्धि को गोचर नहीं है। गोपियाँ जिस समय श्रीकृष्णके दर्शन करती है, 'उस समय यद्यपि उनमें सुख की इच्छा नहीं है, तथापि उन्हें करोड़ों गुना सुख होता है। गोपियों के दर्शन से श्रीकृष्ण को जो आनन्द होता है, गोपियाँ उससे करोड़ों गुना आनन्द का आस्वादन करती हैं। उनकी सेवा में अपने सुख का लेशमात्र अनुरोध नहीं है। तथापि उसमें सुख बढ़ता है, तो इसमें विरोधाभास है। इस विरोधाभास का एक मात्र समाधान यह है कि गोपियों का सुख कृष्ण के सुख में पर्यवसित है।

है। कृष्ण का सुख ही सुख है। अहा ! कैसा मधुर भाव है ! इसलिए गोपी भाव श्रेष्ठ है। कुछ निरे मूर्ख इस निर्मल भाव को हृदयंगम न कर पाने के कारण उसकी गलत व्याख्या करते हैं।

इसलिए कह रहा हूँ कि हमें कृष्णमय समस्त भूतों के सुख से सुखी बनना होगा। अच्छा कार्य किया है, इसलिए आनन्दित नहीं होना होगा। चूंकि मेरे कार्य से विश्वरूप भगवान को सुख हुआ है, इसलिए मुझे भी सुख है। बाल-बच्चों, देश और समाज की सेवा करने से उन्हें जो आनन्द होता है उसमें ही मेरा आनन्द है। समस्त भूतों और समूचे विश्व से प्रीति करना ही प्रेम है। भोजन, शक्ति आहरण, अपने सौंदर्य का रखरखाव और वस्त्र और आभूषण आदि पहनना सब कुछ विश्व के सर्वभूत के प्रयोजन के लिए है। जिस समय जिस कार्य में जो जरूरत है, उस कार्य में उसका उपयोग करना होगा। वह सब करना पड़ेगा। वरना सर्वभूत का कार्य करेंगे भी कैसे ? शरीर की इतनी देखभाल इसलिए की जाती है कि यह संसार के कार्य में लगेगा। परन्तु आसक्ति की छाया पड़ते ही फिर प्रेम कहाँ हो पाएगा ? क्योंकि आसक्ति ही काम है।

इसलिए फल की आशा छोड़कर केवल भगवान की तुष्टि के लिए जो कार्य किया जाता है, वही श्रेष्ठ है। पुत्र कहिये, पत्नी कहिये, विषय कहिये, वैभव कहिये, दान, ध्यान, योग या यज्ञ कहिये, सब कुछ भगवान के हैं, मेरा कुछ नहीं है। जिस प्रकार नौकर मालिक के संसार में रहकर सब करता है, उसमें कोई भी फल उसका नहीं है। सब कुछ उसके मालिक का है। ठीक वैसे ही भगवान के इस विशाल घर के एक कोने में पड़कर हम उनका कार्य ही कर रहे हैं। इसमें हमारा शोक, दुख, आनन्द या निरानन्द क्या है ? इस तरह निर्लिप्त कर्म सीखने पर आसक्ति का दाग नहीं लगेगा। परन्तु यदि एक तिनके के प्रति भी आसक्ति रहती है, तो उसके लिए कितने जन्म काटने होंगे, वह कौन जानता है ? सर्वस्वत्यागी परमयोगी राजा भरत ने राजपाट की माया तो त्याग दी, परन्तु उन्हें एक तुच्छ मृगशावक के प्रति आसक्ति के कारण कितनी बार जन्म लेना पड़ा था। इसलिए कहता हूँ इन्द्रिय द्वारा कार्य कीजिये परन्तु उसमें व्याकुलता पैदा न हो और मन में कामना-

वासनाओं का दाग न लगे। पहले सोचते-सोचते व्याकुल न होकर जिस समय जो कार्य आये, उसे धैर्य के साथ पूरा करना चाहिए। जीव की चिंता व्यर्थ है। चिंता या आशा की माला न गूंथ कर परमपिता के चरणों में चित्त को समर्पित करते हुए सामने आने वाले कार्य को करना चाहिए।

या चिंता भुवि पुत्र-पौत्र-भरण व्यापारसंभाषणे,
या चिंता धन-धान्य-भोग-यशसां लाभे सदा जायते,
सा चिंता यदि नन्दनन्दन-पद-द्वद्वारविन्दे क्षणं,
का चिंता यमराज-भीम-सदन-द्वार प्रयाणे प्रभो ॥

मर्त्यभूमि में आकर स्वयं को भुलाकर पुत्रों और पौत्रों आदि के भरणपोषण तथा उनसे बातचीत में हम जिस चिंता में पड़ते हैं, धन दौलत, भोग, यश आदि पाने के लिए जिस तरह चिंता में रहते हैं, यदि उस चिंता को पलभर के लिए भी नन्दनन्दन श्रीकृष्ण के चरणयुगल में लगा सकें, तो मृत्यु के समय यमराज के भयंकर द्वार पर हमें क्यों जरा सा भी भय होता ? इसलिए व्यर्थ ही चिंता या दुराशा का दास न बनकर फलाफल को श्री भगवान में अर्पित करते हुए जो कार्य अवश्य करना चाहिये उसे करते जाइये। साधक शिरोमणि तुलसीदास अपने मन को संबोधित करके कह रहे हैं

तुलसी ! ऐसा धेयान धर,
जैसी ब्यान की गाई।
मुहं में तृण चाना टूटे,
चेत रखते बच्छाई।।

"तुलसी ! व्याई हुई गाय की तरह ध्यान परायण बनो। वह मुंह से घास और चने खाती है, परन्तु उसका मन सदैव अपने बछड़े में ही रहता है। ठीक वैसे ही संसार का कार्य कीजिये, परन्तु मन को श्री भगवान में लगाकर रखिए।

और एक बात है कि हर समय और हर अवस्था में स्मरण रहे कि "मुझे एक दिन मरना होगा। मेरे सिर पर यमराज का भयंकर दंड प्रतिक्षण घूम रहा है। किस समय मौत का नगाड़ा बज उठेगा, वह निश्चय नहीं है।

किस समय किस अनजाने राज्य से अलक्षित रूप में मृत्यु आकर निगल जायेगी, वह कौन जानता है ? अच्छा या बुरा, कोई भी कार्य करने से पहले, "मुझे एक दिन मरना होगा", यह सोचकर उसमें हाथ डालिए। मृत्यु की बात स्मरण रहने पर इस मर जगत में जन्म और मृत्यु के चक्कर में नहीं पड़ना होगा।

मृत्यु ही जगतपिता जगदीश्वर की परम कारुणिक व्यवस्था है। यदि मृत्यु के नियम निर्धारित नहीं होते, तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह धरती घोर अशान्ति का घर बन जाती। यह नहीं होता तो धर्म-कर्म के मर्म को कोई भी मन में स्थान नहीं देता। सती के सतीत्व, दुर्बल के धन और निर्धन के मान की रक्षा करना कठिन होता। मनुष्य मौत से डर कर परलोक के बारे में सोचकर धर्म का अनुष्ठान करता है, अन्यथा लोग स्वेच्छाचारी बनकर अपने-अपने बल, वीर्य और धन-दौलत के घमण्ड से निराश्रय और कमजोर लागों को रौंदते जाते। कमजोर और गरीब लोग बलशाली के अत्याचारों और उत्पीड़न से चक्कर खाकर आसुओं से आँखें छलछलाते हुए तथा अपने गाल पर थप्पड़ मारते हुए भाग्य को धिक्कारते अथवा अदृष्टपूर्व विधि के विधान की निन्दा करते। चूँकि मृत्यु है, इसलिए हमारा मनुष्यत्व अक्षुण्ण है। इस परिवर्तनशील जगत में सब कुछ अनिश्चित है, किसी भी बात की स्थिरता या निश्चयता नहीं है, परन्तु मृत्यु निश्चित है। जिस प्रकार परछाई वस्तु के पीछे भागती है, ठीक वैसे ही मृत्यु देही की साथी है।

श्रीमद्भागवत में बताया गया है।

अद्यवाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनांध्रुवः॥

आज हो या कल, या दस-बीस वर्षोंबाद हो, सब को एक दिन उस सर्वग्रासी यमराज के घर जाना होगा। असंख्य सैनिकों से घिरे और शस्त्रों से लैस अनेक संहारकारी सम्राट से लेकर पेड़ के नीचे रहने वाले गरीब से गरीब व्यक्ति तक, सब को एक दिन मौत के मुँह में जाना होगा। मृत्यु अनिवार्य है। मृत्यु आयु की अपेक्षा नहीं रखती। वह सांसारिक कार्य के अधूरा रहने के बारे में नहीं सोचती। मृत्यु में (किसी के प्रति) माया या ममता नहीं है। वह काल और अकाल का विचार नहीं करती। वह किसी

का उप्रोध या अनुरोध नहीं सुनती। वह किसी की सुविधा या असुविधा नहीं देखती। सुख या दुःख को नहीं समझती। किसी के अच्छे या बुरे के बारे में नहीं सोचती। मृत्यु किसी की पूजा नहीं चाहती, किसी की खुशामद या प्रलोभन से नहीं भूलती। मृत्यु किसी के रूप, गुण, कुल और मान का आदर नहीं करती, किसी के धन-दौलत की ओर नजर तक नहीं डालती। कितने दुर्दान्त और प्रतापी महारथियों ने इस भारतभूमि में जन्म लेकर अपने बल और वीर्य से इस धरती को प्रकंपित किया था, परंतु कोई भी तो जीवित नहीं है। सभी उस भयंकर मृत्यु के मुँह में समा चुके हैं। वास्तव में मनुष्य में ऐसी कोई सामर्थ्य नहीं है जिससे कि वह भीषण और विभीषिकापूर्ण मृत्यु का गतिरोध कर सके। शारीरिक बल, वीर्य, धन, संपदा, मान, गौरव, उदद्ण्डता, प्रताप, प्रभुत्व आदि समस्त घमण्ड मृत्यु के समक्ष बौने हो जाते हैं। इस मृत्यु के बारे में सोच-सोच कर महादस्यू रत्नाकर समस्त माया को त्यागकर धर्मजगत में महाजन पद को प्राप्त हुए थे। श्मशान में शवदाह करते जाकर इस नश्वर शरीर के परिणाम को देखकर कुछ लोगों के मन में थोड़ी देर के लिए श्मशान वैराग्य पैदा हो जाता है।

इसलिए कहता हूँ कि हमेशा मृत्यु का चिंतन करके कार्य करने से मन में पापप्रवृत्ति को स्थान नहीं मिलेगा, दुर्बल पर अत्याचार करने को मन नहीं जायेगा। विषय-वैभव और आत्मीयस्वजनों की माया सैकड़ों बाहें फैलाकर आसक्ति की जंजीरों से नहीं बांध सकेंगी ? स्मरण रहे कि हमारे जैसे अनेक लोग इस संसार में आये थे। उन्होंने इस धन-दौलत और घर-बार को 'मेरा' 'मेरा' कहा था, हमारी तरह पत्नी-पुत्र और कन्याओं को स्नेह की सैकड़ों भुजाओं से आलिंगन करके पकड़े रखा था, परन्तु इस समय वे सब कहाँ हैं ? जिस अनजाने राज्य से आये थे, उस अनजाने राज्य में चले गये हैं। स्मरण रहे कि धन दौलत का अहंकार, बलविक्रम का अहंकार, रूप और यौवन का अहंकार, विद्या बुद्धि का अहंकार अथवा कुल और मान का अहंकार, सब व्यर्थ है। एक दिन समस्त अहंकार, अहंकार के अहंकार चूर-चूर हो जायेंगे। स्मरण रहे आज पार्थिव पदार्थों के अहंकार से उन्मत्त होकर एक निराश्रय और दुर्बल को लात मार रहे

हो, परन्तु एक दिन ऐसा होगा कि श्मशान में शव के रूप में पड़े रहने पर गीदड़, कुत्ते, तुम्हें रौंद देंगे, प्रेत और पिशाच छाती पर चढ़कर ताण्डव नृत्य करेंगे। उस दिन चुपचाप यह सब सहन करना पड़ेगा। इस तरह चिन्तन करने से धीरे-धीरे पार्थिव पदार्थों की निस्सारता हृदयंगम होगी और उस समय आसक्ति के बंधन ढीले पड़ जायेंगे।

आजकल अनेक लोग शिक्षा दोष, संसर्ग के गुण और आयु की चपलता के कारण परलोक को और कर्म के गुण से जन्म, कर्म और अदृष्ट को स्वीकार नहीं करते। परन्तु परिणामतः सभी को इसे स्वीकार करना होगा। स्वीकार न करने पर भी जीवन तो चिरस्थायी नहीं है। एक दिन तो मरना होगा। धन, जन, घर और राजशासन छोड़ना होगा। इसलिए दो दिन के लिए माया क्यों ? व्यर्थ की आसक्ति क्यों ? मृत्यु का चिंतन करने पर उस दूर अतीत के स्थूल परदे के पीछे दृष्टि पड़ कर तत्त्व ज्ञान का उदय होगा। पाठको ! जब तक मैं मृत्यु की गोद में नहीं लुढ़क पड़ूं तब तक मृत्यु चिंता को जाग्रत रखने के लिए मैंने भी मृत्यु के महाक्षेत्र महाश्मशान को अपना निवास स्थान बना रखा है। मानव अस्थि जल कर उससे बचा चिताभस्म मेरे शरीर का आभूषण बना हुआ है। नर कपाल मेरा जल पात्र है। मैं मृत्यु पथ का पथिक हूँ। मैं दिन रात मौत की गोद में बैठा हुआ हूँ।

सिद्ध योगीजन उपदेश दिया करते हैं कि दूसरे का सुख, दुख अथवा पाप और पुण्य देखने पर यथाक्रम मैत्री, करुणा, मुदिता, और उपेक्षा करें। अर्थात् दूसरे का सुख देखकर सुखी बनिये, ईर्षा मत कीजिये। दूसरे के सुख से सुखी बनने का अभ्यास करने पर आपकी ईर्षा रूपी आग बुझ जायेगी। जिस प्रकार आप अपना दुःख दूर करने की इच्छा रखते हो, दूसरे का दुख देखने पर बिल्कुल वैसी ही इच्छा कीजिए। जिस प्रकार अपने पुण्य या शुभ अनुष्ठान से आप प्रसन्न होते हैं, दूसरे के पुण्य या शुभ अनुष्ठान में बिल्कुल वैसा ही प्रसन्न होइये, दूसरे का पाप देखने पर उसके प्रति द्वेष मत कीजिये। घृणा भी मत कीजिये। उसकी अच्छाई या बुराई के बारे में कोई चर्चा न कीजिये। पूरी तरह उदासीन रहिये। वैसा रहने से हमारे चित्त की असहिष्णुता रूपी मैल दूर होगी। चित्त की वृत्तियाँ अनुशीलन सापेक्ष

हैं। वास्तव में प्रत्येक असदवृत्ति के स्थान पर सदवृत्ति का अभ्यास करने पर धीरे-धीरे चित्त का मैल दूर होता है। क्रोध का विपरीत दया और काम का विपरीत भक्ति है। इस तरह प्रत्येक राजसिक और तामसिक वृत्ति के विरुद्ध सात्त्विक वृत्ति का उद्रेक करते-करते चित्त क्रमशः शुद्ध होकर अच्छी तरह एकाग्रता शक्ति से संपन्न होगा। जिसका चित्त जितना शुद्ध है वह भगवान के उतने पास है। और जिसका चित्त पाप रूपी तमसा से आच्छन्न है वह भगवान से उतना ही दूर है। और एक बात यह है कि पोष्य वर्ग, बाल बच्चों का पालन पोषण करना होगा, इसलिए कर्मी बनिये। जहाँ तक हो सके कोशिश कीजिये, परन्तु उसके लिए कदापि पाप में मत डूबिये। असत उपाय से धन का अर्जन करने पर उसका फल हमें ही भोगना होगा और कोई दूसरा उस पाप में भागीदार नहीं बनेगा। पोष्यवर्ग समाज के अनुरूप आहार और पहनावे आदि न मिलने पर मुंह अवश्य फुलाएंगे, परंतु उसके लिए हम क्या कर सकते हैं ?

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

–स्मृति

कृतकर्म शुभ हो या अशुभ हो, उसका फल अवश्य ही भोगना होगा। पोष्यवर्ग में जो जैसा अदृष्ट लेकर आया है, वह वैसा ही फल भोगेगा–सैकड़ों चेष्टाएं करने पर भी मैं उसे नहीं बदल सकता। केवल अहंकार की आग हृदय में जलाकर जन्मजन्मान्तर का ताप क्यों एकत्र करूँ ? असत उपायों से धन कमा कर वासना की आग में क्यों जलूँ ? थोड़े ही दिनों के लिए जन्मजन्मान्तर की तकलीफ की आग पैदाकर आसक्ति के दानवी निश्वास से क्यों जलूँ ? और एक बात है कि यदि पुत्र कन्याओं का मलिन मुख नहीं देख सकूँ, तो त्यागी कैसे बनूँ ? परन्तु कर्म नहीं करूँगा, कर्म में सिद्धि प्राप्त करूँगा, यह तो जड़ व्यक्तियों की बात है। फिर भी असत पथ में नहीं जाऊँगा, किसी के मन को चोट नहीं पहुंचाऊँगा–यह प्रतिज्ञा दृढ़ रहे। सत पथ में रहकर संसार जिस तरह चल सके चले। पेड के फल और नदी के जल का तो अभाव नहीं होगा। और एक बात है कि हर एक बात में भगवान पर आत्म-निर्भर करने की शिक्षा लेनी चाहिए। वे किसी को भूखा नहीं रखते। हमारे जन्म लेने से बहुत पहले

भगवान ने मां की छाती में स्तन पैदा कर रखे है। जन्म लेते ही हम स्तनपान करके हृष्ट पुष्ट होते हैं। जिनकी ऐसी व्यवस्था, ऐसा अनुशासन, ऐसी दया है, उन्हें भुलाकर, उनकी कार्य-व्यवस्था को भुलाकर हम व्यर्थ ही क्यों भागदौड़ करते हैं ?

और एक बात बताकर इस विषय का उपसंहार करूँगा। वह बात यह है कि जिसके प्रति जगत के समस्त जीव बहुत ही आकृष्ट होकर रहते हैं, वह रमणी का मोहिनी मोह है। योगसाधना के समय सबको

उर्ध्वरिता

बनना चाहिये। योगाभ्यास के समय नारी संग आदि से किसी कारण से शुक्र के नष्ट होने पर आत्मक्षय होता है। जैसे–

यदि संग करोत्येव विन्दुस्तस्य विनस्यति।
आत्मक्षयो विन्दुहीनादसामर्थ्यंच जायते ॥ –दत्तात्रेय

यदि नारी का संग किया जायेगा, तो विन्दु का नाश होगा। विन्दु का नाश होने से आत्मक्षय होता है और सामर्थ्य चली जाती है। अतः

तस्मात सर्व प्रयत्नेन रक्षो विन्दुर्हि योगिना
–दत्तात्रेय

इसलिए योगाभ्यासकारी को यत्न के साथ विन्दु की रक्षा करनी चाहिए। शुक्र के नष्ट होने पर ओजः धातु नष्ट होती हैं क्योंकि शुक्र ही ओजः रूपी अष्टम धातु का आश्रयस्थल है। वीर्य ही ब्रह्मतेज के नाम से ख्यात है। इसका अभाव होने पर मनुष्य का सौन्दर्य, शारीरिक बल, इन्द्रियों का बल, स्फूर्ति, स्मरण शक्ति, बुद्धि, धारणा शक्ति आदि सब कुछ नष्ट हो जाता है। शुक्र के नष्ट होने पर तपेदिक, प्रमेह, शक्ति-हीनता आदि तरह-तरह के रोग पैदा होकर अकाल ही मौत की गोद में जाना होता है। इससे अस्वाभाविक आलस पैदा होकर हर काम में उदासीनता आती है और उस समय निर्जीव की तरह जीवन बिताना होता है। इसलिए सब को यत्न के साथ वीर्य की रक्षा करनी चाहिए। परन्तु यह बहुत ही कठिन

कार्य है।

पीत्वा मोहमयीं प्रमोदमदिरामुन्मत्तीभूतं जगत

–भतृहरि

मोहमयी प्रमोद रूपी मदिरा को पीकर यह अनन्त जगत उन्मत्त है। कोई भी जीव हो, उसके नर (पुरुष) को उसकी मादा ने मोह के आकर्षण से आकर्षित कर रखा है। सभी रिपु की उत्तेजना और अज्ञानता की ताड़ना से नरक की आग में कूद रहे हैं। विद्यालय के बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सभी क्षणस्थायी सुख के लिए शुक्र का क्षय करके जीवन के सुख को नष्ट करते हुए वज्र से दग्ध वृक्ष की तरह घूम रहे हैं। उनके द्वारा पैदा हुए बच्चे और भी अधिक वीर्यहीन होकर जन्म लेकर अनेक कठिन रोगों से ग्रस्त होकर संसार को अशान्ति का घर बना रहे हैं। इस निकृष्ट वृत्ति के अधीन होने पर सभी नर नारियों की हृदयवृत्तियों एकदम नष्ट हो जाती हैं, उन्हें वस्तुगत ज्ञान तक नहीं रहता। केवल हम ही नहीं, देवतागण भी प्रमोद रूपी मदिरा से उन्मत्त हैं। महामुनि दत्तात्रेय ने उसके बारे में भी बताया है, जैसे

''भगेन चर्मकुण्डेन दुर्गन्धेन व्रणेन च।
खण्डितं हि जगत सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥

अवधूत गीत 8/19

इस आकर्षण से बचने का उपाय क्या है ? अभ्यास और संयम से सब कुछ हो सकता है। तत्त्वज्ञान और संयम के अभ्यास से मन में इस धारणा को दृढ़ बनाना होगा कि जो नर्क का हेतु है, रोग का कारण है, आत्मा की अवन्नति का हेतु है, उस कार्य को मैं क्यों करूँ ? जिसके लिए मैं कर्त्तव्य पथ से विचलित हो रहा हूँ, वह नारी क्या है ?

''कौटिल्यदम्भसंयुक्ता सत्यशौचविवर्जिता।
केनापि निर्मिता नारी बन्धनं सर्वदेहिनाम् ॥

–अवधूत गीता 8/14

इसलिए सोच विचार कर देखना चाहिए कि क्या देखने पर हमारे मन में इतनी काम वासना जागती है, किस कारण से यह पाशव वासना की आग है। क्या वह दैहिक सौन्दर्य है ? परन्तु देह क्या है। वह पंच

महाभूतों की समष्टि अवस्था के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जिसका विकास समूचे जगत में व्याप्त है, जो संसार की समस्त वस्तुओं में विद्यमान है, उसके लिए एक सीमित स्थान में आकर्षण क्यों ? विशेषकर रूप और यौवन कितने पल के लिए है ? वह बचपन में क्या था—यौवन में क्या हुआ—फिर प्रौढ़ावस्था और बुढ़ापे में क्या होगा ? इस तरह परिवर्तनशील शरीर का परिणाम क्या होगा; वह सोचना चाहिये। वह जो जराग्रस्त बुढ़िया मृत्यु शय्या पर सोई हुई है, वह बुढ़िया तो एक दिन अवश्य युवती थी, परन्तु अब उसकी क्या हालत है ? फिर यदि यौवन में रोग पैदा हो जाए तो वह सुन्दर शरीर को सड़ागला कर प्रेत से भी बदतर कर सकता है। इसलिए उसके लिए इतनी आसक्ति क्यों ? स्मरण रहे—

"भगादिकुचपर्यन्तं संविद्धि नरकार्णवम्।
ये रमन्ते पुनस्तत्र तरन्ति नरकं कथम् ॥"

अवधूत गीता, 8/17

और एक बात है कि नारी के सहवास में आनन्द है। परन्तु वह आनन्द किसके पास है, इसके तत्त्व पर विचार करके देखना चाहिए। चूंकि वह ब्रह्मवस्तु वीर्य हमारे भीतर है, तभी तो आनन्द है, वरना रमणी के शरीर में कुछ नहीं है। बच्चे रमणी के शरीर को देखकर उससे मुग्ध न होकर मां की गोद में रहना क्यों पसंद करते हैं ? राजा के अन्तःपुर में

---

* इन कुछ एक श्लोकों के लिए ब्रह्मज्ञान में प्रतिष्ठित महात्मा और जगन्माता की अंशसंभूत भारत माताएं लेखक को क्षमा करेंगे। गुरुकृपा से मेरे मन में इस तरह के संबंध का ज्ञान नहीं है। मैं जानता हूँ कि नारी और पुरुष, सभी एक ही चैतन्य का विकास है। वह आधार के भेद से और गुण के भेद से भिन्न-भिन्न मात्र है। इसलिए इस तरह की विवेचना करना मैं असंगत मानता हूँ। मैं जानता हूँ—

"नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स लक्ष्यते।"

—श्वेताश्वेतरोपनिषद, 5 अः

"अतएव ही योगीन्द्रः स्त्री पुंभेदं न मन्यते।
सर्वंब्रह्ममयं ब्रह्मन शाश्वत पश्यति नारद ॥"

—ब्रह्मवैवर्त्त पुराण, प्रकृतिखंड, प्रथम अः

मैं नारी और पुरुष के बीच किसी प्रकार का अन्तर नहीं महसूस करता हूँ।

रहने वाले नंपुसक प्रहरियों के लिए वालिका, युवती और वृद्धा, सभी बराबर हैं। एक उदाहरण से इसे समझाने की कोशिश करेंगे।

देहात के लोगों ने शायद देखा होगा कि देहात के पालतू कुत्ते को जब गांव में खाने को कुछ नहीं मिलता तब वह गो-श्मशान में चला जाता है और वहाँ से काफी पुरानी गो-अस्थि लेकर चला आता है। बाद में किसी सुनसान जगह पर बैठकर भूख की ज्वाला से उस सूखी हड्डी को चबाता जाता है। परन्तु उस हड्डी में है भी क्या ? उस सूखी हड्डी की चोट से उसका मुंह घायल होकर उससे खून निकलता है। जब वह खून उसकी जीभ में लगता है, उसे स्वाद महसूस होता है। उस समय वह उस सूखी हड्डी को और भी चाव से चबाता जाता है। बाद में जब उसके मुँह में जलन होती है, उस समय वह समझ पाता है कि वह अपने ही खून से जीभ को तृप्त कर रहा है। तब वह उस हड्डी को फेंककर दूसरा खाना ढूँढने चला जाता है। ठीक वैसे ही आनन्ददायक वस्तु हमारे शरीर के भीतर ही है। परन्तु यह नहीं समझ पाने के कारण हम लोग रमणी के सौन्दर्य के प्रति मुग्ध होकर क्षणिक आनन्द के लिए उस वस्तु को नष्ट कर रहे हैं। सुख की आशा में दौड़कर आखिरी में हमें घोर पछतावा हो रहा है। सुख तो हमारे बहुत ही पास है, यह बात हम नहीं समझ पाते हैं। हम पतंगे की तरह रूप की आग में कूद कर जलकर मर रहे हैं। जो वस्तु शरीर से निकलते समय थोड़ी देर के लिए अनिर्वचनीय आनन्द देती है, यदि उसकी यत्न के साथ शरीर में रक्षा की जाती तो वह कितना अननुभवनीय आनन्द देता ? हम ऐसे अज्ञानी हैं कि उस वस्तु को नष्ट करने के लिए अपने जीवन और मन को न्योच्छावर कर देते हैं।

इस तरह तत्त्व पर विचार करते हुए और मन को दृढ़ करके जो ऊर्ध्वरिता बन पाया है, वह यथार्थ में नररूपी देवता है। महादेव कहते हैं—

"न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम्।
उर्ध्वरिता भवेत यस्तु स देवो न तु मानुषः।"

ब्रह्मचर्य अर्थात वीर्यधारण ही सबसे बड़ी तपस्या है। जो इस तपस्या में सिद्धि प्राप्त कर ऊर्ध्वरिता बन पाया है, वह मनुष्य के रूप में वास्तव में देवता है। जो ऊर्ध्वरिता है, मृत्यु उसकी इच्छाधीन है, वीरत्व

उसकी हाथ की मुट्ठी में है। शुक्र के ऊर्ध्वगमन से अतुलनीय आनन्द प्राप्त होता है।*

वीर्यधारण नहीं करने से योग साधना विडम्बना मात्र है। इसलिए योग अभ्यासकारियों को यत्न के साथ वीर्य की रक्षा करनी चाहिये।

"योगिनस्तस्य सिद्धिः स्यात् सततं विन्दुधारणात।

सतत विन्दुधारण करने से योगियों को सिद्धि प्राप्त होती है। वीर्य के संचित होने पर मस्तिष्क में प्रबल शक्ति संचित होती है। इस महान शक्ति के बल पर एकाग्रता की साधना सहज होती है। जिन्होंने पत्नी ग्रहण कर रखी है, वे एकदम ऊर्ध्वरिता नहीं बन सकेंगे, क्योंकि ऋतु रक्षा नहीं करने से शास्त्रानुसार पाप होता है। इसलिए पुत्र की कामना से, वंश की रक्षा के लिए भगवान की सृष्टि प्रवाह को अक्षुण्ण रखने के लिए योग मार्ग पर चलने वाले साधक को संयत चित्त से प्रति माह मात्र एकदिन अपनी पत्नी की ऋतु रक्षा करनी चाहिए।

उपर्युक्त नियमानुसार चित्त को अच्छी तरह संयत करके किसी भी साधना में प्रवृत्त होने पर उसमें शीघ्र ही सफलता मिलेगी। अन्यथा पार्थिव वस्तुओं के प्रति आसक्ति से हृदय को पूर्ण करके आंखें मूंद कर ईश्वर के ध्यान में नियुक्त होने पर अंधकार के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई नहीं देगा। ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना बिल्कुल आसान नहीं है। जहाँ चाहे वहाँ बैठकर ईश्वर चिंतन किया जा सकता है। परन्तु ब्रह्मज्ञान उससे अलग वस्तु है। त्याग ही इसका प्रधान कार्य है। त्याग की साधना नहीं करने से ब्रह्मचिंतन निष्फल है।

उपर्युक्त तत्त्व पर विचार करके आसक्ति रहित नहीं हो सकने से

---

* योग में ऐसी विधि है, जिससे काम प्रवृत्ति की निवृत्ति होती है और वीर्य का क्षय नहीं होता। योग शास्त्र में वह बहुत ही गुप्त है। आनन्दप्रद कार्य होने पर भी उससे आसक्ति में वृद्धि होती है।
मत प्रणीत 'ज्ञानीगुरु पुस्तक' में उसका वर्णन किया गया है। मतप्रणीत 'ब्रह्मचर्य साधना' पुस्तक में वीर्यधारण की साधना और उसके नियमावली दी गई है। मतप्रणीत 'प्रेमिकगुरु' पुस्तक में इस संबंध में उच्चस्तरीय चर्चा की गई है।

केवल केशप्रसाधन करने या देश-परदेश में घूमते रहने से कुछ नहीं होगा। भव संसार के भाव में न डूब कर भाव के भव में अर्थात ईश्वर के भाव में डूबे रहने से सब कार्य सफल होते हैं। इस तरह के भाव से घर में बैठकर बाल बच्चों और घर संसार लेकर विषय और वैभव के बीच रहते हुए भी अच्छा काम करने से उसका फल भी अच्छा ही होगा। इस तीर्थ से उस तीर्थ में भागने, संन्यासियों के दल में सम्मिलित होने अथवा पांखडियों के साज से सज धजने से कुछ नहीं होगा। इससे भस्म या मिट्टी का लेप लगाने, जटा रखने, रंगीन वस्त्र पहनने, उपवास करने, संसार धर्म को छोड़ने, विभिन्न मार्ग अपनाने, तरह-तरह के शास्त्र ढूँढ़ने, तरह-तरह की बातों को समझने और परिणामतः रास्ते का भिखारी बनने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

केवल माला और झोला पकड़ कर हरि बोल कहने, मिट्टी का लेप लगाकर चैतन्य चोटी रख कर गोपीवल्लभ का नारा देने, जटाएँ रखकर भस्म का लेप लगाकर बम-बम कहते हुए हरदम गांजे का दम खींचने, काली काली की रट लगाकर गंगा की रेत पर लोट कर शराब पीने से मदनमोहन के चरण की प्राप्ति नहीं होती। यह बात अवश्य समझ लो कि वनवास में जाने से नहीं होता, मन को वश में करने से होता है। तीर्थवास से नहीं होता, घर पर बैठने से होता है। द्वेष से रस की प्राप्ति नहीं होती। काम के होते राम नहीं मिलते। लोभ रहने से क्षोभ होता है। अभिमान रहने से उसकी परिणिति पाप से होती है। पाप रहने से ताप होता है। कपटता रहने से अपटुता होती है। माया रहने से काया (शरीर) नहीं छूटती। वासना रहने से साधना नहीं होती। आशा रहने से पिपासा (प्यास) बढ़ती है। गौरव का ज्ञान रहने से रौरव नर्क में जाना पड़ता है। प्रतिष्ठा की प्रत्याशा रखने से इष्ट का चिंतन नहीं होता। गुरुत्व का ज्ञान रहने से गुरुकृपा नहीं मिलती। गुरु को नहीं पकड़ने से गुरुतर भोग होता है। वांछा रहने से वांछा कल्पतरु की वांछा करना व्यर्थ है। अहं ज्ञान रहने से सोऽहं नहीं होगा। केवल पाखंड करने से सब कुछ व्यर्थ जाता है। आखिर में दण्डधारी यमराज के प्रताप से इधर-उधर भटक कर दण्ड का भोग करते-करते अन्त में आंसू बहाना पड़ेगा। अतः यदि सच्चा मनुष्य बनने की इच्छा है तो मिट्टी के

शरीर पर अभिमान को मिट्टी बना दो तो मिट्टी में रहकर मिट्टी चाटते हुए मिट्टी से मिलकर श्रम करो। तब सब कुछ खरा है। मिट्टी का शरीर भी खरा है। अतः मोटे तौर पर सबको मिट्टी बनाकर यदि हम मिट्टी का मनुष्य नहीं बन सकते, तब साधनाएं और भजन सब कुछ मिट्टी है—मिट्टी का शरीर भी मिट्टी है—समग्र मानव जीवन भी मिट्टी ही हो जाएगा।

कुछ ऐसे भी लोग हैं जो कहते हैं कि संसार में रह कर साधना और भजन नहीं किया जा सकता। क्यों ? संसारी लोग धर्म और साधना नहीं कर सकेंगे, उनकी सद्गति नहीं होगी, उसके क्या कारण हैं ? संसार तो भगवान का है। तुम संसार के 'सं' को छोड़ कर सार को ग्रहण करो। दुराशा के स्रोत में न डूब कर असार रूप में 'सं' का साज न पहन कर 'सार' (अर्थात) श्रेष्ठ बनकर संसार में आने का सही उपयोग करो तथा संसार में सार का प्रसार करते हुए प्रतिष्ठा प्राप्त करो। केवल सांसारिक हो हल्ले के भीतर घोर अव्यवस्था में कोई गड़बड़ी न करके, गोलमाल के गोल को छोड़ कर खरी चीज को छांट सकने से हमेशा बचाओ बचाओ की रट लगाकर समग्र जीवन को असहाय नहीं बनाना पड़ेगा। तब तो भगवान की इस मंगलमय सृष्टि में मैना बनकर आशा से अधिक अच्छे और अपूर्व आनन्द का भोग कर सकेंगे। कर्त्तव्य के ज्ञान से कर्त्तव्य कर्मों को पूरा करते हुए मन लगाकर भगवान को पुकारने की तरह पुकार सकने से और उनका चिन्तन करने की तरह चिन्तन कर सकने से संसार धर्म को भी वर्करार रखकर परमा गति प्राप्त की जा सकती है।

किसी-किसी को समय के बारे में भी आपत्ति है। वे कहते हैं, परिवार आदि के पालन के लिए धन कमाने में ही सारा दिन लग जाता है। साधना और भजन कब करें ? यदि धन कमाने और सांसारिक कार्य को पूरा करने में सारा दिन बीत जाता है, तो प्रत्येक रात को जितना समय नींद के सुख का उपभोग करते हो, उसमें से एक घंटा कम सोकर उस घंटे में निश्चिंत मन से नित्य निरंजन की आराधना करने से आशातीत फल मिलेगा। किसी-किसी के द्वारा तो अर्थ (धन) के अभाव में परमार्थ का चिंतन नहीं होता। धन होता तो शायद खूब चावल, चीनी, चिड़वा और

केले लाकर इसमें डूब कर उत्सव का आयोजन करते हुए भेड़ और भैंसे की बलि चढ़ाकर खूब धूमधाम से ढोल बजाकर लोगों के मन को निमज्जित किया जा सकता है। धन का अभाव होने पर वह नहीं हो सकता, परन्तु पूजा में जो सब उपकरंण लगते हैं, वह सब भी तो उन्हीं के हैं। उन्हीं की चीज उन्हें देने पर उसमें हमारी क्या बहादुरी है। हम सर्व अन्तःकरण से उन चिन्मय चिंतामणि के चरणों में हर तरह से चित्त को समर्पित कर उन्हीं के भक्तों के शब्दों में भक्तों की तरह प्रेम करुणापूर्ण आवाज में उन्हें पुकारेंगे–

रत्नाकरस्तव गृहं गृहिणी च पद्मा।
देयं किमस्ति भवते पुरुषोत्तमाय ?
आभीरवामनयनापहृत मानसाय।
दत्तं मनो यदुपते त्वमिदं गृहाण।

हे यदुपति। समस्त रत्नों की खान समुद्र तुम्हारा निवास स्थान है। समस्त संपदा की अधिष्ठात्री देवी कमला तुम्हारी गृहिणी है। तुम स्वयं पुरुषोत्तम हो। अतः तुम्हें देने के लिए मेरे पास क्या है ? सुना है कि प्रेममयी गोप की ग्वालिनों ने तुम्हारे मन को चुरा रखा है। तब तो तुम्हें केवल मन का अभाव है। इसलिए मैं अपना मन तुम्हें अर्पित करता हूँ। हे प्रेम के वश में आने वाले गोपी वल्लभ ! तुम कृपा करके इसे ग्रहण करो। तब तो तुम्हारी सारी शिकायतें दूर हो गईं। अतः इन सब आपत्तियों को दिखाना निरर्थक है। मेरा विश्वास है कि जिसके प्राण उन प्रेममय के कमल चरण की ओर दौड़ते हैं कोई भी सांसारिक बाधा उसे जोर जबरदस्ती करके नहीं रोक सकती। देखो, विष्णु के प्रति द्वेष भाव रखने वाले पिता के पुत्र प्रह्लाद को उसके पिता ने उसे अथाह समुद्र में फेंक दिया। जलती आग में झोंक दिया, मतवाले हाथी के पैरों तले डाल दिया, सांप से डंसवाया, फिर भी उसने हरिनाम का गान नहीं छोड़ा। कुछ पाखंडी धर्म समाज में पल बढ़ कर और उपदेश प्राप्त होकर भी भगवान का नाम लेने में बिछू के काटने की तरह यंत्रणा महसूस करते हैं। बुद्ध देव ने अतुल साम्राज्य, अगणित वैभव, वृद्ध माता-पिता के शुद्ध स्नेह, प्रेममयी पतिव्रता पत्नी के अनन्त प्रेम और शिशु संतान के मधुर कण्ठ की तोतली बोली–इस सब

की उपेक्षा करके संन्यास लिया और हम लोग अनेक प्रकार की निराशाओं से घिरे होकर तकलीफ में रहते हुए भी टूटी झोंपडी की माया को नहीं छोड़ सकते। कोई ईश्वर द्वारा सृष्ट इस जगत में केवल बात करने के बहाने अर्थ का विन्यास करने का उपादान देखता है, तो फिर कोई उस जगत में चिन्मयी महाशक्ति का वैचित्र्यपूर्ण खेल देखता है। कोलेरिज साहब ने काव्य पाठ करने के बाद कहा था–"Poetry has given me the habit of wishing to discover the good and beautiful in all that meets and surrounds me." फिर एक अन्य प्रतिभासंपन्न साहब ने काव्य का पाठ कर कहा : The end of poetry is the elevation of the soul. *****the improvment and elevation of the moral and spiritual nature of man. इसके क्या कारण हैं ? यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि इन्द्रिय शक्ति के अन्तर के कारण ऐसा होता है। जो जैसी प्रतिभा और चिंतन शक्ति को लेकर जन्म लेता है, उसके चित्त की गति वैसी ही होगी, यह स्वतः सिद्ध बात है। अतः तरह-तरह की आपत्ति और शिकायत करके अपने-अपने स्वभाव को गुप्त रखकर साधारण लोगों की आँखों में धूल झोंकने जाओ तो अन्त में विडम्बना ही भोगनी होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

अनेक फुल बाबू (Full Baboo) शास्त्र की युक्ति के साथ अपनी युक्ति को जोड़कर मुक्ति के संबंध में विशेष पाण्डित्य दिखाते हुए कहते हैं कि ''धर्म और कर्म करने की आयु आने पर वह सब किया जायेगा।'' उनका विश्वास है कि शक्ति के रहते हर किस्म का मजा लुटकर मदन मरण का अभिनय करते जाना चाहिये। उसके बाद जब इन्द्रियगण शिथिल हो जायेंगे तब अक्षमतावश हरिनाम में मतवाला बनना चाहिये। धर्म करने के लिए क्या कोई आयु निश्चित है ? इस मरणशील जगत में आने से पहले मृत्यु के कर्त्ता से मौरूसी पट्टा मिल जाने पर कि पंचाशोर्द्ध वनं व्रजेत, (पचास वर्ष से ऊपर होने के बाद वन में चले जाना चाहिये) इस प्रमाण के आधार पर निश्चित होकर बैठो। परन्तु अगले पल में चित्र पट में क्या लिखा हुआ है, वह मनुष्य को ज्ञात नहीं है, तब पचास को पार करने की आशा करना दुराशा मात्र है। इन्द्रियों के शिथिल हो जाने पर जब सामान्य

सांसारिक कार्य के लिए भी सामर्थ्य नहीं होगा, तब अनन्त के अनन्त भाव को धारण कैसे करेंगे ? जिस प्रकार ताजा खिले फूल की कली खुशबू बिखेरती है, वासी फूल में वह खुशबू नहीं रहती। विशेषकर यौवन के अप्रतिहत प्रभाव से एक बार यथेच्छाचारी वनने पर चित्त को अपने वश में लाना साध्यातीत हो जाता है। इस संबंध में एक कहानी स्मरण हो आयी है।

एक आदमी आजीवन चोरी करके जीविका निर्वाह कर रहा था। परन्तु चोर का लड़का अपनी मेहनत के बल पर डिप्टी मजिस्ट्रेट वन गया। बेटा वेतन में मोटी रकम लाता था। उसके संसार में किसी प्रकार का अभाव नहीं रहा। फिर भी वह अपनी वृत्ति को नहीं छोड़ सका। आम लोग इस संबंध में कई तरह की बातें करते और इस पर आपस में चर्चा करते। चोर से एक दिन उसके लड़के ने कहा "पिता जी। आपको क्या खाने, पीने और पहनने को नहीं मिल रहा है जिसके कारण आप आज भी चोरी करते हैं ? आप के कारण मैं मारे शर्म के समाज में मुंह दिखाने लायक नहीं रहा। योग्य पुत्र की लताड़ से पिता ने उसके सामने स्वीकार किया "मैं और चोरी नहीं करूँगा"। उस दिन से वह किसी की चीजें चुरा के घर नहीं लाता, परन्तु एक आदमी की चीज दूसरे के घर में तो दूसर के घर की चीज तीसरे के घर में रख आता था। कुछ दिन बाद यह बात भी चारों ओर फैल गई। चोर के बेटे को भी इस बात का पता चल गया। पिता को काफी झिड़कियाँ सुनाने के बाद उसने यह सब करने का कारण पूछा।

चोर ने उत्तर दिया, "मैं अब चोरी नहीं करता हूँ। परन्तु चोरी नहीं करने से मुझे रात को नींद ही नहीं आती। मुझे जरा सा चैन नहीं आता। इसलिए चोरी न करके एक की चीज दूसरे के घर में रख आने से मुझे कुछ तसल्ली होती है।"

अतः यौवन के आरंभ में जिस समय समस्त चित्त वृत्तियां विकसित होती हैं, यदि उस समय दृढ़ अभ्यास के साथ उन्हें संयत न किया जाये तो आखिरी में उनकी उच्छृंखल गति को रोकना विड़म्बना मात्र है। परन्तु तुलसी दास और विल्वमंगल आदि जैसे व्यक्तियों की प्रतिभा कर्म के

आवरण से ढकी हुई थी। खुलते ही वह तेजी से उभरने लगी और वे धर्म जगत में महाजन बने। कितने लोग वैसे भाग्य को लेकर जन्म लेते हैं ? अतः

"अशक्तस्तस्करः साधुः कुरूपा चेत पतिव्रता।
रोगी च देवभक्तः स्यात वृद्धवेश्या तपस्विनी।"

ऐसे न होकर समय रहते सावधान हो जाना चाहिए। अन्यथा मन में विषय चिंतन, कपटता, कुटिलता, स्वार्थपरता, द्वेष और अहंभाव पूर्ण करके इन्द्रियों की अक्षमतावश माला और झोला लेकर दिखावे के लिए विलाब जैसे वैष्णव का व्रत लेने से अन्तर के धन अन्तर्यामी पुरुष का साक्षात नहीं होता।

उपर्युक्त रूप में निर्लिप्त भाव से संसार धर्म का पालन कर भगवान में चित्त को समर्पित कर सकने से गृहत्यागी साधुओं की तुलना में अधिक लाभ प्रात कर सकता है। क्योंकि मेरे जैसे लोग दोनों किनारों को नहीं रख पाये हैं। मैंने संसार धर्म को छोड़कर आत्मीयस्वजन को शोक के समुद्र में डूबोकर एक किनारे को पकड़ा है। परन्तु जो लोग संसार धर्म के नियमों का पालन कर और सांसारिक कार्यों के भीतर रह कर भी इष्ट देवता के नाम का स्मरण और चरणों का ध्यान कर सकते हैं, उनकी अवस्था सोने में सोहागा मिलाने की तरह उज्ज्वल होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु इस बात को लिखने पढ़ने कहने अथवा सुनने में जितना आसान लगता है नियमों का पालन करना उतना आसान नहीं है। जो भी हो, योग की साधना करते-करते और दृढ़ अभ्यास के साथ उसका अनुशीलन करने से सांसारिक आसक्ति दूर होगी। तब योग का अभ्यास करने के लिए कुछ विशेष नियमों का पालन करना होगा।

विशेष नियम

विशेष नियमों का पालन न करने से योग साधना संभव नहीं होगी। सबसे पहले आहार की शुद्धि होनी चाहिए। खाद्य के साथ शरीर का

विशेष संबंध है। यदि शरीर स्वस्थ नहीं रहेगा, तो साधना और भजन नहीं होगा। इसलिए शास्त्र में बताया गया है कि–

धमार्थकाममोक्षणां शरीरं साधनं यतः।

–योगशास्त्र

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, ये चतुवर्ग प्राप्त करने हो तो शरीर की पूरी रक्षा करना बहुत ही आवश्यक है। यदि शरीर पीड़ाग्रस्त या अकर्मण्य होगा तो साधना नहीं हो पाएगी। परन्तु शरीर को स्वस्थ रखना हो तो **आहार** के संबंध में विशेष सावधान होना पड़ता है। शरीर और मन की उन्नति करने वाला और हितकारी खाद्य ही सही खाद्य है। जिसको खाने पर किसी प्रकार की बीमारी नहीं होती, अपितु शरीर मजबूत होता है, चित्त प्रसन्न तथा धार्मिक वृत्ति में वृद्धि होती है, शौर्य, वीर्य, दया और दाक्षिण्य आदि में वृद्धि होती है, वही आहार ठीक है। केवल इन्द्रियों को सुख देने वाला खाद्य खाना आहार का चरम उद्देश्य नहीं है। जिससे इहलोक और परलोक में सुख मिलता है, इहलोक में निरोग रहकर धर्म प्रवृत्ति का विकास होता है, उसका आहार करने पर बाद के जीवन में सुखी बन सकते हो। मोटी बात यह है कि आहार के गुण के अनुसार मनुष्य के गुण में अन्तर दिखाई देता है। अतः आहार के संबंध में विशेष सावधानी बरतनी चाहिए। आहार के संबंध में शास्त्र में बताया गया है–

"आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिलाभे सर्वग्रथीनां विप्रमोक्षः ॥

छान्दग्योपनिषद।

आहार शुद्धि होने पर सत्त्व शुद्धि होती है। सत्त्व शुद्धि होने पर निश्चित रूप से स्मृति लाभ होता है। स्मृति लाभ होने पर मुक्ति शीघ्र ही सुलभ होती है। इसलिए हर तरह से कोशिश करके आहार शुद्धि के लिए मन लगाना होगा। सत्त्वगुण सब का चरम लक्ष्य है। इसलिए साधकों को रजो और तमोगुण युक्त खाद्य कभी नहीं खाना चाहिए। बासमती चावल पक्के केले, गन्ना, चीनी, दूध और घी, योगियों का मुख्य आहार है।

अत्यधिक नमकीन, अत्यधिक कड़वा, अत्यधिक अम्लयुक्त, अत्यधिक गर्म, अत्यधिक तीक्ष्ण, अत्यधिक रूखा, विदाही द्रव्य, प्याज, लहसुन, हिंग,

शाक सब्जी, दही और छाछ आदि का त्याग करना चाहिए। साफ, सरस, चिकना और कोमल द्रव्यों से पेट के तीन भागों को पूरा करके शेष भाग को वायु संचालन के लिए खाली रखना चाहिए।

सागों में मदरंगा, कोशला, परवल के पत्ते, बथुआ और हिडिमिचा आदि ये पांच प्रकार के साग योगियों के भोजन के लायक हैं। मिर्चदार, झाग निकालने वाली तरकारी नहीं खानी चाहिये। प्रतिदिन परिमित मात्रा में दूध और घी आदि बलकारक द्रव्य खाने चाहिए।

योग साधना के समय अग्नि सेवा, नारी संग, अधिक पैदल चलना, सूर्य दर्शन, (तेज धूप में काम करना) प्रातः स्नान, उपवास, गुरु भोजन और भार ढोने आदि कोई भी शारीरिक श्रम नहीं करना चाहिए। शराब पीना या किसी प्रकार के मादक द्रव्य का सेवन भी नहीं करना चाहिए। भोजन करने के बाद, मल और मूत्र के वेग को रोक कर थकावट में अथवा चिंतायुक्त होकर योगाभ्यास नहीं करना चाहिए। क्रिया के अंत में श्रम के कारण जो पसीना निकलेगा, उसे शरीर में ही मल लेना चाहिए, वरना शरीर के समस्त धातु नष्ट हो जायेंगे।

पहले वायुधारण करते समय बहुत थोड़ा-थोड़ा करके धारण करने का अभ्यास करना चाहिए। जिस प्रकार रेचक के बाद हॉफना न पड़े। योग साधना के समय मंत्र का जाप आदि नहीं करना चाहिए। उत्साह, धैर्य, निश्चित विश्वास, तत्त्वज्ञान, साहस और लोक संग का त्याग, ये छः बातें योगसिद्धि के कारण हैं।

आलस्य योग साधना का एक प्रमुख विघ्न है। आलस का त्याग कर या निरलस होकर साधना कार्य करना चाहिए। केवल योग शास्त्रों का पाठ और योग संबंधी बातों का अनुशीलन करने पर योगसिद्धि नहीं होती। क्रिया ही सिद्धि का कारण है। मेहनत न करने पर कभी कोई भी कार्य फलवती नहीं होता। इस संबंध में महाजनों की उक्ति निम्न प्रकार है–

"उपायेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः"।

यदि मनुष्य कोशिश नहीं करेगा, तो कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। एक-एक बात को अच्छी तरह सिद्ध करने के लिए मनुष्य को कितने प्रयास करने होते हैं, कितनी तकलीफें उठानी होती हैं तथा कितने अनुष्ठान करने

होते हैं, वह केवल कार्य करने वाले व्यक्ति ही जानते हैं। इसलिए हमेशा आलस छोड़कर क्रिया करनी चाहिए। साधना कार्य में मेहनत नहीं कर सकने से फल की प्राप्ति नहीं होती। एकाग्र चित्त से प्रतिदिन नियमित रूप से पहले बताई गई किसी भी क्रिया का यथा नियम से अभ्यास करने पर प्रत्यक्ष फल मिलेगा—इसमें सन्देह नहीं है।

योगाभ्यास के समय अन्यायपूर्वक पराये धन का अपहरण, प्राणी हिंसा और उन्हें पीड़ा पहुंचाना, लोगों के प्रति द्वेष भाव, अहंकार, कुटीलता, असत्य बोलना और संसार के प्रति अति आसक्ति बिल्कुल छोड़नी होगी। दूसरे धर्म की निंदा नहीं करनी चाहिए। धर्मान्धता या रूढ़ीवादिता अच्छी बात नहीं है। धर्म के नाम पर धर्मान्धता से बड़ा पाप होता है। धर्म की निन्दा नर्क का कारण है। सबको सोचना चाहिए कि जो जिस नाम से पुकारे, जिस रूप में सोचे, जैसी भी क्रिया का अनुष्ठान क्यों न करे, उसका उद्देश्य क्या है ? यह बात सभी स्वीकार करेंगे कि कोई भगवान के अतिरिक्त तुम्हारी या मेरी उपासना नहीं कर रहा है। धर्म में महानता या नीचता के नाम से कुछ नहीं है। जो स्वधर्म में रहकर स्वधर्म के लिए उचित क्रिया आदि का अनुष्ठान करता है, वही श्रेष्ठ है। इस संबंध में गीता में भगवान की उक्ति निम्न प्रकार है—

श्रेयान स्वधर्मो विगुणः परधर्मात स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।''

इस बात पर दृढ़ ही रहिये, कभी भी दूसरे धर्म की निन्दा मत कीजिये। महात्मा तुलसी दास ने कहा—

''सब से वसिये सब से रसिये सब का लीजिये नाम
हाँजी हाँजी करते रहिये बैठिये अपना ठाम ॥''

सब के साथ उठिये, बैठिये, सबके साथ आनन्द मनाएं, सबका नाम लीजिये, सब की बात में हाँ भरिये, परन्तु अपनी जगह पर मजबूती से बैठे रहिये अर्थात् अपने भाव को दृढ रखिये।

योगियों के लिए शास्त्रों के संबंध में वाद-विवाद करना ठीक नहीं है। उनके लिए इधर-उधर से अनेक शास्त्रों का पाठ करना भी अच्छा नहीं है। शास्त्र अनन्त है। हम अपनी मोटी बुद्धि से शास्त्र पर चर्चा करके

शास्त्रों को एक दूसरे से भिन्न होने के रूप में प्रतिपादित करते हैं। परन्तु वास्तव में शास्त्रों का लक्ष्य एक है और समस्त साधनाओं का उद्देश्य एक है तथा फल भी एक है। गुरु की कृपा से सच्चा ज्ञान नहीं होने से शास्त्रों का पाठ करने से वह सब समझ में नहीं आते। शास्त्रों का पाठ करके तर्क का एक बहुत बड़ा जाल फैलाकर व्यर्थ में ऊलजलूल बकना ठीक नहीं हैं। इस तरह पल्लवग्राही बनने पर सच्चे ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। योग शास्त्र में बताया गया है कि :

"सारभूतमुपासीत ज्ञानं यत् कार्यसाधनम्।
ज्ञानानां बहुता सेयं योगविघ्नकरी हि सा ॥"

साधना के क्षेत्र का सारभूत और कार्य के लायक ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त अज्ञ समाज में विज्ञ बनकर पल्लवग्राही बनना योग में विघ्नकारी है। अतः

"अनन्तशास्त्रं बहु वेदितव्यं स्वल्पश्च कालो वहवश्च विघ्ना।
यत सारभूतं तदुपासितव्यं हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात।"

सर्व साधारण को इस महत वाक्य के अनुसार कार्य करना चाहिए। इसलिए कहता हूँ हिन्दू शास्त्र अनन्त और ऋषि मुनि भी अनन्त हैं। परन्तु हमारी आयु बहुत ही कम है। हमेशा सांसारिक कार्य का जंजाल रहता है। इसलिए एक व्यक्ति के लिए उसके जीवन काल में समस्त शास्त्रों का अध्ययन करना और अध्ययन करने के बाद सही भाव को ग्रहण करना भी असंभव है। इसलिए विभिन्न शास्त्रों पर चर्चा करके उनकी खिचड़ी न पकाकर समस्त जातियों में आदरणीय और मानव जीवन के उपदेष्टा तथा धर्म ज्ञान का एक मात्र अंतिम शिक्षा स्थल श्रीमद्भगवत गीता का पाठ करना चाहिये। यह सच है कि गीता का सही अर्थ समझाने वाले लोग समाज में आसानी से नहीं मिलेंगे, तथापि गीता और भक्ति शास्त्र का बार-बार पाठ करना चाहिए। लोगों को दिखाने के लिए पाखंडपन और लोगों को भुलाने के लिए ठगी न करके उपर्युक्त नियमों का पालन करके योगाभ्यास करने से धीरे-धीरे संसार के प्रति आसक्ति दूर होकर चित्त का लय होगा। मन का लय हो जाने से और चाहिए भी क्या ? महाज्ञानी तुलसी दास ने कहा–

"राजा करै राज्यवश, योद्धा करै रण जई।
आपन मन को वश करे जो सब का सेरा ओई ॥"

वास्तव में अपने मन को वश में करना बड़ा ही कठिन है। जो अपने मन को जीत पाया हैं, उसका मानवजीवन सार्थक है। महात्मा कबीर ने कहा–

"तन थिर मन थिर वचन थिर सूरत निरत थिर होय।
कहे कबीर इस पलक को कलप ना पावे कोय ॥"

अतः साधकों को योग साधना के समय कभी भी इन नियमों का पालन करने में कोताही नहीं करनी चाहिए। एक और बात है कि जो जैसी साधना करेगा, उसे पूरी तरह गुप्त रखेगा। अनेक लोगों का ऐसा स्वभाव है कि अपनी बहादुरी बताकर लोक समाज में वाहवाही पाने तथा नाम, यश और गौरव पाने के लिए अपनी साधना के बारे में सब के सामने कहते फिरते हैं। कोई-कोई तो साधना के लाभ की सामान्य जानकारी होते ही उसे सबके सामने प्रकट करने के लिए उतावले हो जाते हैं। परन्तु इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि यह निरी मूर्खता है। क्योंकि ऐसा करने पर साधक की विशेष हानि होती है। योगेश्वर महादेव ने कहा है–

"योगविद्या परा गोप्या योगिनां सिद्धिमिच्छतां।
देवी वीर्यवती गुप्ता निर्वीर्या च प्रकाशिता।"

–योगशास्त्र

जो योगी योग में सिद्धि प्राप्त करना चाहता है, उसे बहुत ही गुप्त रूप में साधना करनी चाहिए। उसे किसी के समक्ष प्रकट नहीं करके गुप्त रखने से ही वह वीर्यवती और फलवती होती है और प्रकट कर देने से वही निवीर्य और निष्फल हो जाती है। आप किसी भी भाव में साधना क्यों न कीजिये, यह स्वाभाविक है कि साधना के फल की थोड़ी-थोड़ी अनुभूति होगी। चाहे प्राण चले जाये फिर भी उसे दूसरों के समक्ष प्रकट नहीं करना चाहिए। फलाफल आदि सब कुछ भगवान में अर्पित करके उनके चरणों में पूरी तरह आत्मनिर्भर करके साधना में प्रवृत्त होना पड़ेगा। भगवान ने अपने मुंह से कहा है–

"सर्वधर्मान पिरित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

गीता 18/66

अतः उन श्रीकृष्ण* के चरणों में पूरी भक्ति और विश्वास के साथ साधना में लग जाने से शीघ्र ही अच्छा फल मिलेगा। क्योंकि उनका चिंतन करने से उनकी भास्वर ज्योति हृदय में पड़ने पर दिव्य ज्ञान का उद्रेक हो कर मुक्ति पथ सुगम होगा। यह स्मरण रहे और उसे मैं पुनः कहता हूँ—

"ब्रह्मचारी मिताहारी त्यागी योग परायणः।
अदवादुद्धर्वं भवेत सिद्धो नात्र कार्य विचारणा ॥"

—गोरक्ष संहिता। -4

योगीजन ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे अर्थात् नारीसंग का त्याग करेंगे। वे मिताहारी बनेंगे अर्थात अपरिमित आहार नहीं करेंगे। वे त्यागी बनेंगे अर्थात किसी विषय के प्रति इच्छा नहीं रखेंगे। इस हालत में रह कर योगाभ्यास करने से एक वर्ष के भीतर सिद्धि होती है—

"केश भस्मतुषांगारकीकसादिप्रदूषिते
नाभ्यसेत पूतिगंन्धादौ न स्थाने जनसंकुले।
न तोयवह्निसामिप्ये न जीर्णारण्यगोष्ठयोः
न दंशमशकाकीर्णे न चैत्ये न च चत्वरे ॥

—स्कन्द पुराण

अतः इस तरह के योग में विघ्न पैदा करने वाली जगहों को छोड़कर जहां तक हो सके गुप्त स्थान में जहां समस्त इन्द्रियों की परितृप्ति हो और

---

* चूंकि मैंने कृष्ण नाम लिख दिया है, इसलिए सांप्रदायिकता का भाव लाकर किसी भी तरह कुसंस्कार का शिकार न बनिये। मैंने निम्नलिखित अर्थ से कृष्ण शब्द का प्रयोग किया है—जैसे—

कृषिर्भुवाचकः शब्दो नश्च निवृत्ति वाचकः
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्य विधीयते ॥ *अथवा*
कर्षयेत सर्व जगत कालरूपेण यः स कृष्णः *अथवा*
कृषिश्च परमानन्दो नश्च तददास्यकर्माणि इति कृष्णः। और एक बात का स्मरण रखिये—
"काली कहो, कृष्ण कहो, हानि किसी में कुछ भी नहीं।
चित्त को परिष्कार रख कर एक मन से पुकारो भाई।।

अंतःकरण प्रसन्न हो, उसे परिष्कार करके, सद्य गोबर से स्थान को साफ करके कुशासन, कम्बल के आसन, अथवा बाघ या हिरन के चर्मासन पर उत्तर अथवा पूर्व दिशा की ओर मुंह करके बैठकर फूल, चन्दन, धूप आदि की खुशबू से स्थान को महकाकर आनन्द मन और निश्चिंत चित्त से योगाभ्यास करें।

आसन साधना

स्थिर होकर सुखपूर्वक बैठने का नाम आसन है। योग शास्त्र में चौरासी लाख प्रकार के आसनों का उल्लेख है। उनमें से पद्मासन श्रेष्ठ है।

आसनं पद्मकमुक्तम

–गारुड़ 49

पद्मासन

वामोरूपरि दक्षिणं हि चरणं संस्थाप्य वामन्तथा,
दक्षोरूपरि तथैव वन्धनविधिं कृत्वा कराभ्यां दृढं॥
तत्पृष्ठे हृदये निधाय चिवुकं नासाग्रमालोकयेत,
एतद्व्याधिविकार नाशनकरं पद्मासनं प्रोच्यते–

–गोरक्ष संहिता

बाईं जांघ पर दायां पैर और दाईं जांघ पर बायां पैर रखकर दोनों हाथों को पीठ की ओर घुमाकर बायें हाथ से बायें पैर के अंगूठे और दायें हाथ से दायें पैर के अंगूठे को पकड़ कर और ठोड़ी को हृदय पर रखकर नाक के अग्र भाग पर दृष्टि डाल कर बैठने का नाम **पद्मासन** है।

पद्मासन दो तरह के हैं–जैसे **मुक्त पद्मासन** और **वद्ध पद्मासन**। उपर्युक्त नियम में बैठने को वद्ध पद्मासन कहते हैं और हाथों को पीठ

की ओर न घूमाकर पैर के अंगूठे को न पकड़ कर दोनों हाथों को जांघों के ऊपर चित करके बैठने का नाम **मुक्त पद्मासन** है।

पद्मासन करने से नींद, आलस और जड़ता आदि शारीरिक थकावट दूर होती है। पद्मासन के प्रभाव से कुण्डलिनी का चैतन्य होकर दिव्यज्ञान की प्राप्ति होती है। पद्मासन पर बैठकर जीभ के अग्रभाग को दांतों के मूल में धारण करने पर सब बीमारियों ठीक हो जाती हैं।

सिद्धासन

योनिस्थानकमघ्रिं मूलघटितं कृत्वा दृढ़ विन्यसेत,
मेढ़े पादमथैकमेव हृदये धृत्वा समं विग्रहम्,
स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचलादृश्या पश्यनभ्रुवोरन्तरं,
चैतंन्याख्य कपाटभेदजनकं सिद्धासनं प्रोच्यते।

–गोरक्ष संहिता।

योनि स्थान को बायें पैर के मूल से दबा कर दूसरे पैर को मेढ़, क्षेत्र में मजबूती से आवद्ध करते हुए ठोड़ी को हृदय (छाती) पर रखकर शरीर को समान भाव में रखिये। तत्पश्चात दोनों भौंओं के बीच दृष्टि रख कर अर्थात् शिवनेत्र होकर निश्चल रूप से बैठने को **सिद्धासन** कहते हैं।

सिद्धि प्राप्त करने के लिए सिद्धासन सहज और सरल आसन है। सिद्धासन का अभ्यास करने पर बहुत शीघ्र ही योग निष्पति होती है। उसका कारण यह है कि लिंग के मूल में जीव और कुण्डलिनी शक्ति है। सिद्धासन के द्वारा वायु का मार्ग सरल और सुगम बन जाता है। इससे स्नायु का विकास और पूरे शरीर में विद्युत के संचरण में सुविधा होती है। योगशास्त्र में बताया गया है कि सिद्धासन मुक्तिद्वार के किवाड़ को खोल देता है और सिद्धासन के द्वारा आनन्दकारिणी उन्मनीदशा प्राप्त होती है।

स्वस्तिकासन

जानुर्वोरन्तरे सम्यक कृत्वा पादतले उभे।
समकाय सुखासीनः स्वस्तिकं तत् प्रचक्षते ॥

जानु और उरु, इन दोनों के बीच में दोनों पैरों के निचले तलवों को पूरी तरह रखकर सीधे होकर सुखपूर्वक बैठने को **स्वस्तिकासन** कहते हैं। स्वस्तिकासन पर बैठकर वायु की साधना करने से साधक थोड़े ही समय में वायु में सिद्धि प्राप्त कर सकता है और उसे वायु साधनाजन्य व्यभिचार से भी किसी प्रकार की बीमारी नहीं होती है।

इन तीन तरह के आसनों के अतिरिक्त भद्रासन, उग्रासन, वीरासन, मण्डूकासन, कूर्मासन, कुकुट्टासन, गुप्तासन, योगासन, शवासन, सिंहासन और मयूरासन आदि अनेक आसन हैं। अनेक आसन करके समय को बरबाद करने की कोई आवश्यकता नहीं है। ऊपर बताये गये तीन आसनों में से जिसको जो सुविधाजनक लगे, उसी आसन का अवलंबन लेकर उसे योग साधना करनी चाहिए।

आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों में से अधिकांश आसन का नाम सुनने पर उसे हंसी में उड़ा देते हैं। वे कहते हैं कि इस तरह नहीं बैठने से क्या साधना नहीं होगी ? अपनी जैसी इच्छा होगी, उस तरह बैठकर साधना करेंगे, इतनी पेचीदगी में जाने की क्या जरूरत है ? इसमें जो गूढ़ तत्त्व है, उसे वे कैसे समझेंगे ? अलग-अलग तरह से बैठने पर अलग-अलग चिंतावृत्तियों में ऐकान्तिकता आती है। लोगों ने देखा होगा कि दुख, चिंता या नैराश्य की स्थिति में लोग गाल में हाथ रखकर बैठते हैं। उस समय उस तरह बैठना स्वाभाविक है और वह उस चिंता के उपयोगी है। सिद्ध योगीजन कहते हैं कि विभिन्न साधनाओं में भिन्न-भिन्न आसनों के साथ शरीर और मन के बीच विशेष संबंध है और एक बात है कि योगसाधना के समय लंबे समय तक एक भाव में बैठे रहना योगाभ्यास का एक मुख्य अंग है। परन्तु अपनी मर्जी से जैसा चाहे वैसा बैठने से वह संभव नहीं होता। इसलिए आसन की आवश्यकता है। योग अभ्यास के समय योगी की जो शारीरिक नई क्रिया कार्यकारी होती है

अथवा स्नायु का प्रवाह नये रूप और नये मार्ग में संचालित होता है, वह मेरुदण्ड के भीतर ही होता है। इसलिए मेरुदण्ड को जिस तरह और जिस हालत में रखने से वह क्रिया अच्छी तरह संपन्न होती है, केवल वही आसन प्रक्रिया में निर्धारित की गई है। मेरुदण्ड, छाती, गर्दन, मस्तक और पिन्जरास्थि आदि को जिस तरह रखा जाना चाहिए वह आसन पर बैठने की प्रक्रिया में निर्दिष्ट की गई है। आसन करने से उसके लिए और कुछ सीखने की आवश्यकता नहीं है। विशेष कर आसन सिद्धि ऐसी कोई कठिन बात नहीं है। यत्न के साथ मात्र कुछ दिनों का अभ्यास करने से उसमें सफलता मिल सकती है।

पूर्व बताये गये तीन तरह के आसनों में से जिस आसन पर बैठने से जिसको किसी प्रकार की तकलीफ न हो उसे उसी प्रकार के आसन का अभ्यास करना चाहिए। आसन पर बैठने से जिस समय किसी प्रकार की शारीरिक तकलीफ या कष्ट महसूस न होकर एक तरह के आनन्द का उद्रेक होगा, तब समझना कि आसन सिद्धि हुई है। आसन का अच्छी तरह अभ्यास हो जाने के बाद योग साधना आरम्भ करनी चाहिए।

तत्त्व विज्ञान

देव देव महेश्वर ही एक मात्र निराकार निरंजन हैं। उनसे आकाश की उत्पत्ति होती है। उसके बाद उस आकाश से वायु की उत्पत्ति हुई। वायु से तेज, तेज से पानी और पानी से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। ये पंच महाभूत, पंचतत्त्व के नाम से जाने जाते हैं। उस पंचतत्त्व से ब्रह्माण्ड परिवर्तित और उसका विलय होता है। फिर उसी से ही पुनः उत्पन्न होता है–

पंचतत्त्वाद भवेत सृष्टिस्तत्त्वे तत्त्वं विलीयते,
पंचतत्त्वं परं तत्त्वं तत्त्वातीतं निरंजनम्।

–ब्रहमज्ञान तंत्र

पंचतत्त्व से ही ब्रह्माण्ड मण्डल की सृष्टि हुई है और उस तत्त्व में ही उसका लय होगा। पंचतत्त्व के बाद जो परम तत्त्व है, वह है तत्त्वातीत निरंजन। मानव शरीर पंचतत्त्व से उत्पन्न हुआ है। मृदा से अस्थि, मांस, नाखून, त्वचा और लोम, इन पांच चीजों की उत्पत्ति हुई है। पानी से शुक्र, रक्त, मज्जा, मल और मूत्र, वायु से धारण, चालन, क्षेपण संकोचन और प्रसारण, अग्नि से नींद, भूख, प्यास, थकावट और आलस्य तथा आकाश से काम, क्रोध लोभ, मोह और लज्जा उत्पन्न हुई है।

आकाश का गुण शब्द, वायु का गुण स्पर्श, अग्नि का गुण रूप, जल का गुण रस और पृथ्वी का गुण गंध है। इनमें से आकाश सिर्फ शब्द, एक गुण विशेष है। वायु में शब्द और स्पर्श, दो गुण विशेष हैं, अग्नि में शब्द, स्पर्श और रूप, ये तीन गुण हैं, जल में शब्द, स्पर्श, रूप और रस, ये चार गुण विशेष हैं तथा पृथ्वी शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध, इन पांच गुणों से युक्त है। आकाश के गुण को कान से, वायु के गुण को त्वचा से, अग्नि के गुण को नेत्र से, जल के गुण को जीभ से और पृथ्वी के गुण को नाक से ग्रहण किया जाता है–

पंचतत्त्वमये देहे पंचतत्त्वानि सुन्दरि,
सूक्ष्मरूपेण वर्त्तन्ते ज्ञायन्ते तत्त्वयोगिभिः

–पवनविजय स्वरोदय

पंच तत्त्व से पूर्ण इस शरीर में पंच तत्त्व सूक्ष्म रूप में है। तत्त्वविद योगीजन ये बातें जानते हैं। मलद्वार क्षेत्र में मूलाधार चक्र पृथ्वी तत्त्व का स्थान है। लिंग के मूल में स्वाधिष्ठान चक्र जल तत्त्व का स्थान है। नाभि के मूल में मणिपुर चक्र अग्नि तत्त्व का स्थान है। हृदय क्षेत्र में अनाहत चक्र वायु तत्त्व का स्थान और कण्ठ क्षेत्र में विशुद्ध चक्र आकाश तत्त्व का स्थान है। सूर्योदय के समय से शुरू करके क्रमशः ढाई घड़ी के हिसाब से एक-एक नासापुट में प्राणवायु प्रवाहित होती है। बायें या दायें नासापुट में श्वास के बहते समय यथाक्रम से पंचतत्त्व का उदय होता है। तत्त्वविद योगियों को उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति होती है।

तत्त्व लक्षण

स्वरशास्त्र में पंचतत्त्व के आठ लक्षण बताये गये हैं। पहले में तत्त्व संख्या, दूसरे में श्वास संधि, तीसरे में स्वर चिह्न, चौथे में स्थान, पांचवें में तत्त्व का वर्ण, छठे में परिमाण, सातवें में स्वाद और आठवें में गति है।

मध्ये पृथ्वी ह्यधश्चापश्चोर्द्ध वहति चानलः।
तिर्यग् वायु प्रचारश्च नभो वहति संक्रमे ॥

–स्वरोदय शास्त्र

यदि श्वास प्रश्वास नासापुट के बीच में प्रवाहित होता है तो समझना होगा कि पृथ्वी तत्त्व का उदय हुआ है। उसी प्रकार यदि नासपुट के अधोभाग में निश्वास वहता है तो जल तत्त्व का, उर्ध्व भाग में वहे तो अग्नि तत्त्व का, पार्श्व में वहे तो वायु तत्त्व का तथा नासारन्ध्र में सब जगहों को छूकर काटकर निश्वास वायु चले, तो समझना होगा कि आकाश तत्त्व का उदय हुआ है।

माहेय मधुरं स्वादु कषायं जलमेव च।
तिक्तं तेजो वायुरम्ल आकाशः कटुकस्तथा ॥

–स्वरोदय शास्त्र

यदि मुंह में मीठे स्वाद की अनुभूति होती है, तो पृथ्वी तत्त्व का, कषैले स्वाद में जल तत्त्व का, तिक्त स्वाद में अग्नि तत्त्व का, अम्ल स्वाद में वायु तत्त्व का और कटु स्वाद में आकाश तत्त्व का उदय हुआ समझना होगा।

अष्टांगुलं वहेदवायुरनलश्चतुरंगुलम।
द्वादशागुलं माहेयं षोड़शागुलं वारुणम ॥

–स्वरोदय शास्त्र

जिस समय वायु तत्त्व का उदय होता है, उस समय निश्वास वायु का परिमाण आठ अंगुल होता है। अग्नि तत्त्व के उदय में चार अंगुल, पृथ्वी तत्त्व के उदय में बारह अंगुल, जल तत्त्व के उदय में सोलह अंगुल और आकाश तत्त्व के उदय में श्वास वायु का परिमाण बीस अंगुल होता है।

आपः श्वेताः क्षितिः पीता रक्तवर्णो हुताशनः
मारुतो नीलजीमूत आकाशो भूरिवर्णकः।

–स्वरोदय शास्त्र

पृथ्वी तत्त्व का रंग पीला, जल तत्त्व का सफेद, अग्नि तत्त्व का लाल, वायु तत्त्व का नीले बादल के समान श्यामल और आकाश तत्त्व के रंग अनेक प्रकार के होते हैं।

चतुरस्रं चार्द्धचन्द्रं त्रिकोणं वर्त्तुलं स्मृतम्,
विन्दुभिस्तु नभो ज्ञेयमाकारैस्तत्त्वलक्षणम् ॥

–स्वरोदय शास्त्र

दर्पण पर सांस छोड़ने पर जो भाप निकलती है, यदि उसका आकार चौकोना होता है, तो पृथ्वी तत्त्व का, अर्ध चन्द्र की तरह हो तो जल तत्त्व का, त्रिकोणाकार हो तो अग्नि तत्त्व का, गोलाकार हो तो वायु तत्त्व का और बूंद की तरह हो तो समझना होगा कि आकाश तत्त्व का उदय हुआ है।

मनुष्य के शरीर में जिस समय जिस नाक में सांस चलती है, उस समय क्रमानुसार उपर्युक्त पांच तत्त्वों का उदय होता है। किस समय किस तत्त्व का उदय होता है और तत्त्व के गुण आदि को समझ कर तत्त्व के अनुकूल यात्रा में जाने, मुकद्दमा और व्यापार आदि किसी भी कार्य में हाथ देने से वह सिद्ध होगा। चूंकि हमें ईश्वर प्रदत्त ऐसे सहज उपायों की जानकारी नहीं है, इसलिए हमारा काम बिगड़ता है, हमारी आशाओं पर पानी फिर जाता है तथा हमें मानसिक यंत्रणा भोगनी पड़ती है। किस तत्त्व का उदय होने पर किस कार्य में हाथ देने से उससे अच्छा फल मिलता है, उस पर प्रकाश डालना इस ग्रंथ का प्रतिपाद्य विषय नहीं है। इसलिए अतिशयोक्ति के डर से उसे नहीं लिखा गया है।

इस पंचतत्त्व की साधना करने से साधना संबंधी सभी कार्यों में सिद्धि प्राप्त होती है और साधकगण निरोग और दीर्घायु होते हैं। मोटे तौर पर तत्त्व साधना में सफल होने पर शारीरिक, वैषयिक और पारमार्थिक, समस्त कार्यों में सुख और सिद्धि प्राप्त होती है।

तत्त्व साधना

दोनों हाथों के दोनों अगूठों से दोनों कानों, दोनों मध्यम उंगलियों से दोनों तरफ से नाक, दोनों अनामिका उंगलियों से मुंह और दोनों तर्जनी उंगलियों से दोनों आंखों को बन्द कर देने से यदि पीला रंग दिखाई दे तो पृथ्वी तत्त्व, सफेद रंग दिखाई दे तो जल तत्त्व, लालरंग दिखाई दे तो अग्नि तत्त्व, हरा रंग दिखाई दे तो वायु तत्त्व और बून्द के रूप में अनेक रंग दिखाई दें तो समझना होगा कि आकाशतत्त्व का उदय हुआ है।

रात के एक प्रहर रहते दोनों पैरों को पीछे की ओर मोड़ कर उनके ऊपर दब कर मिट्टी पर बैठें, बाद में दोनों हाथों को उल्टा कर दोनों जांधों पर रखिये अर्थात् जांघों पर दोनों हाथों को चित करके रखिये जिससे कि उंगलियों का अगला हिस्सा पेट की ओर रहे। इस तरह बैठ कर नाक के अग्रभाग में नजर डाल कर और श्वास-प्रश्वास पर ध्यान देकर एक मन से क्रमानुसार पंच तत्त्व का ध्यान कीजिये, जैसे,

पृथ्वी तत्त्व का ध्यान

लं बीजां धरणीं ध्यायेत् चतुरस्रां सुपिताभाम,
सुगन्धां स्वर्णवर्णत्वमारोग्यं देहलाघवम्।

लं बीज पृथ्वी तत्त्व का ध्यान मंत्र है। इस बीज का उच्चारण करके इस तरह पृथ्वी का ध्यान करना होगा। जैसे इस तत्त्व का रंग अच्छे हरड़ की तरह है। यह हिरण्य के समान प्रभायुक्त है, यह चौकोना तथा खुशबूदार है। इसमें शरीर को आरोग्य और हल्का करने की शक्ति है।

जल तत्त्व का ध्यान

वं वीज वारुणं ध्यायेदर्द्धचन्द्रं शशिप्रभम्।
क्षुत्पिपासासहिष्णुत्वं जलमध्येषु मज्जनम्।

वं बीज जल तत्त्व का ध्यान मंत्र है। इस बीज का उच्चारण करके जल तत्त्व का ध्यान कीजिये। जैसे-इस तत्त्व का आकार अर्द्धचन्द्राकार है। यह चन्द्र की तरह प्रभायुक्त है। इसमें भूख और प्यास को सहन करने और पानी में डूब कर रहने की शक्ति है।

अग्नि तत्त्व का ध्यान

रं वीजं शिखिनं ध्यायेत त्रिकोणमरुणप्रभम।
वह्वन्नपानभोक्तृत्वमातपग्नि सहिष्णुता ॥

रं बीच अग्नि तत्त्व का ध्यान मंत्र है। इस वीज का उच्चारण करके इस तरह ध्यान करना होगा। यह तत्त्व तिकोना हैं। इसका रंग अरुण के समान है। इसमें काफी अन्न खाने, पीने और धूप तथा आग के ताप को सहन करने की शक्ति है।

वायु तत्त्व का ध्यान

यं वीजं पवनं ध्यायेद्वर्तुलं श्यामलप्रभम।
आकाशगमनाद्यचं पक्षिवद गमनं तथा।

यं बीज वायु तत्त्व का ध्यान मंत्र है। इस बीज का उच्चारण करके ध्यान करना होगा। यह तत्त्व गोलाकर है। इसका रंग हरा तथा इसमें पक्षियों के समान आकाश मार्ग में आने जाने की शक्ति है।

आकाश तत्त्व का ध्यान

हं बीजं गगनं ध्यायेत निराकारं वहुप्रभम्।
ज्ञानं त्रिकाल विषयमैश्वर्यमणिमादिकम ॥

हं बीज आकाश तत्त्व का ध्यान मंत्र है। इस बीज का उच्चारण करके ध्यान करना होगा। यह तत्त्व निराकार तथा अनेक रंगों वाला है। इसमें भूत, भविष्य, वर्तमान अर्थात त्रिकालज्ञ बनने की शक्ति है और यह अणिमा आदि ऐश्वर्य से युक्त है।

प्रतिदिन रात के एक प्रहर रहते मिट्टी पर बैठकर सुबह तक इस तरह ध्यान करने से छः महीने में अवश्य ही तत्त्व में सिद्धि होगी। उस समय दिनरात में अपने शरीर में किस समय किस तत्त्व का उदय हो रहा है, वह किसी भी समय आसानी से दिखाई देगा। इससे शरीर स्वस्थ रहेगा और सांसारिक और वैषयिक कार्य में अच्छा फल मिलेगा। तत्त्वसिद्धि होने से लय योग तथा योग की दूसरी साधनाएं बहुत ही आसान हो जाती हैं।

आकाश तत्त्व के उदय में सांसारिक कार्य न करके योगाभ्यास करना चाहिए।

तत्त्व साधना के समय अन्य किसी भी प्रकार की योग साधना की जा सकती है। अतः तत्त्व साधना के समय केवल बैठे न रह कर कोई भी योग साधना करनी चाहिए।

तस्य रूपं गतिः स्वादो मण्डलं लक्षणन्त्विदम।
यो वेत्ति वै नरो लोके स तु शुद्रोऽपि योगवित ॥

–पवनविजय स्वरोदय

इस तरह जो व्यक्ति तत्त्वों के रूप, गति, स्वाद, मण्डल, और लक्षणों से अवगत होता है, शूद्र होने पर भी वह योगी कहलाता है।

नाड़ी शोधन

शरीर की नाड़ियाँ मल आदि से दूषित रहती हैं। नाड़ी शोधन नहीं करने से वायुधारण नहीं किया जा सकता। इसलिए योग साधना का आरंभ करने से पहले नाड़ी शोधन करना होता है। हठयोग में षटकर्म के माध्यम से शरीर शोधन की व्यवस्था है–जैसे

"धौतिर्वस्तिस्तथा नेति नौलिकिस्त्राटकन्तथा,
कपालभातिश्चैतानि षटकर्माणि समाचरेत।"

–गोरक्ष संहिता–चतुर्थ अः

धौति, वस्ति, नेति, नौलिकी, त्राटक और कपालभाति, इन छः तरह की बाह्यक्रियाओं के द्वारा शरीर शोधन की व्यवस्था है। परन्तु वह सब गृहत्यागी साधु-संन्यासियों को शोभा देते हैं। सर्व साधारण के लिए वह बड़ा कठिन है। विशेषकर यदि वह सब ठीक तरह नहीं किया जायेगा, तो उससे तरह-तरह के दुःसाध्य रोग होने की संभावना रहती है। परमयोगी शंकराचार्य ने अन्तर प्रयोग के द्वारा नाड़ी शोधन की जो व्यवस्था बताई है, वह यहाँ लिखी गई है। इसे सभी आसानी से कर सकते हैं।

पहले आसन का अभ्यास करना होता है। आसनसिद्धि होने के बाद नाड़ी शोधन करना होता है।

स्थिर होकर सुखासन पर बैठकर अगूंठे से दायें नासापुट को सामान्य दबाकर बाईं नाक से यथाशक्ति सांस लीजिये और जरा भी देर किये बिना अनामिका और कनिष्ठ उँगलियों से बाईं नाक को बन्द करके दाईं नाक से सांस छोड़िये। फिर दाईं नाक से सांस लेकर यथाशक्ति बाईं नाक से उस सांस का रेचन कीजिए। परन्तु सांस लेना पूरा होने पर उसका रेचन करने में जरा-सी देर नहीं करनी चाहिये। पहले पहल अभ्यास करते समय प्रत्येक बार इस क्रम में एक-एक करके तीन बार करना चाहिए। उसके बाद जब तीन बार ठीक-ठीक अभ्यास हो जाए तो फिर पांच बार और बाद में सात बार इस प्रकार बढ़ाना चाहिए।

दिन रात चौबीस घंटे के भीतर इस तरह तड़के सुबह एक बार, दोपहर को एक बार, शाम के समय एक बार और रात को एक बार करके इस तरह चार बार यह क्रिया करनी होगी। प्रतिदिन नियमित रूप से चार बार यत्न के साथ इस क्रिया का अभ्यास करने से एक माह के भीतर सिद्धि होगी। किसी-किसी को डेढ़ या दो माह लग सकते हैं।

नाड़ी शोधन में सिद्धि होने पर शरीर बहुत हल्का महसूस होता है। इससे आलस और जड़ता दूर हो जाती है। बीच-बीच में मन खुशी से भर जाता है और समय-समय पर नाक खुशबू से भर जाती है। यदि ये सब लक्षण प्रकट होंगे तो समझना होगा कि नाड़ी शोधन में सिद्धि हुई है। उस समय बाद में बताई गई कोई भी साधना कर सकते हैं।

मन को स्थिर करने के उपाय

यदि मन स्थिर नहीं होता, तो कोई भी कार्य नहीं होगा। यम, नियम, आसन, प्राणायाम भूचरी, खेचरी आदि मुद्राओं का जितना भी अनुष्ठान है,

उस सब का उद्देश्य चित्तवृत्तियों का निरोध करते हुए मन को जीतना है। मतवाले हाथी की तरह प्रमत्त मन को वश में करना बड़ा कठिन है। फिर भी उसके उपाय हैं।

जिसे जिस आसन का अभ्यास है, उसे उस आसन पर बैठ कर माथा, सिर, पीठ और पेट को समान रूप में रखकर अपने शरीर को सीधा करके बैठना होगा। बाद में दृष्टि को नाभिमण्डल पर रखकर पलक झपकाये बिना कुछ समय बैठे रहना होगा। दृष्टि और मन को नाभिस्थान पर रखने से निश्वास धीरे-धीरे जितना छोटा होगा, मन भी उतना ही स्थिर होता जायेगा। इस तरह नाभि पर दृष्टि और मन को रखकर बैठने से कुछ समय बाद मन स्थिर हो जायेगा। मन को स्थिर करने का ऐसा सहज उपाय और नहीं है। और यह भी है कि–

"यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनात।
मनसो धारणंचैव धारणा सा परा मता ॥

–त्रिपंचांग योग।

यदि इष्टदेवता के चिंतन या किसी ध्यान-धारणा में मन को लगाते समय उसके विषय में विक्षिप्त होने के कारण चित्त स्थिर नहीं रह सके, तो मन जिस विषय की ओर जायेगा उस विषय को आत्मानुभव से समरस महसूस कर सर्वत्र इष्टदेवता की उपस्थिति अथवा सब कुछ ब्रह्ममय सोचकर चित्त की धारणा कीजिये। इस तरह करने से विषय और इष्टदेवता अथवा विषय या ब्रह्म अभिन्न या एक जैसे लगेंगे। इससे चित्त की धारणा में वृद्धि होकर बहुत ही शीघ्र सफलता मिलेगी।

इस उपाय के अतिरिक्त चित्त को जीतने का सहज और सरल उपाय और कुछ नहीं है। जो व्यक्ति अपने आपको और जगत की समस्त वस्तुओं को इष्ट देवता से अभिन्न सोचता है और उसी को अद्वितीय ब्रह्म स्वरूप मानता है, मुक्ति उसके हाथ की मुट्ठी में है। इन दो उपायों के अतिरिक्त

का अभ्यास करने से मन आसानी से स्थिर होता है और तरह-तरह की शक्ति प्राप्त होती है। इसका अभ्यास करना सहज भी है, जैसे–

"निमेषोन्मेषकं त्यक्त्वा सूक्ष्मलक्ष्यं निरीक्षयेत।
यावदश्रुनिपातंच त्राटकं प्रोच्यते बुधैः ॥

स्थिर होकर सुखासन पर बैठकर धातु अथवा पत्थर से बनी किसी सूक्ष्म वस्तु पर लक्ष्य रखकर अपलक दृष्टि से देखते रहिये। इस तरह देखते समय शरीर नहीं हिलेगा और मन किसी भी तरह विचलित नहीं होगा। इस तरह जब तक आँखों से पानी नहीं गिरेगा, तब तक देखते रहिये। अभ्यास करने से इस तरह काफी देर तक नजर गड़ाये रखने की शक्ति पैदा होगी।

दोनों भौंओं के बीच स्थित विन्दु के केन्द्र में दृष्टि एकाग्र रखकर जब तक आँखों में पानी न आये, तब तक वहाँ नजर टिकाने से धीरे-धीरे नजर उस स्थान पर जम जाएगी। इस तरह होने से त्राटक सिद्ध होता है। त्राटक सिद्ध होने पर नेत्र दोष दूर होता है, नींद और तन्द्रा अपने वश में आती है, आंखो से रोशनी निकलने की प्रक्रिया शुद्ध होती है। पाश्चात्य विज्ञान में जो मैसमेरिजम है वह त्राटक योग का ही सामान्य आभास मात्र है। त्राटक योग मे सिद्धि प्राप्त करने पर बहुत ही आसानी से मैसमेराइज किया जा सकता है। परन्तु पाश्चात्य मैसमेरिजम और त्राटक योग में काफी अन्तर है। क्योंकि मेसमेरिजम (Mesmerism) करने वाले को पता नहीं चलता कि किससें क्या होता है। परन्तु त्राटक योगी सम्मोहित व्यक्ति की और अपने बारे में पूरी जानकारी रखता है। त्राटक सिद्ध होने पर हिंस्र जन्तुओं तक को वश में किया जा सकता है।

एक बार मैं अपने योग शिक्षादाता महापुरुष के साथ जंगल में घूम रहा था। अचानक एक बाघ हमारे सामने आ गया। बाघ के हमले की आशंका से मैं घबरा गया। महापुरुष ने मुझे पीछे करके अपनी दोनों आँखों को बाघ की दोनों आँखों के सामने समान सूत्रपात के क्रम में रख कर नेत्ररश्मि का संयम किया। उससे बाघ में एक पग भी आगे बढ़ाने की

क्षमता नहीं रही। वह पुतले की तरह खड़े होकर पूंछ हिलाने लगा। महापुरुष ने जब तक नजरें नहीं हटाईं, बाघ तब तक स्थिर होकर खड़ा रहा। महापुरुष ने जैसे ही बाघ की नजरों से अपनी नजरें हटाईं, बाघ तेजी से जंगल की ओर भाग गया। उसने हमारी ओर लौट कर नहीं देखा। बाद में महापुरुष ने त्राटक योग की शक्ति के संबंध में मुझे उपदेश दिया। त्राटक योग का अभ्यास कर सकने से सहज ही लोगों को निद्रित, वशीभूत और इच्छानुसार किसी भी काम में लगाया जा सकता है।

कुण्डलिनी चैतन्य के कौशल

कुण्डलिनी तत्त्व के वर्णन के समय बताया गया है कि कुण्डलिनी का चैतन्य नहीं होने से जप-तप और साधना तथा भजन सब व्यर्थ है। कुण्डलिनी के अचैतन्य रहने से मनुष्य में कभी भी सच्चे ज्ञान का उद्रेक नहीं होगा। मानव जीवन का कार्य और योग सिद्धि का मुख्य उपाय कुण्डलिनी का चैतन्य करना है। जितनी साधनाएं हैं, वह सब कुण्डलिनी का चैतन्य करने के लिये है। इसलिए सब से पहले यत्न के साथ कुण्डलिनी का चैतन्य करना चाहिए। कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार में स्वयंभू लिंग को साढ़े तीन कुण्डल मार कर सांपिन के आकार में निद्रिता है। जब तक वह निद्रिता रहती है, मनुष्य जानवरों की तरह अज्ञान से आच्छन्न रहता है। तब तक सौ करोड़ों योगाभ्यास से भी ज्ञान नहीं होता। जिस तरह चाबी से ताला खोलकर द्वार खोला जाता है, ठीक वैसे ही कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर मूर्द्धा भाग से सहस्रार पद्म तक लाने से ब्रह्मद्वार का भेद होकर ब्रह्मरन्ध्र का मार्ग खुल जाता है। इससे ही मनुष्य को दिव्यज्ञान की प्राप्ति होती है।

बायें पैर की एड़ी से योनिक्षेत्र को जारे से दबाकर दायें पैर को सीधा लंबा करके बैठें। उसके बाद उस दायें पैर को दोनों हाथों से जोर से पकड़ कर और ठोड़ी को कंठ पर रखकर कुम्भक के द्वारा वायु का रोध कीजिये।

बाद में प्राणायाम प्रक्रिया के क्रम से धीरे-धीरे इस वायु का रेचन कीजिये। जिस प्रकार लाठी से आहत सांप सीधा हो जाता है, ठीक वैसे ही इस क्रिया के अनुष्ठान से कुण्डलिनी शक्ति सीधी हो जाती है।

मुट्ठी भर लंबे, चार अंगुल चौड़े कोमल और सफेद झीने कपड़े से नाभि को घेर कर कमर के धागे से उसे बांध दें। बाद में शरीर पर भस्म का लेप लगाकर घर में गोपेनीय स्थान में सिद्धासन पर बैठकर दोनों नासापुटों से प्राण वायु को खींचकर उसे बलपूर्वक अपान वायु से जोड़ें और जब तक वायु सुषुम्ना नाड़ी में जाकर प्रकाशित नहीं होगी, तब तक मलद्वार को धीरे-धीरे अश्विनी मुद्रा के द्वारा आकुंचित और प्रसारित कीजिये। इस तरह श्वास को रोककर कुम्भक योग के द्वारा वायु का रोध करने से कुलकुण्डलिनी शक्ति जागृत हो कर सुषुम्ना के रास्ते से ऊर्ध्व की ओर जाएगी।

इस प्रक्रिया के द्वारा कुण्डलिनी जागृत होने पर योनिमुद्रा के द्वारा उसे उठाना होता है। वह मूलाधार से क्रमानुसार समस्त चक्रों को पार कर सहस्रदल पद्म में उठकर परमशिव के साथ जुड़ने पर और उसके साथ एकाकार हो जाने पर उनके सामरस्य से उत्पन्न अमृत से शरीर सराबोर हो जाता है। उस समय साधक समस्त जगत को भुलाकर और बाह्यज्ञान रहित होकर जिस अनिर्वचनीय और अपार आनन्द में निमग्न होता है, उसे स्वयं अनुभव करने के अतिरिक्त लेखनी की सहायता से व्यक्त नहीं किया जा सकता। नारी के संसर्ग से शरीर और मन में जो अपूर्व आनन्द की अनुभूति होती है, इसमें उससे करोड़ों गुना अधिक आनन्द प्राप्त होता है। उस अव्यक्त भाव को व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं है।

कुण्डलिनी शक्ति को किस तरह उठाना होता है, उसे समझाकर हाथों हाथ प्रत्यक्ष नहीं दिखा देने से कोई भी समझ नहीं सकता। इसलिए उस गुप्त बात को अकारण ही सर्वसाधारण में प्रकाश करना बेकार है।* साधक को केवल कुण्डलिनी शक्ति के चैतन्य के लिए उपुर्युक्त क्रिया का अनुष्ठान करना चाहिए। कुण्डलिनी का चैतन्य करने का एक और **सहज उपाय** है।

---

* कुण्डलिनी शक्ति को किस तरह उठाना होता है, वह मेरे द्वारा प्रणीत 'ज्ञानीगुरु' ग्रंथ में दिया गया है।

वह इस प्रकार है—सिद्धासन पर बैठकर ठोड़ी को हृदय पर जोर से दबाकर रखिये। बाद में दोनों हाथों को संपुटित करके दोनों हाथों की कोहनियों (अर्थात् भुजा का मध्य भाग) को हृदय पर मजबूती से रखकर नाभी क्षेत्र में वायु धारंण कीजिये और मलद्वार को अश्विनी मुद्रा के द्वारा संकुचित और प्रसारित करते रहिये। प्रतिदिन इस तरह की क्रिया का अभ्यास करने से कुण्डलिनी का शीघ्र चैतन्य होगा।

जब कुन्डलिनी का चैतन्य होकर वह सुषुम्मा नाड़ी के भीतर प्रवेश करेगी, साधक स्पष्ट रूप से उसे महसूस कर सकेगा। उस समय पीठ में मेरुदण्ड के भीतर चींटी के चलने की तरह सुरसुराहट होने लगती है।

लययोग साधना

जिसके पास समय कम है और जो योग के नियमों का पालन करने में अक्षम है, यदि वह पहले बताई गई प्रक्रिया से कुन्डलिनी का चैतन्य करके नीचे बताये गये किसी भी लययोग की साधना करेगा, तो चित्त का लय होगा। बहुलता के डर से मैं इसे विस्तार से नहीं लिख सका। फिर भी लय के जो कुछ संकेत यहां दिए गए हैं, इनमें से किसी भी एक प्रकार का अनुष्ठान करके मनोलय कीजिये। यह बहुत ही सहज, अल्प अभ्यास से होने वाला तथा शीघ्र फल देने वाला है।

1. मूलाधार चक्र भगाकृति है—इस चक्र में स्वयभू लिंग की तेजो स्वरूप कुण्डलिनी शक्ति साढ़े तीन कुण्डल में लपेटे हुए रहती है। उस ज्योतिर्मयी शक्ति का जीव के रूप में ध्यान करने पर चित्त का लय और मुक्ति होती है।

2. स्वाधिष्ठान चक्र में प्रबाल के अंकुर के समान उड्डीयान नामक पीठ पर कुण्डलिनी शक्ति का चिंतन करने पर मन का लय होता है और जगत को आकर्षित करने की शक्ति पैदा होती है।

3. मणिपुर चक्र में पंच आवर्तों से युक्त विद्युतूरूपणि चित स्वरूपा

भुजंगी का ध्यान करने से अवश्य ही सर्वसिद्धि होगी।

4. अनाहत चक्र में ज्योतिःस्वरूप हंस का ध्यान करने से चित्त का लय होता है और जगत साधक के वशीभूत होता है।

5. विशुद्ध चक्र में निर्मल ज्योति का ध्यान करने से सर्वसिद्धि होती है।

6. तालु के मूल में ललना चक्र को घंटिका स्थान और दसम द्वार का मार्ग कहते हैं। उस चक्र में ध्यान करने से मुक्ति होती है।

7. आज्ञाचक्र में गोलाकार ज्योतिः का ध्यान करने से मोक्ष पद की प्राप्ति होती है।

8. ब्रह्मरन्ध्र में अष्टम चक्र पर स्थित सुई की नोक के समान धूम्राकार जालन्धर नामक स्थान में ध्यान के द्वारा चित्त का लय करने से निर्वाण पद प्राप्त होता है।

9. सोमचक्र में पूर्ण सच्चिदरूपा अर्द्धशक्ति का ध्यान करने से मन का लय और मोक्षपद प्राप्त होता है।

इस नवचक्र में एक-एक चक्र का ध्यान करने वाले साधक की सिद्धि और मुक्ति उसकी हाथ की मुट्ठी में है। क्योंकि वह अपने ज्ञान नेत्र से दो धनुष के बीच कदम्ब के समान गोलाकार ब्रह्मलोक का दर्शन करता है और अन्त में ब्रह्मलोक में जाता है। कृष्ण दैपायनादि ऋषिगण नवचक्र में लययोग की साधना करके यमदण्ड का खण्डन करते हुए ब्रह्मलोक में गये थे।

जैसे :

कृष्णदैपायनादयैस्तु साधितो लयसंज्ञितः।
नवस्वेव हि चक्रेषू लयं कृत्वा महात्मभिः ॥

योगशास्त्र

अर्थात वेदव्यास आदि महात्माओं ने नवचक्र में मनोलय करके लययोग की साधना की थी। इसके अतिरिक्त शास्त्रों में अनेक लक्ष्ययोग और लययोग के संकेत बताये गये हैं। जैसे

10. परम आनन्द के साथ अपने हृदय के भीतर इष्टदेवता की मूर्ति का ध्यान करने से साधक आत्मलीन होता है।

11. निर्जन स्थान में शव की तरह चित लेटकर एकाग्र चित्त से अपने दायें पैर के अंगूठे पर दृष्टि को रखकर ध्यान करने से चित्त का लय शीघ्र होता है। यह चित्त का लय करने का मुख्य और सहज उपाय है।

चित होकर सोने पर अनेक लोग खर्राटे लेते हैं और मानो उन पर जैसे भूत सवार हो जाता हो। उस समय ऐसा लगता है मानो कोई छाती पर बैठा हो। शरीर भारी-भारी लगता है। डर के मारे चित्कार करने जाये तो स्पष्ट आवाज न निकल कर गें गें की आवाज निकलती है। इससे ही लय योग का आभास मिलता है।

12. जीभ को तालु के मूल में जोड़कर ऊपर की ओर करके रखिये। इससे चित्त एकाग्र होकर परमपद में लीन होता है।

13. नाक के ऊपर दृष्टि को स्थिर रखकर बारह अगुंल पीत वर्ण अथवा आठ अगुंल रक्तवर्ण वाली ज्योतिः का ध्यान करने से चित्त का लय और वायु स्थिर होता है।

14. ललाट के ऊपर शरच्चन्द्र के समान श्वतेवर्ण ज्योतिः का ध्यान करने से मन का लय और आयु में वृद्धि होती है।

15. शरीर के भीतर निर्वात और निस्पन्द दीपकली की तरह अष्टांगुल ज्योति का ध्यान करने से जीव मुक्त होता है।

16. दोनों भौंओं के बीच सूर्य के समान तेजः पुंज का ध्यान करने से ईश्वर के दर्शन प्राप्त होते हैं।

इनमें से जिसे जो क्रिया सुविधाजनक लगेगी, वह उसी प्रकार मनोलय करेगा।

शब्द शक्ति और नाद साधना

शब्द ही ब्रह्म है। सृष्टि से पहले प्रकृति और पुरुष मूर्ति से रहित केवल एक ज्योतिःमात्र थी। सृष्टि के आरंभ काल में वह सर्वव्यापक ज्योतिः आत्मा अभेद रूप में नाद और विन्दु के रूप में प्रकाशित हुई। विन्दु

परमशिव और कुण्डलिनी निर्वाणकला रूपी भगवती त्रिपुरा देवी स्वयं नादरूपा है। जैसे–

आसीद्विन्दुस्ततो नादो नादच्छक्तिः समुद्भवा।
नादरूपा महेशानि चिद्रुपा परमा कला ॥

–वायवी संहिता

आदि प्रकृति देवी का नाम पराप्रकृति है। इसलिए पराप्रकृति आद्याशक्ति ही नादरूपा है। इस प्रकृति से पंचमहाभूत की सृष्टि हुई है। पहले आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश का गुण शब्द है। इसलिए सृष्टि से पहले शब्द उत्पन्न हुआ है। शब्द से क्रमशः दूसरे महाभूत और यह चराचर विश्व उत्पन्न हुआ। इसलिए शास्त्रकारों ने उल्लेख किया है "नादात्मक जगत"। तब तो देखिये, शब्द में कितनी शक्ति है। योगशक्ति संपन्न ऋषियों के हृदय में शब्द जुड़कर और मंत्र के रूप में उठकर एक अलौकिक शक्ति युक्त होकर वीर्यशाली हुआ है। शब्द से क्या नहीं होता ? कोई अपने हम उम्र लोगों के साथ खेलता है और इस दौरान यदि पास से कहीं से रोने की आवाज आती है तो वह कदापि स्थिर होकर मन को मौजों में मशगुल नहीं रख सकेगा। यदि मैं एक व्यक्ति से प्रेम करता हूँ और वह कातर होकर मेरे प्रति उपयुक्त शब्दों का प्रयोग करके मेरा स्तव करता है, तो मेरा कठोर हृदय उससे पिघल जायेगा। शब्दों से ही सभी एक दूसरे से जुड़े हुए है। कोयल का कुहुतान और भौंरे का गुंजन कान में पड़ने पर मन में एक अनोखी आकांक्षा जागती है, कितने जन्मों की पुरानी कहानियाँ मन में आती हैं। फिर बादलों की घना गर्जना और मोर की केका ध्वनि सुनने पर मन में दूसरे प्रकार का भाव जागता है। मन कल्पना में कितनी अमूर्त्त प्रतिमाओं की मूर्ति बनाता है। शब्द ही संगीत का प्राण है। इसलिए गाना सुनकर लोग आत्मविभोर और मुग्ध हो जाते हैं। शब्द से जीव मोहित होता है। शब्द से विश्वब्रह्माण्ड संगठित है। हरि और हर भी नाद से पृथक नहीं है।

न नादेनं विना ज्ञानं न नादेन विना शिवः।
नाद रूपं पर ज्योतिर्नादरूपी परो हरिः ॥

नाद का अन्त नहीं है। नाद असीम और अपार है। इसलिए हिन्दू

शास्त्रकारों ने कहा है–

नादाद्धेस्तु परं पारं न जानाति सरस्वती।
अद्यापि मज्जनभयात तुम्बं वहति वक्षसि ॥

बात बिल्कुल सही है। नाद के खोजकर्त्ता तथा तत्त्वज्ञानी योगी ही इस बात की सच्चाई को समझ सकता है। जब सरस्वती को भी नाद रूपी समुद्र के दूसरे पार का ज्ञान नहीं है, तो मेरे जैसे सामान्य व्यक्ति के लिए नाद के स्वरूप को समझाने की कोशिश करना विड़म्बना मात्र है।

नाद का दूसरा नाम परा है। यह मूलाधार में परा, स्वाधिष्ठान में पश्यन्ति, हृदय में मध्यमा और मुंह में वैखरी है।

आहेदमान्तरं ज्ञानं सूक्ष्मवागात्मना स्थितम्।
व्यक्तये स्वस्य रूपस्य शब्दत्वेन निवर्त्तते ॥

–वाक्यपदीय

सूक्ष्म वाक् आत्मा में स्थित अन्तर्ज्ञान अपने रूप की अभिव्यक्ति के लिए शब्द के रूप में वैखरी अवस्था में बदल जाती है। अर्थात हमारी सूक्ष्म वाक् आत्मा में अन्तर ज्ञान अव्यक्त अवस्था में रहती है। यदि मन में किसी भाव का उद्रेक होता है तो वह अव्यक्त अन्तर ज्ञान व्यक्त होकर वैखरी के रूप में मुंह से निकलता है।

मूलाधार पद्म से पहले उदित नाद रूपी वर्ण उठकर हृदय में प्रवेश करता है। जैसे–

स्वयं प्रकाश्या पश्यन्ती सुषुम्नामाश्रिता भवेत,
सैव हृत्पंकजं प्राप्य मध्यमा नादरूपिणी।

यह नाद हृदय में स्थित अनाहत पद्म में स्वतः उठता है। न+आहत=अनाहत। अर्थात बिना आघात के आवाज निकलती है। इसलिए हृदय में स्थित जीवाधार पद्म का नाम अनाहत पड़ा है। सद्गुरु के अभाव में अज्ञान रूपी अंधेरे और विषय में विमूढ़ हमारा यह मन नादध्वनि को नहीं समझ पाता। यदि सुकृतिशाली साधक लिखित कौशल की सहायता से क्रियानुष्ठान करेंगे, तो स्वतः उठने वाले अश्रुतपूर्व इस अलोक सामान्य अनाहत ध्वनि को सुनकर अपार्थिव आनन्द का उपभोग कर सकेंगे। इस प्रक्रिया के द्वारा बहुत ही सहज और शीघ्र मनोलय होता

है और मुक्ति प्राप्त होती है।

जितने प्रकार के लय योग हैं, उनमें यह नाद साधना मुख्य है। इसकी साधना प्रक्रिया बहुत ही सहज और सुख साध्य है। शिवावतार शंकरचार्य ने कहा,

नादानुसन्धानं समाधिमेकं मन्यामहे अन्यतमं लयो नाम।

यथा नियम से साधना करने पर नादध्वनि साधक के कानों को सुनाई देती है और समाधि आने पर परमानन्द का उपभोग किया जाता है। जो इस नादतत्त्व से अवगत है, वे ही सचमुच योगीगुरु हैं।

यो वा परांच पश्यन्ती मध्यमामपि वैखरीम।
चतुष्टयीं विजानाति स गुरुः परिकीर्त्तितः ॥

—नवचक्रेश्वर

अर्थात् जो व्यक्ति परा, पश्यन्ति, मध्यमा और वैखरी आदि नाद तत्त्व को पूरी तरह जानते हैं, वे सही गुरु हैं। ऐसे गुरु से योग संबंधी उपदेश प्राप्तकर साधना कीजिये, वरना भेष भूषा के आडम्बर को देखकर अथवा भाषण सुनकर भूल जाने से अवश्य ही ठगे जायेंगे।

नादतत्त्व का जो सामान्य आभास इसमें दिया गया है, उससे पाठक गण अवश्य समझ सकेंगे कि नाद ही आद्याशक्ति है। पहले ही दूसरी बातों पर चर्चा करते समय मैंने कहा है कि तप, जप या साधना और भजन का मुख्य उद्देश्य कुण्डलिनी शक्ति का चैतन्य कराना है। इसलिए शैव, वैष्णव और गाणपत्य आदि कोई भी संप्रदाय अपनी विशेषताएं दिखाकर कितना भी गर्व क्यों न करें, अप्रत्यक्ष रूप में सभी शक्ति की उपासना ही करते हैं। "शक्ति के बिना मुक्ति नहीं है" यह प्रचलित वाक्य उस सच्चाई को प्रमाणित करता है। कितने लोग धर्म के मूल तत्त्व को जानते हैं ? यदि जानते तो अपनी विशेषता दिखाकर नर्क का रास्ता साफ नहीं करते। मैं जानता हूँ कि वैष्णवों में से अनेक लोग शक्ति मूर्ति को प्रणाम नहीं करते और उन्हें निवेदित प्रसाद भी नहीं लेते। यह कैसी मूर्खता है ! प्रकृति और पुरुष तो एक हैं। विष्णु, कृष्ण, शिव, काली और दुर्गा आदि सबको अभेद रूप से एक नहीं देखने से साधना की सीमा तक भी पहुँचने का कोई और उपाय नहीं है। शास्त्र में बताया गया है कि—

नाना भावे मनो यस्य तस्य मोक्षो न विद्यते।

जिसके मन में तरह तरह का भेद ज्ञान है, उसकी मुक्ति नहीं होती। फिर देखिए–

नाना तन्त्रे पृथक चेष्टा मयोक्ता गिरिनन्दिनि,
ऐक्यज्ञानं यदा देवि तदा सिद्धिमवाप्नुयात।।

महानिर्वाण तंत्र, 6 पृष्ठ

हे गिरिनन्दिनी ! मैंने विभिन्न तंत्रों में पृथक पृथक रूप में बात की है। जो व्यक्ति उन सबको एक मानकर अभिन्न समझेगा, केवल उसकी ही सिद्धि होगी। महादेव ने अपने मुँह से कहा है–

शक्ति ज्ञानं बिना देवि मुक्तिर्हास्यायकल्पते।

हे देवि ! शक्ति ज्ञान के बिना मुक्ति की कामना हास्यास्पद तथा व्यर्थ है। यह शक्ति वैरागियों की महिमामंडित माताजी नहीं है। वह निर्वाण पद देनेवाली आद्याशक्ति भगवती कुंडलिनी है। इनके स्वरूप तत्त्व का वर्णन करना साध्य के बाहर है।

यच्च किंचित क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके,
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा।।

जगत में सत और असत, किसी भी वस्तु की जो शक्ति दिखाई देती है वह सब उस आद्याशक्ति की शक्ति स्वरूप है। इसलिए उन सूक्ष्म से अतिसूक्ष्म, परा, ब्रह्मज्ञान विनोदिनी, कुलकुठारघातिनी, कुलकुण्डलिनी शक्ति की स्वरूप शक्ति का वर्णन करने की शक्ति मुझमें नहीं है। इसलिए पाठकों में से सभी को धर्मान्धता का त्यागकर उन चतुर्वर्ण स्वरूपा खेचरी वायु रूपा, सर्वशक्तिश्वरी, महाबुद्धि प्रदायिनी, मुक्तिदायिनी, सुप्त सांप के आकार वाली कुण्डलिनी शक्ति की आराधना करनी चाहिए।

पराप्रकृति आद्याशक्ति ही नादरूपा है। इसलिए हृदय क्षेत्र में जीवाधार पद्म से स्वतः उठनेवाली अनाहत ध्वनि को सुनने पर साधक परमानंद प्राप्त करेंगे और मुक्ति के पथ पर आगे बढ़ेंगे। शास्त्रकरों ने बताया है–

इन्द्रियाणां मनो नाथो मनोनाथस्तु मारुतः।
मारुतस्य लयो नाथः स लयो नादमाश्रितः।।

–हठयोगप्रदीपिका

मन ही इन्द्रियों का मालिक है। क्योंकि मन का संयोग नहीं होने पर कोई भी इन्द्रिय कार्यक्षम नहीं होता। मन प्राणवायु के आधीन है। इसलिए वायु के वशीभूत होने पर ही मन का लय होता है। मन का लय होकर वह नाद में रहता है। नाद का अर्थ है अनाहत ध्वनि। जीवात्मा और परमात्मा का मिलन न होने तक अनाहत ध्वनि नहीं रुकती। योग की चरम सीमा में जीवात्मा और परमात्मा एक हो जाती हैं और उसके साथ ही वह अनाहत ध्वनि परंब्रह्म में विलीन हो जाती है।

"शृणोति श्रवणातीतं नादं मुक्तिर्नसंशयः।"

–योगतारावली

अतः अश्रुतपूर्व इस अनाहत नाद को सुनने पर जीव की मुक्ति होती है, इसमें संदेह नहीं। आशा करता हूँ कि पाठकगण यह सब अवगत होकर दृढ़विश्वास के साथ नाद साधना करेंगे।

नाद साधना के सहज उपाय इस प्रकार हैं।

पहले बताए गए किसी भी उपाय से कुण्डलिनी का चैतन्य और ब्रह्ममार्ग साफ होने पर नाद साधना आरंभ कीजिए।

पहले इड़ा नाड़ी अर्थात् बाईं नाक से धीरे-धीरे साँस लेकर फेफड़े में वायु भरिए। उस समय स्नायु के प्रवाह के साथ मन का संयोग करके सोचना होगा मानो वह स्नायु प्रवाह इड़ा नाड़ी के भीतर से होकर नीचे की ओर आकर कुण्डलिनी शक्ति के आधारभूत मूलाधार पद्म के त्रिकोणपीठ पर जोर से चोट कर रहा हो। इस तरह करके उस स्नायु प्रवाह को कुछ देर के लिए उसी जगह धारण कीजिए। उसके बाद सोचिए कि उस पूरे स्नायवीय शक्ति प्रवाह को साँस के साथ दूसरी ओर खींच रहे हो। उसके बाद दाईं नाक से धीरे-धीरे वायु का रेचन कीजिए। यह प्रक्रिया प्रतिदिन उषाकाल में एक बार, दोपहर को एक बार और शाम को एक बार कीजिए। आधी रात के समय फेफड़े में वायु भरकर दोनों हाथों के अगूठों से दोनों कानों को बंद कर वायु धारण कीजिए। यथाशक्ति धारण करके धीरे-धीरे रेचन कीजिये। पुनः-पुनः धारण करते-करते क्रम अभ्यास से शरीर के भीतर की ध्वनि सुनाई देगी।

जो कुण्डलिनी चैतन्य अथवा इन क्रियाओं को कठिन समझता है,

उसके लिए और सहज उपाय है। जैसे–

नाभ्याधारो भवेत षष्ठस्तत्र प्राणं समभ्यसेत।
स्वयमुतपद्यते नादो नादतो मुक्तिरन्ततः।।

योगस्वरोदय

योग साधना के उपयोगी स्थान पर किसी भी आसन में सिर, गर्दन और मेरुदण्ड को सीधा करके बैठकर एकाग्र चित्त और निश्चिंत मन में नाभि को एकटक देखिए। इस तरह नाभि में दृष्टि और मन रखने से धीरे-धीरे साँस छोटी होकर कुम्भक होगा। प्रतिदिनि यत्न के साथ रातदिन के भीतर तीन-चार बार ऐसा अभ्यास करने पर थोड़े समय बाद नाद स्वयं उठेगा। धीरे-धीरे वायुधारण करने पर नाद ध्वनि बहुत ही शीघ्र सुनाई देगी।

इन दो क्रियाओं में से किसी एक क्रिया का अनुष्ठान करने से सफलता मिलेगी। पहले झिल्ली अर्थात् झींगुर जैसी आवाज निकालती है, वैसी आवाज़ सुनाई देगी। उसके बाद साधना करते-करते एक के बाद दूसरी, जैसे बांसुरी ध्वनि, मेघ गर्जना, झांझ ध्वनि, भौंरे का गुंजन सुनाई देगा। उसके बाद घंटे, कांसे, तुरही, भेरी मृदंग आदि विभिन्न वाजाओं की ध्वनि सुनाई देगी। प्रतिदिन इस तरह अभ्यास करते-करते भिन्न-भिन्न ध्वनियाँ सुनाई देंगी।

इस तरह की ध्वनियाँ सुनते-सुनते कभी शरीर रोमांचित होता है, किसी-किसी ध्वनि को सुनने पर दिमाग चक्कर खा जाता है। कभी-कभी गले में पानी भर जाता है। परंतु साधक किसी भी बात से न डरकर अपना कार्य करता रहेगा। जिस प्रकार शहद पीने की इच्छुक मधुमक्खी शहद की खुशबू के प्रति आकृष्ट होती है परंतु शहद पीते समय उसके स्वाद में ऐसा निमग्न होती है कि उस समय उसका खुशबू के प्रति जरा भी ध्यान नहीं रहता। ठीक वैसे ही साधक भी नाद ध्वनि में मोहित न होकर शब्द सुनते-सुनते चित्त का लय करेगा।

इस तरह और अधिक अभ्यास करने से हृदय के भीतर से अभूतपूर्व ध्वनि और उससे एक द्रुत प्रतिध्वनि सुनाई देगी। उस समय साधक आँखें मूँदकर अनाहत पद्म में स्थित वाणलिंग शिवजी के मस्तक पर शान्त और

निष्पन्द दीप शिखा की तरह ज्योति का ध्यान करेगा। इस तरह ध्यान करते-करते साधक अनाहत पद्म में स्थित प्रतिध्वनि के अंतर्गत ज्योति का दर्शन करेगा।

अनाहतस्य शब्दस्य तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः।
ध्वनेरन्तर्गतं ज्योतिज्योतिरन्तर्गतं मनः।।

–गोरक्ष संहिता

जब साधक का मन उस दीपकलि के ज्योतिर्मय ब्रह्म से युक्त होकर ब्रह्मरूपी विष्णु के परमपद में लीन होगा, उस समय ध्वनि रुक जाएगी और मन आत्मतत्त्व में निमग्न होगा। साधक समस्त बीमारियों से मुक्त और तेजोयुक्त होकर अनुपम आनंद का उपभोग करेगा। उस समय का वह भाव अनिर्वचनीय, अवर्णनीय और अलेखनीय है।

आत्म ज्योतिः दर्शन

ज्योतिः ही ब्रह्म है। सृष्टि से पहले एक मात्र ज्योतिः ही थी। बाद में सृष्टि का आरंभ होने पर ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी से लेकर इस विश्वब्रह्मांड तक इस ब्रह्मज्योति से उत्पन्न हुआ है।

स ब्रह्मा स शिवो विष्णुः सोऽक्षरः परमः स्वराट।
सर्वे क्रीडन्ति तत्रैते तत्सर्वेन्द्रिय संभवम्।।

वही स्वप्रकाशरूपी अक्षर परमज्योतिः ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव कहलाते हैं। यह निखिल विश्वब्रह्माण्ड उस ज्योति के भीतर खेल रहा है और इन्द्रियों द्वारा जो कुछ दिखाई देता है, वह सब उस ब्रह्म ज्योति से उत्पन्न है। वह ज्योति ही आत्मा के रूप में मानव शरीर के भीतर सर्वत्र व्याप्त होकर रह रही है। ब्रह्म स्वरूप होते हुए भी माया के प्रभाव से विषय के प्रति आसक्त होने के कारण आत्मा अपने आप को नहीं पहचान पाती है। परमब्रह्म रूपी परमात्मा समस्त शरीरों में विराजमान हैं। जैसे–

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलोनिर्गुणश्च।।

–श्रुति

एकमात्र देव परमात्मा सर्वभूत में गूढ़ रूप से अधिष्ठित हैं। वे ही सर्वव्यापी, सर्वभूत की अन्तरात्मा, कर्म के अध्यक्ष, समस्त भूतों के अधिवास, साक्षी चैतन्य, केवल और निर्गुण हैं। जिस प्रकार दूध के भीतर मक्खन, फूल के भीतर खुशबू, लकड़ी में आग रहती है, ठीक वैसे ही शरीर के भीतर आत्मा अधिष्ठित है।

मनुष्यों के प्रकाश दो नेत्रों के अतिरिक्त और एक गुप्त नेत्र है। उस तीसरे नेत्र का नाम गुरु नेत्र है। चित्त के निर्मल और स्थिर होने पर वह गुरुनेत्र प्रकाशित होता है। उस समय भूत, भविष्य और काफी दूर की घटनाओं को देखा जा सकता है। उस गुरु नेत्र अथवा ज्ञान नेत्र के द्वारा अज्ञाचक्र के ऊर्ध्व में निरालम्बपुरी में ईश्वर के दर्शन या इष्टदेव के दर्शन अथवा कुण्डलिनी के स्वरूप को देखा जाता है। इस ज्ञान नेत्र के द्वारा शरीर में स्थित ब्रह्म स्वरूप परमात्मा की स्वप्रकाश ज्योति का भी दर्शन किया जाता है। जैसे–

चिदात्मा सर्वदेहेषु ज्योतिरूपेण व्यापकः
तज्ज्योतिश्चक्षुरग्रेषु गुरुनेत्रेण दृश्यते।।

चिदात्मा ज्योति के रूप में समस्त शरीर में व्याप्त होकर रह रही है। गुरु नेत्र के द्वारा नेत्र के अग्रभाग में वह दिखाई देती है। वह आत्मज्योतिः सदैव शान्त, निश्चल, निर्मल, निराधार, निर्विकार, निर्विकल्प और दीप्तिमान है। दूध को बिलोकर जिस प्रकार मक्खन निकाला जाता है, ठीक वैसे ही क्रिया के अनुष्ठान के द्वारा आत्मदर्शन होने पर जीव की मुक्ति होती है। इसलिए हर कोशिश करके यत्न के साथ आत्मदर्शन करना चाहिए। इस संबंध में शास्त्रवाक्य इस प्रकार है–

आत्मदर्शन मात्रेण जीवोन्मुक्तो न संशयः।

अर्थात् आत्मदर्शन होते ही मनुष्यगण अवश्य ही जीवन्मुक्त होते हैं। अतः सबको आत्म ज्योतिः का दर्शन करना चाहिए। योग साधना की अन्य प्रक्रियाओं की तुलना में आत्मज्योति दर्शन की क्रिया सहज और सुख साध्य

है। उस ब्रह्म स्वरूप ज्योतिदर्शन के उपाय हैं–

साधक योग साधना के उपयोगी स्थान पर स्थिर चित्त होकर नियमानुसार आसन में (जिसको जिस आसन का अच्छी तरह अभ्यास है) बैठकर ब्रह्मरन्ध्र में स्थित श्वेत कमल में श्रीगुरु का ध्यान करने के बाद उन्हें प्रणाम करेगा। गुरु कृपा के बिना ज्योतिरूपी आत्मा का दर्शन नहीं होता। शास्त्र में बताया गया है–

अनेकजन्म संस्कारात सद्गुरुः सेव्यते बुधैः।
सन्तुष्ट श्री गुरुदेव आत्मरूपं प्रदर्शयेत।।

–योग शास्त्र

अनेक जन्मों के बाद संस्कारवश सद्गुरु को सन्तुष्ट करने से विद्वान व्यक्ति गुरु की कृपा से आत्मदर्शन करते हैं। अतः गुरु ध्यान और गुरु प्रणाम के बाद मन को स्थिर करते हुए सिर, गर्दन, पीठ और पेट को समानरूप में रखकर शरीर को सीधा करके बैठिए। उसके बाद नाभिमण्डल पर दृष्टि को स्थिर रखकर उड्डीयानबन्ध की साधना कीजिए अर्थात् नाभी के नीचे रहनेवाले अपान वायु को मलद्वार से ऊपर उठाकर उसे नाभि क्षेत्र में कुम्भक के द्वारा धारण कीजिए। यथाशक्ति पुनः पुनः वायुधारण कीजिए।

त्रिसंध्यां मानसं योगं नाभिकुण्डे प्रयत्नतः।

–महानिर्वाण तंत्र, 13 पृ.

इस तरह तीन संध्याओं में मानस योग करना होगा अर्थात् प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त्त, दोपहर और शाम के समय-तीन समय इस तरह नाभि में वायु धारण करना होगा। जब तक नाभि में स्थित अग्नि को नहीं जीता जाये, तब तक एकनिष्ठ भाव से वैसा अनुष्ठान करना चाहिए।

नाभिकमल से तीन नाड़ियाँ तीन ओर जाती हैं। एक ऊर्ध्वमुख होकर सहस्रदल कमल तक, एक नीचे की ओर मुँह करके आधार पद्म तक गई है तथा तीसरी मणिपुर पद्म के नाल स्वरूप है। यह नाड़ी सुषुम्ना के भीतर स्थित मणिपुर पद्म के साथ इस तरह जुड़ी हुई है कि मणिपुर पद्म के नाल में ही नाभिपद्म है। इसलिए हर तरह की योग साधना का सहज और श्रेष्ठ उपाय नाभिपद्म का ध्यान है। नाभि क्षेत्र से साधना का आरम्भ करने पर शीघ्र ही अच्छा फल प्राप्त होगा। नाभि स्थान पर वायु को धारण करने

पर प्राण और अपान वायु एक होते हैं और कुण्डलिनी सुषुम्ना द्वार को छोड़ती है। उस समय प्राण वायु सुषुम्ना के भीतर प्रवेश करती है।

यदि प्रथम क्रिया को नाभिस्थान से आरम्भ न किया जाये तो सफलता नहीं मिलेगी। अनेक लोग शुरू से एकदम आज्ञाचक्र में ध्यान करने का उपदेश देते हैं। परन्तु वह चेष्टा बेकार है। योग क्रिया पर चर्चा करके मैंने जो सामान्य ज्ञान प्राप्त किया है, उससे मैं समझता हूँ कि घोड़े को भगाते हुए घास खिलाने की तरह एकदम ऐसी क्रिया करने जाए, तो मन कभी भी स्थिर नहीं होगा, न चित्त की एकाग्रता होगी और न ही कुण्डलिनी का चैतन्य होगा। जो सचमुच साधना की अभिलाषा रखता है, वह नाभि से क्रिया आरम्भ करेगा। तब फल भी प्रत्यक्ष होगा।

प्रतिदिन नियमित रूप से इस तरह नाभिस्थान में वायु धारण करने से प्राण वायु अग्नि स्थान में जायेगा। उस समय अपान वायु के द्वारा शरीर में स्थित अग्नि धीरे-धीरे उद्दीप्त हो उठेगी। इस तरह क्रिया करते-करते आठ-दस माह के भीतर अनेक लक्षण दिखाई देंगे। इससे नाद की अभिव्यक्ति, शरीर के हल्का होने, मल और मूत्र में कमी आने और जठराग्नि तेज होने जैसे लक्षण प्रकट होंगे। नियमित रूप से प्रतिदिन ऐसा अनुष्ठान कर सकने से तीन चार मास के भीतर उक्त लक्षण प्रकट हो सकते हैं।

यदि उपर्युक्त लक्षण सब प्रकट होते हैं तो कुम्भक करके सुप्त नागेन्द्र के समान पंच आवर्त वाली और विद्युत जैसे रंग वाली कुण्डलिनी का ध्यान करना होगा। इस तरह वायु धारण और कुण्डलिनी का ध्यान करने पर अग्नि के द्वारा सन्तापित वायु के द्वारा कुण्डलिनी फन फैलाकर जागृत होगी। जब तक मन पूरी तरह नाभिस्थान में विलीन नहीं होता, तब तक ऐसा क्रियानुष्ठान करना होगा।

जब कुण्डलिनी जागृत होकर ऊर्ध्व की ओर मुँह करके चलती है, तो प्राण वायु सुषुम्ना नाड़ी के भीतर जाएगी और सभी वायु मिलकर अग्नि के साथ पूरे शरीर में घूमेंगे। योगीजन इस अवस्था को 'मनोन्मनी' सिद्धि कहते हैं। इस समय निश्चित रूप से सब बीमारियाँ ठीक हो जाती हैं और शरीर के बल में वृद्धि होती है तथा कभी-कभी उज्ज्वल दीपशिखा की तरह

ज्योति का दर्शन होता है। ऐसी अनुभूति होने पर उस समय नाभिस्थान को छोड़कर अनाहत पद्म में क्रिया आरंभ करनी होगी। यहाँ पर भी प्रतिदिन तीन संध्याओं में यथानियम आसन पर बैठकर मूलबंध की साधना करनी होगी अर्थात् मूलाधार को संकुचित करके अपान वायु को खींचकर उसे प्राण वायु के साथ मिलाकर कुम्भक करना होगा। हृदय के भीतर जब प्राण वायु निरुद्ध होगा तो सभी पद्म उर्ध्वमुख होकर खिलेंगे। अनाहत पद्म में वायु धारण करने का अभ्यास करते-करते प्राण वायु अनाहत पद्म में प्रवेश करेगा और वहाँ स्थिर होगा। उस समय दोनों भौंओं के बीच तक सुषुम्ना नाड़ी में नये बादलों के मेल से चौंकनेवाली बिजली की तरह ज्योति सदैव प्रकाशित होगी। साधक की आँखें बंद हो या खुली हों—हर अवस्था में अन्तर और बाहर में निर्वात दीपकलिका के सामान ज्योति दिखाई देगी।

उपर्युक्त लक्षणों और अन्य लक्षणों को स्पष्ट रूप से समझ सकने पर बीज मंत्र (जो ब्राहमण हैं वे प्रणव का उच्चारण कर सकते हैं) का उच्चारण करते-करते अग्नि के साथ वाले प्राण वायु को खींचकर उसे दोनों भौंओं के बीच आज्ञाचक्र में आरोपित करके आत्मा का ध्यान करना होगा। आज्ञा चक्र में वायु को रोककर इस तरह ध्यान करते-करते चित्त का एकदम लय होगा। इस समय सहस्रार से निकली अमृत धारा से साधक का कंठ भर जाएगा। ललाट में बिजली के समान उज्ज्वल आत्मदर्शन होगा। उस समय देवता, देव उद्यान, मुनि, ऋषि सिद्ध, चारण,गन्धर्व आदि अदृष्ट पूर्व अपूर्व दृश्य साधक को दिखाई देंगे। साधक अपूर्व परमानंद में निमग्न होगा। मोटे तौर पर श्रीगुरु की कृपा से मैंने इस समय के भाव को जैसा अनुभव किया है, उस अव्यक्त भाव को लेखनी की सहायता से व्यक्त करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है। स्वयं अनुभव करने के अतिरिक्त दूसरे के लिए इस भाव को हृदयंगम करना असंभव है।

जब तक धनुष के भीतर चित्त पूरी तरह लीन नहीं होता, तब तक यथा नियम पुनः-पुनः वायु धारण और ललाट के भीतर बीज मंत्र रूपी पूर्ण चन्द्र के समान आत्मज्योति का ध्यान करने से धीरे-धीरे उपर्युक्त लक्षण प्रकट होंगे। साधक कामकला की त्रिविन्दु के साथ मिल जायेगा और

ललाट में स्थित ऊर्ध्व विन्दु विकसित होंगे। ऐसा होने पर और क्या बाकी रहा ? मानव जीवन सार्थक, ज्ञान अर्जन सार्थक तथा साधना और भजन सार्थक हो जायेगा।

जिनका मस्तिष्क मजबूत और आँखों में कोई तकलीफ न हो वे और भी आसान उपाय से आत्मज्योति का दर्शन कर सकेंगे। रात के समय घर के भीतर वायु प्रवाह से रहित स्थान पर सीधे होकर बैठकर आँखों के सामानान्तर में (किसी भी ऊँचे आधार पर) मिट्टी से बने दिये में सरसों या अरण्डी का तेल डालकर उसे जलायें। उसके बाद पहले बताई गई प्रक्रिया में गुरु ध्यान और गुरु प्रणाम करने के बाद इस दीप आलोक को स्थिर दृष्टि से देखना होगा। जब तक आँखों से पानी न आये तब तक देखते रहना होगा। इस तरह अभ्यास करते-करते जब दृष्टि टिक जायेगी, तब मटर के समान नीले रंग की एक ज्योति दिखाई देगी। धीरे-धीरे अधिक अभ्यास करने से इस दीप आलोक से नजर हटाकर जहाँ भी देखोगे, वह नीली ज्योति दीखेगी। उस समय साधक आँखें मूँदकर भी वैसी ज्योति देख सकेगा। क्रिया आरंभ करने से पहले मन को स्थिर करने के लिए कुछ समय एकटक नाभिस्थान को देखते रहना होगा।

इस तरह अभ्यास करते-करते जब भीतर और बाहर नीले रंग की ज्योति दिखाई देगी, उस समय बड़ी लगन से इस दृष्टि को हृदय क्षेत्र में लाना होगा। वहाँ से नाक के अग्रभाग और उसके बाद भौंओं के बीच लाना होगा। भौंओं के बीच दृष्टि स्थिर होने पर शिवनेत्र बनना होगा। शिवनेत्र बन जाने पर जब आँखों की पुतली आंशिक रूप से या पूरी तरह घूम सकेगी तब बिजली के समान दीपकलिका की ज्योति देखने को मिलेगी। आँखों की पुतली को घूमाते समय पहले सामान्य अंधकार दिखाई देगा। परन्तु उससे विचलित न होकर साधक धीरज रखेगा, तो कुछ समय बाद वैसी ज्योति दीख पड़ेगी। परमात्मस्वरूप ज्योति का दर्शन कर साधक शान्त चित्त और परमानन्द को प्राप्त करेगा। पानी के भीतर सूर्य के प्रतिविम्ब पर दृष्टि रखकर यह साधना करने पर वैसी आत्मज्योति का दर्शन भी किया जाता है। यदि कोई

करना चाहता है, तो वह सामान्य चेष्टा से सफल हो सकेगा। साधना प्रक्रिया और कुछ नहीं है—चित्त को एकाग्र करना है। यदि इन्द्रियपथ पर निकली भिन्न-भिन्न विषय में विक्षिप्त, अनेक स्थानों में व्याप्त चित्तवृत्ति को प्रयत्न और अभ्यास के द्वारा उसके पथ को रोककर एकत्र किया जाता है, क्रम संकोचन प्रक्रिया से केन्द्रीकृत किया जाता है, तो उस केन्द्रीकृत चित्तवृत्ति के सामने स्थित कोई वस्तु साधक के पास प्रकटित होगी। इस तरह किसी भी वस्तु में चित्तवृत्ति को निरोध करने पर वह ध्येयाकर में बदलकर हृदय में उदित होगी। पहले बताई गई आत्म ज्योतिदर्शन की प्रक्रियाओं में से कोई भी क्रियानुष्ठान करके सफल होने से जिस समय भौंओं के बीच ज्योतिशिखा दिखाई देगी और चित्त शान्त होगा, उस समय गुरु द्वारा उपदिष्ट इष्टमूर्ति का चिंतन करते-करते आत्मा ध्येय के अनुरूप मूर्ति में ज्योति के भीतर प्रकाशित होगी। इस प्रक्रिया में काली, दुर्गा, अन्नपूर्णा, जगद्धात्री, शिव, गणपति, विष्णु, कृष्ण आदि रूप अथवा राधाकृष्ण, शिवदुर्गा आदि युगल रूपों को भी उस ज्योति के भीतर देखा जा सकता है।

सूर्यमण्डल के भीतर इष्टदेव अथवा अन्य देवी-देवताओं के भी दर्शन किये जा सकते हैं। क्योंकि सूर्यमण्डल के भीतर हमारे भजनीय पुरुष अवस्थान कर रहे हैं जैसे—

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्तीनारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः।

इससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि सवितृमण्डल के बीच कमल आसन पर हमारे ध्येय नारायण का अवस्थान है। हम गायत्री जप के समय भी सोचते हैं कि वे सवितृमण्डल में हैं। ऋग्वेद में भी इस सवितृमण्डल के मध्य में स्थित परमपुरुष के स्वरूप को जानने के लिए अनेक चर्चा की गई है। जैसे—

इह ब्रवीतु य इमंग वेदास्य वामस्य निहितं पदंन्वेः।
शीर्ष्णः क्षीरं दुह्यते गावो अस्य वव्रिं वासना उदकं पदापुः।।

—ऋग्वेद, प्रथमण्डल 164 सूक्त

अर्थात् जिन उन्नत आदित्य की किरणें वर्षा बरसाती हैं और जो

अपने रूप का विस्तार कर उदक का पान करते हैं, उन आदित्य के अन्तर्गत भजनीय पुरुष के स्वरूप को जो जानते हैं, वे कौन हैं ? मुझे शीघ्र बताइये।

तब देखिये, सब के ध्येय पुरुष सूर्यमंडल के भीतर हैं। चेष्टा करने पर साधक उनका दर्शन कर सकेगा। उसका उपाय इस प्रकार है।

दर्शन के उपाय हैं—पहले साधक एकटक सूर्य की ओर देखने का अभ्यास करेगा। पहले पहल अभ्यास के समय तकलीफ हो सकती है। परन्तु क्रम अभ्यास के द्वारा दृष्टि स्थिर हो जायेगी। तब आखों के सामने निर्मल और निश्चल ज्योतिः दिखाई देगी। उस समय गुरु द्वारा उपदिष्ट अपनी इष्टमूर्ति का चिंतन करते-करते सूर्य की ज्योति के भीतर इष्ट देवता का दर्शन किया जा सकेगा।

जिनका मस्तिष्क कमजोर अथवा जिनमें नेत्ररोग है, उन्हें सूर्यमण्डल के भीतर दृष्टि साधना करने का निषेध किया गया है। वे पहले बताई गई प्रक्रिया में इष्टदेव के दर्शन करेंगे।

दूसरे देवताओं का दर्शन प्राप्त करने के लिये जिस साधना की आवश्यकता है, उसकी तुलना में बहुत कम चेष्टा से राधाकृष्ण के युगल रूप के दर्शन होते हैं। क्योंकि कृष्ण भाव और राधा प्राण हैं। ये सदैव समूचे जगत में व्याप्त और समस्त जीवों में व्याप्त होकर रहते हैं। इसलिये भाव और प्राण पर चित्तवृत्ति का निरोध कर सकने से भाव और प्राण युगल रूप में हृदय में उदित होते हैं। फिर काली साधना में और भी कम समय में सफलता मिलती हैं क्योंकि माँ काली हमारे सर्वांग से जुड़ी हुई हैं।

हिन्दू धर्म के गूढ़ रहस्य को नहीं समझ पाने के कारण अज्ञानी लोग हिन्दुओं को जड़ उपासक और कुसंस्कार से आच्छन्न कहते हैं। उनकी दृष्टि चिराचरित संस्कार के जाल को काटने में अक्षम है। वे जड़ के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझते। इसलिये ऐसा कहते हैं। हिन्दु धर्म के गंभीर सूक्ष्म आध्यात्मिक भाव और देवी देवताओं के निगूढ तत्त्व को हिन्दू जितना समझता है उसकी सीमा को छूने के लिये दूसरे धर्मावलंबियों को काफी समय लग जायेगा। हिन्दू जड़ का उपासक और पौतलिक क्यों है, इसके बारे में किसी भी आध्यात्मिक तत्त्वदर्शी हिन्दू से प्रश्न करने पर उसका सही उत्तर मिल जायेगा। हिन्दू इस निखिल विश्वब्रह्माण्ड में जो कुछ इन्द्रियों

द्वारा संभव है, उन सब के भीतर भगवान के अस्तित्व को देखते हैं। इसलिये मिट्टी, पत्थर, पेड़, पशु-पक्षी आदि में पूजा का आयोजन करके भी वे भगवान की विशाल विभूति को ही देखते हैं। हिन्दू जिस भाव में विभोर है, जड़वादियों के लिये उसे हृदयंगम करना कठिन है। हिन्दू धर्म के गंभीर ज्ञान सागर की उत्ताल तरंगों को गौ के खुर के समान इस छोटे से ग्रंथ में प्रवाहित नहीं किया जा सकता। विशेषकर वह इस ग्रंथ का प्रतिपाद्य विषय भी नहीं है।*

आत्म-प्रतिविम्ब दर्शन

साधक इच्छा करने पर अपने भौतिक शरीर के ज्योतिर्मय प्रतिविम्ब का दर्शन कर सकेगा। इसकी साधना प्रक्रिया बहुत ही सहज और साधारण लोगों के करने योग्य है। आत्म-प्रतिविम्ब के दर्शन के उपाय हैं—

गाढ़ातपे स्व प्रतिविम्बमीश्वरं निरीक्ष्य विस्फारित लोचनद्वयम।
यदांऽगने पश्यति स्वप्रतीकं नभोंऽगने तत्क्षणमेव पश्यति।।

जिस समय आकाश निर्मल और साफ होगा, उस समय बाहर धूप में खड़े होकर स्थिर दृष्टि से आत्मप्रतिविम्ब (परछाई) देखते हुए पलक झपकाये बिना दोनों आँखों को आकाश की ओर फैलाना होगा। तब आकाश में शुक्लज्योति वाली अपनी परछाई दिखाई देगी। इस तरह अभ्यास करते-करते चत्वर में भी आत्मप्रतीक दिखाई देगा। उस समय आप चारों ओर आत्मप्रतिविम्ब देख सकेंगे। इस प्रक्रिया में सिद्ध होने पर साधक आकाश में विचरण करनेवाले सिद्ध पुरुषों का दर्शन करता है।

रात में चन्द्र के आलोक में भी इस क्रिया की साधना की जाती है। योगीजन इन सबको 'छाया पुरुष साधना' का नाम देते हैं। इस आत्म प्रतिविम्ब को देखकर साधक अपने शुभ-अशुभ और मृत्यु के समय को भी सहज ही निर्धारित कर सकता है।

* मेरे द्वारा प्रणीत 'ज्ञानीगुरु' ग्रंथ में इन सब विषयों के गूढ़ तत्वों पर चर्चा की गई है।

देवलोक-दर्शन

इच्छा करने पर साधक वैकुंठ, कैलास, ब्रह्मलोक, सूर्यलोक, इन्द्रलोक आदि देवलोक और देवताओं की पिछली लीलाएँ भी देख सकता है। छोटे दिलवाले और अल्पज्ञ लोग हो सकता है यह बात सुनकर ठठा मार कर हँसते हुए दिशाओं को प्रतिध्वनित कर कहेंगे—"जो बात शास्त्रों में लिखी गई है; जो साधु संन्यासियों अथवा शास्त्रज्ञ पण्डितों के कंठ में है, उसे कैसे देखा जा सकेगा।" यह विकृत मस्तिष्क की प्रलापोक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

अभिज्ञता नहीं होने के कारण कोई कैसा भी क्यों न कहे, मैं जानता हूँ कि यह सब देखा जा सकता है। देवी-देवताओं की लीला कहानी शास्त्र से पाठ करते-करते या सुनते-सुनते मनुष्य के चित्त में उसकी सौन्दर्य ग्रहण करने की क्षमता के अनुसार देवमूर्ति का रूप बैठ जाता है। उस समय साधक उस देवता की कहानी बड़े ध्यान से सुनता है। सुनते-सुनते वह सब दृश्य स्वप्न में दिखाई देते हैं। उसके बाद जाग्रत अवस्था में भी वह सब दृश्य साधक के सामने दिखाई देते हैं। एक बात है कि जो बात एक बार हुई है, वह कभी भी लुप्त नहीं होगी। संसार में उसका संस्कार युग-युग तक रहता है। परन्तु जो कार्य जितनी शक्तिशाली है, उसका संस्कार उतनी ही प्रकट अवस्था में रहता है। साधना के बल पर उस संस्कार को जागृत कर देने से वह पुनः लोगों की दृष्टि में आता है।

साधना के द्वारा चित्त को एक मुखी कर सकने से हृदय में जो कम्पन पैदा होता है, वह कम्पन भाव राज्य में पहुँचता है। भाव प्रकाशित होकर उस क्रिया को मूर्त्तरूप देकर आँखों के सामने प्रकट करता है। इसलिए अपने-अपने संस्कार के अनुसार मन को किसी भी देवलोंक में एकाग्र कर सकने से उसके दर्शन किए जा सकते हैं।

योगसाधना से चित्त स्थिर और निर्मल होकर जिनका ज्ञान नेत्र खुल चुका है, उनके अतिरिक्त विषय के प्रति आसक्त और चंचल चित्त व्यक्तियों के लिए देवलोक का दर्शन अथवा विगत लीलाओं का दर्शन करना सहज नहीं है। दिव्यचक्षु के बिना कोई भी भगवान के ऐश्वर्य का

दर्शन नहीं कर सकता। गीता में बताया गया है कि विविध योग उपदेश सुनकर भी जब अर्जुन का भ्रम दूर नहीं हुआ, तब भगवान ने विश्वरूप धारण किया। परंतु उनकी विशाल मूर्ति अर्जुन की आँखों में नहीं समा पाई। तब श्रीकृष्ण ने कहा,

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं दादामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्।।

–गीता, 11/8

तब पता चलता है कि श्री भगवान के प्रिय सखा होकर भी अर्जुन उनकी विशाल विभूति नहीं देख पाये, दूसरों की बात क्या करें ? पहले साधना करके जब चित्त निर्मल होगा और एकाग्रता आ जायेगी, तब देवलोक की विगत लीलाओं का दर्शन करने की चेष्टा करनी होती है। देवलोक का दर्शन करने के उपाय हैं–

'आत्मज्योतिः दर्शन' की प्रक्रिया में साधना करके जब चित्त का लय होगा और ललाट पर बिजली के समान उज्ज्वल आत्मज्योति दिखाई देगी, उस समय उस ज्योति के भीतर अपने चित्त के भाव के अनुसार किसी भी देवलोक का चिंतन करते-करते चिंतन के अनुसार स्थान मूर्तिमान होकर आत्मज्योति के भीतर उसका प्रतिफलन होगा।

सर्वसाधारण के लिए और भी उपाय हैं–

सामने कोई धातु या पत्थर रखकर उससे मन का योग करके एकटक देखते रहना होगा। और अपने चित्त के भाव के अनुसार दर्शनीय स्थान का चिंतन करना होगा। पहले पहल एक मिनट, दो मिनट अभ्यास करके धीरे-धीरे समय बढ़ाना होगा। धीरे-धीरे देखेंगे कि चित्त की एकग्रता बढ़ने के साथ-साथ वह स्थान साधक के चिंतन के अनुसार शोभान्वित हो रहा है।

चित्त की एकाग्रता साधना में सिद्धि प्राप्त करने पर जगत में साधक के लिए अप्राप्य और दुःसाध्य होकर कुछ नहीं रहता। अनन्त प्रकार का मनन करनेवाला हमारा यह मन अनन्त दिशाओं में विक्षिप्त है। उस गति को रोककर उसे एक दिशा में संचालित कर सकने से अलौकिक शक्ति प्राप्त की जा सकती है। न्याय दर्शन के मत में इच्छा आत्मा का गुण है।

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिंगम्।

—न्यायदर्शन

अतः चित्त को एकाग्र कर इच्छा शक्ति की साधना करने से जगत में असंभव भी संभव होता है। भारतीय ऋषि मुनि मनुष्य को पत्थर में, लकड़ी की नाव को सोने की नाव में, चूहे को बाघ में बदल सकते थे। वह सब भी इस साधना के बल पर संभव होता था। इच्छाशक्ति के प्रभाव से रोगी को पलभर में रोग से आरोग्य, मनुष्य को वशीभूत, आकाश के नक्षत्र को भूतल पर उतारा जा सकता है, ज्येष्ठ के महीने के तपते आसमान पर नये बादल पैदा किये जा सकते हैं। नवद्वीप में बैठकर वृन्दावन की खबर प्राप्त की जा सकती है। संक्षेप में कहें तो समस्त असाध्यकार्य को आसानी से पूरा किया जा सकता है। पाश्चात्य देश के लोग मैसमेरिजम, मिडियम, हिप्नोटिज्म, मेंटल टीलीपैथी, साइको पैथी, क्लेयरोवएन्स आदि अद्‌भुत कार्य दिखाकर जीवजगत को मोहित और आश्चर्य में डाल रहे हैं। वह भी चित्त की एकाग्रता और इच्छाशक्ति से होता है। 'पायोनियर' नामक अंग्रेजी समाचार पत्र में संपादक सेनेट साहेब ने थियोसाफिस्ट संप्रदाय की प्रवर्तक मैडेम ब्लावाटस्की (Madam Blavatsky) द्वारा किस प्रकार चित्त की एकाग्रता और इच्छा शक्ति की साधना से अद्‌भुत और अलौकिक क्रियायें दिखाकर लोगों को मुगध किया गया था, वह सब अपनी आँखों से देखकर उस पर निबंध प्रकाशित किये थे। चाहने पर मनुष्य नर शरीर में देवत्व प्राप्त कर सकता है, तो देवलोक दर्शन कौन-सी बड़ी बात है ?

हिन्दू शास्त्रों में ऐसे सैकड़ों उदाहरण होते हुए भी विदेशी उपमा देने के लिए मुझसे नाराज न हों। इस युग में यह प्रथा प्रचलित है। देशी जूही और चमेली का आदर नहीं है। परन्तु जब वही फूल विदेशों में जाकर रसायन युक्त होकर एसेन्स बनकर आता है, तो बाबू लोग बड़े चाव से उसका इस्तेमाल करते हैं। अनेक लोग माँ-बहनों के साथ बात करते समय भी अंग्रेजी के दोर-चार शब्द इस्तेमाल कर डालते हैं। मैंने भी उन सभ्य लोगों द्वारा सम्मत उस सनातन पथ को अक्षुण्ण रखने के लिए पाश्चात्य उदाहरण शामिल किये। कोई नाराज होकर आँखें लाल पीली करके इसके

लिये मुझे खरी-खोटी न सुनाये। आशा करता हूँ कि पाठकगण संयत चित्त से मन लगाकर क्रियानुष्ठान करके देवलोक दर्शन की सच्चाई को परखेंगे। एक चीज को दस लोग दस ओर से खींचने पर उसकी गति स्थिर रहती है, परन्तु यदि दस लोग मिलकर उसे एक ओर खींचेंगे तो उसकी गति कैसी होगी, उसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। ठीक वैसे ही अनन्त दिशाओं में जानेवाले मन की गति को रोककर उसे बिलकुल एकमुखी कर सकने से जगत में असंभव होकर कुछ नहीं रहता, परन्तु ये सब सही प्रक्रिया के अनुसार विचार और युक्ति के साथ करने होते हैं। बाह्य विज्ञान में जिस शक्ति और विचार बुद्धि की आवश्यकता है, इसमें भी उसकी आवश्यकता है। अन्त में मुझे कहना है कि सभी चित्त की एकाग्रता की साधना करके समस्त दुःख को दूर कर जीवन में सुख की बहार लायें। स्मरण रहे कि चित्त की एकाग्रता की साधना ही योग का मुख्य उद्देश्य है।

मुक्ति

नित्य और अनित्य वस्तु पर विचार के द्वारा नित्य वस्तु निश्चित होने पर अनित्य संसार के समस्त संकल्प क्षयप्राप्त होते है, इसका नाम मोक्ष है : जैसे

नित्यानित्यवंस्तुविचारादनित्यसंसारसमस्त संकल्पक्षयो मोक्षः

–निरालम्वोपनिषद

संकल्प और विकल्प मन का धर्म है। मन बहुत ही चंचल है। चंचल मन को एकाग्र नहीं कर सकने से मुक्ति प्राप्त नहीं होती। मन की एकाग्रता होने पर ज्ञानीजन उस मन को मृत कहते हैं। साधना के परिणामस्वरूप यह मृत मन मोक्ष रूप धारण करता है। जिस समय जीव का अन्तःकरण दृढ़ रूप से उदासीन बनकर निश्चलावस्था को प्राप्त होता है उस समय मोक्ष प्रकट होता है। इसलिये मोक्ष की अवधारणा करनी चाहिये।*

* मेरे द्वारा प्रणीत 'प्रेमिकगुरु' पुस्तक में मोक्ष और उसकी साधना के संबंध में विस्तार से बताया गया है।

संसार के प्रति आसक्ति छूटने पर वैराग्य आता है और उस वैराग्य साधना में परिपक्वता आने पर मोक्ष होता है। मोटे तौर पर संसार के प्रति पूरी विरक्ति का नाम मुक्ति है। सांसारिक भोग की इच्छा पूरी नहीं होने से निवृत्ति नहीं होती। भोग की अभिलाषा पूरी होने पर ही सांसारिक सुख-दुख से निवृत्त होकर संसार के कार्य में विराग, अरुचि या विरक्ति पैदा होती है। चित्तवृत्ति का निरोध होने पर ही सांसारिक सुख और दुख के भोग के कारण स्वरूप इन्द्रियों के वहिर्मुखी भाव की निवृत्ति होती है। इस तरह की निवृत्ति होने का नाम मुक्ति है।

इन्द्रियों के बहिर्मुखी होने के कारण संसार के प्रति जो प्रवृत्ति है, उसका नाम बंधन है। उस बंधन का कारण कर्म कहलाता है। कर्म अनेक प्रकार के हैं। इसलिये बंधन भी अनेक प्रकार के हैं। इस तरह विविध बन्धन से बन्दी होकर जीव अपने आप को बहुत ही क्लिष्ट मानता है और उसके लिये ही दुख भोगता है। सांख्यकारों ने इस दुख के भोग करने को 'हेय' कहा है। जैसे

त्रिविधं दुःखं हेयम।

–सांख्य दर्शन

आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक, इन तीन तरह के दुखों का नाम हेय है। प्रकृति और पुरुष का योग होने पर जो विषय ज्ञान पैदा होता है, वही त्रिविध दुःख का कारण है। जैसे–

प्रकृतिपुरुषसंयोगेन चाविवेको हेय हेतुः

–सांख्य दर्शन

अर्थात् प्रकृति पुरुष के संयोग के कारण जो अविवेक पैदा होता है वही हेय का हेतु है।

तदत्यन्तनिवृत्तिहानम्।

–सांख्य दर्शन

दुःख त्रय के आत्यन्तिक निवृत्ति को 'हान' तथा मुक्ति कहते हैं। उस आत्यन्तिक दुख की निवृत्ति के उपाय हैं–

विवेकख्यातिस्तु हानोपायः

–सांख्य दर्शन

विवेक की ख्याति ही हानोपाय है—प्रकृति और पुरुष के संयोग से अविवेक आकर दुख पैदा करता है और प्रकृति-पुरुष के वियोग में दुःख की निवृत्ति होती है। प्रकृति और पुरुष का वियोग या अन्तर जिस विवेक द्वारा होता है, उस विवेक को हानोपाय कहते हैं। फलतः विवेक के द्वारा ही दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति होकर मुक्तिपद की प्राप्ति होती है। जैसे—

प्रधानाविवेकादन्याविवेकस्य तद्धानौ हानम्।

—सांख्य दर्शन

प्रकृति और पुरुष का अविवेक ही बंधन का कारण तथा प्रकृति और पुरुष का विवेक ही मोक्ष का कारण है। शरीर आदि का अभिमान जब तक रहता है, तब तक मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिये जिससे पुरुष का विवेक पैदा होगा, वैसे कार्य का अनुष्ठान करना चाहिए।

योग के अन्तर्गत आनेवाली क्रियाओं के अनुष्ठान से पापों आदि का क्षय होने पर ज्ञान उद्दीप्त होकर विवेक पैदा होता है। विवेक के द्वारा मोहपाश टूट जाता है। पाश (बंधन) टूटते ही मुक्ति हो जाती है। कपट वैराग्य, वाक्य के आडम्बर और जोर जबर्दस्ती से पाश नहीं टूटता, वह केवल साधना के द्वारा टूटता है। वह पाश या बंधन अनेक प्रकार के हैं। उनमें से आठ प्रकार के बंधन बहुत ही मजबूत हैं। उसको शास्त्र में अष्टपाश बताया गया है। जैसे—

घृणा शंका भयं लज्जा जुगुप्सा चेती पंचमो।
कुलं शीलंच मानंच अष्टौ पाशाः प्रकीर्त्तिताः।।

—भैरवयामल

घृणा, शंका, भय, लज्जा, जुगुप्सा, कुल, शील और मान—इन आठ चीजों को अष्टपाश कहते है। जो व्यक्ति घृणा रूपी पाश से बंधा है, उसे नर्क में जाना होता है। जो शंका रूपी पाश से बंधा है उसकी वैसी अधोगति होती है। भयरूपी पाश को नहीं काट सकने से सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। जो लज्जा रूपी पाश से बंधा है, उसकी अवश्य ही अधोगति होती है। जुगुप्सा रूपी पाश से बंधा होने से धर्म में हानि और कुल रूपी पाश से बंधा होने से पुनः पुनः जठर में जन्म लेना होता है। शील रूपी पाश से आवद्ध व्यक्ति मोह से अभिभूत रहता है। मान रूपी पाश से आवद्ध

रहने पर पारत्रिक (परलोक) में उन्नति कठिन है।

इत्यष्टपाशा : केवल बंधनरूपा रज्जवः।

केवल यह अष्टपाश जीव के बंधन की रस्सी के समान है। जो इस अष्टपाश से आवद्ध है उसे पशु कहते हैं। और जो इस अष्टपाश से मुक्त है, वह सदाशिव है। जैसे–

एतैर्बद्धः पशुः प्रोक्तो मुक्त एतै सदाशिवः

–भैरवयामल

इस बंधन के मोचन का उपाय विवेक है। विवेक ही जीव के पाश को तोड़ने के लिये तलवार के समान है। विवेक-ज्ञान सहज ही पैदा नहीं होता। योग के अंगीभूत कर्मों के अनुष्ठान से वासनाओं और मन को नाश करने से ही विवेक ज्ञान पैदा होता है। क्योंकि अविवेक ज्ञान जन्मजन्मान्तर से चलता आ रहा है। जैसे–

जन्मान्तरशताभ्यस्ता मिथ्या संसारवासना।
सा चिराभ्यासयोगेन विना न क्षीयते क्वचित।।

–मुक्तिकोपनिषत–2/15

जो मिथ्या संसार वासनाएँ पहले के सैकड़ों जन्मों से चलती आ रही है, अनेक दिनों तक योग साधना किये बिना किसी भी उपाय से उनका क्षय नहीं हो सकता। कठोर अभ्यास से मन और वासनाओं का क्षय करना होता है। लंबे समय तक योग साधना करने के बाद मन स्थिर होकर वृत्ति रहित होता है। मन के वृत्ति रहित होने पर विज्ञान और वासना त्रय (लोक वासना, शास्त्र वासना और शरीर वासना) अपने आप क्षय प्राप्त होती है। वासनाओं का क्षय होने से ही निष्पृह बनना होता है। निष्पृह बनने से और किसी प्रकार का बन्धन नहीं रहता। उस समय मुक्ति होती है। वासनारहित अचेतन नेत्र आदि इन्द्रियाँ जिस बाह्य विषय के प्रति आकृष्ट होती है, जीव की वासना ही उसका कारण है।

समाधिमथ कर्माणि मा करोतु करोतु वा।
हृदये नष्ट सर्व्वेहो मुक्त एवेत्तमाशयः।।

–मुक्तिकोपनिषद 2/20

समाधि अथवा क्रिया का अनुष्ठान करें या न करें, जिस व्यक्ति के

मन में कोई भी वासना पैदा नहीं होती, वही व्यक्ति मुक्त है। जो विशुद्ध बुद्धि के द्वारा स्थावर और जंगम, समस्त पदार्थों में बाहर और भीतर आत्मा को ही आधार के रूप में देखकर समस्त उपाधियों का त्याग कर अखण्ड परिपूर्ण स्वरूप में रहता है, वही मुक्त है, परन्तु कामना वासनाओं से मुक्त कितने जीव वह सौभाग्य लेकर जन्म लेते हैं ? इसलिये साधनाके द्वारा वासनाओं का क्षय करना होगा।

साधनाएँ अनेक प्रकार की हैं, इसलिये अनेक उपायों से मनुष्य की मुक्ति होती है। कोई कहता है कि भगवान का भजन करने से मुक्ति होती है और कोई कोई कहता है कि सांख्य योग के द्वारा मुक्ति होती है। कोई कहता है कि भक्ति योग से मुक्ति होती है। फिर कोई महर्षि कहते हैं वेदान्त वाक्य के अर्थ समूह पर विचार करके कार्य करने से मुक्ति होती है। बताया गया है कि सालोक्य आदि के भेद से मुक्ति चार प्रकार की है। एक बार जब सनत कुमार ने अपने पिता ब्रह्मा से मुक्ति के प्रकार के बारे में प्रश्न किया तो लोक पितामह ने कहा–

मुक्तिस्तु श्रृणु मे पुत्र सालोक्यादि चतुर्विधं।
सालोक्यं लोकप्राप्तिः स्यात सामीप्यं तत् समीपता।।
सायुज्यं तत्स्वरूपस्थं सार्ष्टिस्तु ब्रह्मणी लयम।
इति चतुर्विधा मुक्तिर्निर्वाणंच तदुत्तरम।।

–हेमादौ धर्मशास्त्रम

हे पुत्र ! मैं सालोक्य आदि चतुर्विध मुक्ति का विवरण बता रहा हूँ, सुनो। देवलोक की प्राप्ति का नाम सालोक्य है। देवताओं के समीप में निवास करने का नाम सामीप्य है। तत्स्वरूप में अवस्थिति का नाम सायुज्य है। ब्रह्म की मूर्ति भेद में लय का नाम सार्ष्टि है। इस चतुर्विध मुक्ति के बाद निर्वाण मुक्ति है।

जीवे ब्रह्मणि संलीने जन्ममृत्युविवर्जिता।
या मुक्तिः कथिता तद्भिस्तन्निर्वाणं प्रचक्षते।

–हेमादौ धर्मशास्त्रम

जीव का परंब्रह्म में लय होने पर जो मुक्ति होती है, ज्ञानीजन उसे ही निर्वाण मुक्ति कहते हैं। निर्वाण मुक्ति होने पर पुनः जन्म-मृत्यु नहीं

होते। महेश्वर ने रामचन्द्र से कहा है–

सालोक्यमपि सारूप्यं सार्ष्टिं सायुज्यमेव च,
कैवल्यं चेति तां विद्धि मुक्ति राघव पंचधा।

–शिवगीता–13/3

हे राघव ! मुक्ति सालोक्य, सारूप्य, सायुज्य, सार्ष्टि और कैवल्य-इस तरह पंचविध है। अतः देखा जाता है कि निर्वाण मुक्ति कैवल्य मुक्ति का दूसरा नाम है। ब्राह्य प्रकृति और आत्मा के ब्रह्यभाव को प्रकाश करना ही योग का उद्देश्य है। वही चरम फल कैवल्य है।

जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात।

–पातंजल दर्शन, कैवल्यपाद, 2

प्रकृति द्वारा अनापूर्ति के कारण एक जाति दूसरी जाति में बदल जाती है। जैसे–

यत्र यत्र मनो देही धारयेत सकलं धिया।
स्नेहादद्वेषाद्भयाद्वापि याति तत्तत्स्वरूपताम।
कीटः पेशस्कृतं ध्यायन कुड्यान्तेन प्रवेशितः
याति तत्सात्मतां राजन् पूर्वम रूपसंत्यजन।

–श्रीमद्भागवत, 11/9/22-23

शरीरधारी व्यक्ति चाहे स्नेह, द्वेष अथवा भयवश ही हो, जिन-जिन वस्तुओं पर पूरी तरह मन और बुद्धि को एकाग्र करता है वह तादृश रूप धारण करता है। जिस प्रकार काक्रोच को जब लखोड़ी कीडा पकड़ लेता है और उसे किसी छेद में रखकर उस पर बैठ जाता है, उस समय काक्रोच मारे भय के कीड़े के रूप का ध्यान करते-करते अपने पूर्व रूप का त्याग न करके भी लखोड़ी कीड़ा बन जाता है। पुरुष जिस समय केवल या निर्गुण होता है अर्थात् जिस समय आत्मचैतन्य में प्रकृति या प्राकृतिक विकार प्राप्त नहीं होता अर्थात् जिस समय किसी भी प्रकार से प्रकृति या प्रकृतिक वस्तु आत्मा में प्रतिविंबित नहीं होती, जिस समय आत्मा केवल चैतन्य में ही अधिष्ठित रहती है और विकार दर्शन नहीं करती, इस तरह निर्विकार या केवल बनने को निर्वाण या कैवल्य मुक्ति कहते हैं। लंबे समय तक की योगसाधना के परिणामस्वरूप जिस समय स्थूल, सूक्ष्म और कारण, इन तीन

प्रकार के शरीर टूटकर जीव और आत्मा एक होने का ज्ञान पैदा होता है, उस समय केवल एक मात्र निरुपाधि परमात्मा की प्रतीति होती है। इस तरह हृदयाकाश में अद्वितीय पूर्ण ब्रह्मज्ञान प्रकट होने को **कैवल्य मुक्ति** कहते हैं।

जगत में साधना और भजन के संबंध में जो कुछ विधि और व्यवस्था प्रचलित है, वह सब केवल इसी ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करने के लिए है। ज्ञान का उदय होने पर भ्रम रूपी अज्ञान की निवृत्ति होती है। अज्ञान की निवृत्ति होने पर माया, ममता, शोक, ताप, सुख, दुख, मान, अभिमान, राग, द्वेष, हिंसा, लोभ, क्रोध, मद, मोह और मात्सर्य आदि अन्तःकरण की समस्त वृत्तियों का निरोध हो जायेगा। उस समय केवल मात्र विशुद्ध चैतन्य की स्फूर्ति होगी। इस तरह केवल चैतन्य की स्फूर्ति प्राप्त करने को जीविता-वस्था में जीवन्मुक्ति और अंतिम अवस्था में निर्वाण बताया गया है। इसके अतिरिक्त इस तीर्थ से उस तीर्थ में भाग दौड़ करने, साधु, संन्यासी और वैरागियों के दल में शामिल होने और माला और झोला पकड़ कर घंटा और घंटी लेकर साधना और भजन में समय बिताने अथवा कर्मकाण्ड के द्वारा अथवा किसी अन्य रूप में मुक्ति की संभावना नहीं है। जैसे—

यावन्न क्षीयते कर्म शुभंचाशुभमेव वा।
तावन्न ज़ायते मोक्षोनृणां कल्पशतैरपि।।
यथा लोहमयैः पाशैः पाशैः स्वर्णमयैरपि।
तथा वद्धो भवेज्जीवः कर्माभिश्चाशुभैः शुभैः।।

महानिर्वाण तंत्र 14/109-110

जब तक शुभ या अशुभ कर्मों का क्षय नहीं होता, तब तक सौ कल्पों में भी मुक्ति नहीं हो सकती। जिस प्रकार लोहे या सोने की बेड़ी के बंधन से बाँधा जा सकता है, ठीक वैसे ही जीव शुभ या अशुभ कर्मों से आबद्ध होते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि मैं कर्मकाण्ड में दोष निकाल रहा हूँ। अधिकार के भेद से कार्य की विभिन्नता होती है। जो सामान्य ज्ञानी है, कर्मकाण्ड के द्वारा चित्त की शुद्धि होने पर वह उच्च अधिकारियों द्वारा किये जानेवाला कार्य करेगा। वरना जो एकदम निराकार ब्रह्म को प्राप्त करने के लिये भागते हैं वे बिलकुल भ्रांत हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। अधिकार के अनुसार कार्य करना होगा।

सकामाश्चैव निष्कामा द्विविधा भूवि मानवाः।
अकामानां पदं मोक्षः कामिनां फलमुच्यते।।

महानिर्वाण तंत्र, 13 ऊ

इस संसार में सकाम और निष्काम, इन दो श्रेणियों के मनुष्य हैं। इनमें से जो निष्काम हैं, वे मोक्ष पद के अधिकारी हैं और ज़ो सकाम हैं, वे कर्म के अनुसार स्वर्ग लोक आदि में जाकर तरह-तरह की योग्य वस्तुओं का भोगकर के कृतकर्मों का क्षय होने के बाद पुनः भूलोक में जन्म लेते हैं। इसलिये कहता हूँ कि कर्मकाण्ड के द्वारा मुक्ति की संभावना नहीं है। महायोगी महेश्वर ने कहा है—

विहाय नामरूपाणि नित्यो ब्रह्मणि निश्चले।
परिनिश्चित तत्त्वो यः स मुक्तः कर्मबन्धनात्।।
न मुक्तिर्जपनाद्धोमादुपवासशतैरपि।
ब्रह्मैवाहमिति ज्ञात्वा मुक्तो भवति देहभृत।।
आत्मासाक्षी विभुः पूर्णः सत्योऽदैत परात्परः।
देहस्थोऽपि नं देहस्थो ज्ञात्वैवं मुक्तिभाग भवेत।।
वालक्रीडनवत सर्वं नामरूपादिकल्पनम्।
विहाय ब्रह्मनिष्ठो यः स मुक्तो नात्र संशयः।।
मनसा कल्पिता मूर्त्तिर्नृणां चेन्मोक्षसाधनी।
स्वप्न लब्धेन राज्येन राजानो मानवस्तदा।।
मृच्छिलाधातुदार्वादिमूर्त्तावीश्वरबुद्धयः।
क्लिश्यान्तस्तपसा ज्ञानं विना मोक्षं न यान्ति ते।।
आहार संयमक्लिष्टा ययेष्टाहारतुन्दिलाः।
ब्रह्मज्ञानविहीनाश्चेन्निष्कृतिं ते व्रजन्ति किम्।।
वायुपर्णकणतोचव्रतीनो मोक्षाभागिनः।
सन्ति चेत पन्नगा मुक्ताः पशु पक्षी जलेचराः।।
उत्तम ब्रह्मसदभावो ध्यान भावस्तु मध्यमः।
स्तुतिर्जपोऽधमो भावो वहिःपूजा धमाधमाः।।

महानिर्वाण तंत्र, 14 ऊः ! 114-122 श्लोक

महानिर्वाण तंत्र के इन कुछ श्लोकों से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि

ब्रह्मज्ञान के बिना केवल बाह्य आडम्बर से मुक्ति की संभावना नहीं है। वासना-कामनाओं का त्यागकर वृत्तियों से रहित न होने पर ब्रह्मज्ञान पैदा नहीं होता। त्यागियों और संसारियों के लिये यही एक नियम है। केवल साधु संन्यासी अथवा वैरागी बनने पर मुक्ति नहीं होती। मन को साफ करके क्रियानुष्ठान करना चाहिए। किसी किसी ने संसार का त्याग करके वैराग्य लिया है, परन्तु बाल-बच्चों, नाती-पोतों, जमीन जायदाद, गाय-बैल और घर-आँगन के प्रति वह गृहस्थों से भी अधिक आसक्त है। वर्त्तमान युग में ऐसे वैरागियों का अभाव नहीं है।

आकीटब्रह्मपर्यन्तं वैराग्यं विषयेष्वनु,
यथैव काकविष्ठायां वैराग्यं तद्धि निर्मलम्।

महात्मा दत्तात्रेय ने अवधूत के लक्षणों का वर्णन करते हुए कहा—

अ-आशापाशविनिर्मुक्त आदिमध्यान्तं निर्मलः।
आनन्दे वर्त्तेत नित्यमकारस्तस्य लक्षणम्।।
व-वासना वर्जिता येन वक्तव्यं च निरामयम।
वर्त्तमानेषु वर्त्तेत वकारस्तस्य लक्षणम।।
धू-धूलिधूसरगात्राणि धूतचित्तो निरामयः।
धारणाध्यान निर्मूक्ता धूकारस्तस्य लक्षणम।।
त-तत्त्वचिंता धृता येन चिन्ताचेष्टाविवर्जितः।
तमोहहंकार निर्मुक्तस्तकारस्तस्य लक्षणम्।।

अवधूत गीता, 8 अः

शास्त्रों में त्यागी के जो लक्षण बताये गये हैं, वैसे वैरागी दिखाई देना कठिन है। यदि खेती बाड़ी, व्यवसाय और व्यापार में गृही को पराजित करने की इच्छा थी तो आत्मीयस्वजनों को छोड़कर और जाति आदि की तिलांजलि देकर भेक क्यों लिया ? विवाह करके बाल-बच्चों को लेकर क्या धर्म नहीं होगा ? कौपीन पहनकर वैष्णवी नामक वेश्या नारी को पास नहीं रखने से क्या गोपीवल्लभ की कृपा नहीं होगी ? आजकल 'वैष्णव' एक जाति में बदल चुका है। जितने सब आलसी और निकम्मे हैं, वे सब खाना न पाकर पेट की खातिर, विवाह न कर सकने के कारण रिपुओं की उत्तेजना से वैष्णव धर्म को स्वीकार कर निरुद्वेग से समस्त अभाव पूरा कर रहे

हैं। ज्ञान के नाम से अंगूठा छाप, परन्तु बाहरी भेष भूषा से धरती कंपाते हैं। एक एक महाप्रभु मानो एक पूरा पक्का पाखाना है। जिस प्रकार पक्के पाखाने में ऊपर चूना और सिमेंट के काम से सफेदी झलकती है और भीतर मलमूत्र से भरा है, ठीक वैसे ही ये लोग सारे शरीर में भस्म मलकर और तिलक लगाकर माला और झोला लेकर निरंतर ठक-ठक कर रहे हैं। परन्तु उनका भीतर विषय की चिंता, कपटता, कुटिलता, स्वार्थपरता, हिंसा, द्वेष, और अहंभाव से भरा हुआ है। इस तरह के छद्मवेषी भण्ड लोगों की बात में भूलकर मूर्ख लोग सिर पीटते हैं। इस प्रकार का झूठा और कृत्रिम आवरण अच्छा नहीं है। भीतर को मैल से भरकर बाहर लोगों को भुलाने के लिये साधुआई का ढोंग बिलकुल फलवती नहीं है। कोई कोई तो तर्क करने में पारंगत, परन्तु पेट के भीतर ककहरा का ज्ञान नहीं है। जो ज्ञान में पक्व है, वही धर्म का सही मर्म जानता है। वह कभी भी तर्क नहीं करता। उबलते घी में पुड़ी डालने पर पहले आवाज होती है परन्तु जैसे जैसे रस (पानी) सूखता जाता है आवाज उतनी कम हो जाती है। निरे मूर्ख लोग वह न समझकर अपनी बुद्धि को आप प्रकाशित कर देते हैं। शुद्ध बनना चाहो, तो मिट्टी बनना होगा। मन में अहंभाव की प्रतिष्ठा और यश तथा गौरव के प्रति रत्तीभर भी आशा हो, तो प्रेम और भक्ति नहीं आ सकती। वासना बन्धन का मूल है। अहंकार आदि समस्त आशाओं का त्याग करनें पर फिर हमेशा के लिये बन्धन नहीं होता। अनायास ही त्रिताप से मुक्त होकर निर्वाण मुक्ति प्राप्त की जाती है। जीव वासना और कामना रूपी खाद के मिश्रण से ब्रह्म से स्वगत भेद रखता है। उस वासना कामना रूपी खाद को ज्ञानरूपी अग्नि में जलाकर दूर करने से जीव मुक्त होकर स्वरूपतः वह जो ब्रह्म था, वह ब्रह्म बन जाता है।

अन्य उपार्यों से निर्वाणमुक्ति प्राप्त करना इस ग्रंथ की चर्चा का विषय नहीं है। योग के बल से सर्वश्रेष्ठ मुक्ति निर्वाणपद की प्राप्ति होती है। साधक क्रियानुष्ठान के द्वारा कुण्डलिनी का चैतन्य कराके अनाहत पद्म में जीवात्मा को साथ लाने से सालोक्य प्राप्त होता है। विशुद्ध चक्र तक उठ सकने से सारूप्य प्राप्त होता है। आज्ञाचक्र तक उठ सकने से सायुज्य प्राप्त होता है। आज्ञाचक्र के ऊपर निरालंवपुरी में

आत्म ज्योतिः दर्शन या ज्योति के भीतर इष्टदेव के दर्शन होने पर अथवा नाद में मन का लय कर सकने से वह निर्वाण मुक्ति को प्राप्त करता है।

जीवः शिवः सर्वमेव भूते भूते व्यवस्थितः
एवमेवाभिपश्यन यो जीवन्मुक्तः स उच्यते।।

–जीवन्मुक्ति गीता

यह जीव ही शिवस्वरूप है। वे सब जगह सर्वभूत में प्रवेश करके विराजमान रहते हैं। इस तरह के दर्शनकारी को जीवन्मुक्त कहते हैं। अतः पाठक इस ग्रंथ में शामिल किसी भी क्रिया का अनुष्ठान करने पर जीवन्मुक्त होकर संसार में परमानन्द का भोग और अन्तिम घड़ी में निर्वाण मुक्ति प्राप्त कर सकेंगे। जो व्यक्ति योग साधना में अक्षम है, यदि वह संस्कार वासना-कामना, सुख-दुख, गर्मी-सर्दी, मान-अभिमान, माया-मोह, भूख प्यास, सब भुलाकर प्राणों के ठाकुर का शरणापन्न बन सकेगा, तो वह मुक्ति प्राप्त करने में सक्षम होगा।*

यदि पाश्चात्य शिक्षा से मस्तिष्क को विकृत कर गुमराह होनेवाले लोगों में से कोई एक भी इस ग्रंथ को पढ़कर योग साधना करता है, तो मेरा कलम पकड़ना सार्थक होगा। मुसलमान, ईसाई और दूसरे धर्मावलंबी भी इस प्रक्रिया में साधना करने पर लाभान्वित होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। यदि कोई नियमित योग शिक्षा लेने की अभिलाषा लेकर कृपा करके इस ग्रंथकार के पास आता है, तो मुझे जितनी जानकारी है और इस पर चर्चा करके मैंने जितना ज्ञान प्राप्त किया है, उसके अनुसार समझाने और यत्न के साथ क्रिया आदि की शिक्षा देने में त्रुटि नहीं करूँगा, परन्तु मैं–

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति,
जीनाम्यधर्मं न च मे निवृत्ति,
त्वया हृषिकेश हृदिस्थितेन,
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।।

ॐ महाशान्तिः

---

* भक्ति पथ में मुक्ति, भक्ति की साधना, प्रेमभक्ति के माधुर्य का आस्वाद, वैराग्य-संन्यास आदि हिन्दू धर्म के मुख्य विषयों को मेरे द्वारा प्रणीत "प्रेमिकगुरु" पुस्तक में विस्तृत रूप में दिया गया है।

योगीगुरु

तृतीय भाग

मंत्र कल्प

दीक्षा प्रणाली

नमोऽस्तु गुरवे तस्मादिष्टदेव स्वरूपिणे।
यस्य वाक्यामृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञितम।।

जिन्होंने अज्ञान रूपी अंधकार से ढकी आँखों को ज्ञानांजन शलाकों से खोला है, जिनके द्वारा अखण्डमण्डलाकार जगतव्याप्त ब्रह्मपद प्रकाशित हुआ है, इष्टदेवता के स्वरूप नित्याराध्य उन गुरुदेव के चरण कमल में प्रणाम करते हुए उनके द्वारा उपदिष्ट मंत्रकल्प आरम्भ करता हूँ।

दीक्षा गुरु हिन्दुओं के नित्य आराध्य देवता हैं। गुरुपूजा के बिना हिन्दुओं की इष्टदेवता पूजा पूरी नहीं होती। गुरुपूजा करने की प्रथा हिन्दुओं की नस-नस से जुड़ी हुई है। गुरु सर्वत्र पूज्य और सम्मानीय हैं। वैदिक हो या तांत्रिक, वैष्णव हो या शाक्त, शैव, सौर हो या गाणपत्य, कोई भी हो, हिन्दू मात्र ही गुरु पूजा, गुरु के प्रति यथोचित भक्ति दिखाता है। शास्त्र में भी बताया गया है।–

न च विद्यागुरोस्तुल्यं न तीर्थ न च देवता,
गुरोस्तुल्यं न वै कोऽपि यद्दृष्टं परमं पदम।।

न मित्रं न च पुत्राश्च न पिता न च बान्धवाः।
न स्वामी न गुरोस्तुल्यं यद्दृष्टं परमं पदम्।।

एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यददत्त्वा चानृणी भवेत्।

–ज्ञानसंकलिनी तंत्र

जिन गुरु के द्वारा परम पद के दर्शन होते हैं, क्या विद्या, क्या तीर्थ, क्या देवता, कुछ भी उन गुरु के समान नहीं है। जिन गुरु के द्वारा परम पद के दर्शन होते हैं, उन गुरु के समान मित्र और कोई नहीं है। पुत्र कहो, पिता कहो, सगे संबंधी कहो, पति कहो, कोई भी गुरु के बराबर नहीं हो सकते। जो गुरु शिष्य को एकाक्षर मंत्र प्रदान करते हैं, पृथ्वी में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं जिसे देकर उनके ऋण से मुक्ति मिल सकती है। वैष्णव जन कहते हैं कि

गुरु को छोड़
गोविन्द को भजै
वह पापी है
जो नरक में मजै।

गुरु का इस तरह पूज्य भाव क्यों हुआ ? वास्तव में जिन गुरु के द्वारा परम पद के दर्शन होते हैं अर्थात् ब्रह्म साक्षात्कार होता है, जो अज्ञान रूपी अंधकार से ढकी आँखों को ज्ञान अंजन शलाका से खोलकर दिव्य ज्ञान प्रदान करते हैं, संसार के त्रिताप रूपी विष को जो नष्ट कर देते हैं, जगत में उनकी तुलना में और कौन महान और आत्मीय है ? हम उनके प्रति भक्ति नहीं करेंगे तो और किसके प्रति करेंगे ? परन्तु खेद की बात है कि वर्त्तमान युग में शिष्यों के मार्गदर्शक गुरु गृहस्थों में प्रायः नहीं दिखाई देते हैं। आजकल गुरुआई व्यवसाय में बदल चुकी है। हमारे देश में इस समय गुरुओं का गुरुत्व नहीं है, कर्त्तव्य वोध नहीं है। दीक्षा का उद्देश्य न गुरु समझते हैं न शिष्य। दीक्षा ग्रहण का उद्देश्य क्या है ?

दीयते ज्ञानमित्यर्थं क्षीयतो पाशबंधनम।
अतो दीक्षेति देवेशि कथिता तत्त्वचिन्तकैः।।

योगिनी तंत्र, षष्ठ पः

और भी देखें–

दिव्यज्ञानं यतो दद्यात कुर्यात पापक्षन्ततः।
तस्माद्दीक्षेति सा प्रोक्ता सर्वतंत्रस्य सम्मता।।

विश्वसार तंत्र, द्वितीय पः

इन सब का भावार्थ यह है कि दीक्षा के द्वारा दिव्यज्ञान होता है। साथ ही पापों का क्षय होकर बन्धन दूर होते हैं। यही दीक्षा शब्द की व्युत्पत्ति और दीक्षा का उद्देश्य है। परन्तु दीक्षा लेकर कितने लोगों का वह उद्देश्य पूरा होता है ? होगा भी कैसे ?

अभिज्ञश्चोद्धरेन्मूर्खं न मूर्खो मूर्खमुद्धरेत।

—कुलमूलावतार, कल्पसूत्र टीका

अभिज्ञ व्यक्ति अनभिज्ञ व्यक्ति का उद्धार कर सकता है। परन्तु एक अनभिज्ञ मुर्ख व्यक्ति दूसरे अनभिज्ञ मूर्ख व्यक्ति का उद्धार नहीं कर सकता। व्यवसायी गुरु संप्रदाय में साधक शिष्य के अज्ञान रूपी अंधकार को दूर कर उसका उद्धार करने में समर्थ सद्गुरु बिरले हैं। जो व्यक्ति स्वयं हर तरह के बंधन में पड़कर हाथ पैर हिलाने में असमर्थ है, वह फिर दूसरे के बंधन का मोचन करेगा भी कैसे ? गुरुदेव तो स्वयं अंधकार में रह कर परेशान होकर घूम रहे हैं, वे शिष्य के अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करेंगे भी कैसे ? इस तरह के प्राथमिक ज्ञान से रहित गुरु नामधारी व्यवसायी अद्भुत जीव कलियुग में और एक कलि है। ऐसे गुरुगोस्वामीगण संध्या, आह्निक और पूजा करते समय ध्यान में सोऽहं सोचने की जगह अंधकार देखते हैं अथवा बाजार में मनपसन्द की चीजें खरीदने या विषय के चिंतन में समय बिताते हैं। कोई कोई अपने समूचे शरीर पर गोपी मृतिका का लेप लगाकर मुँह में अनवरत गोपीवल्लभ के नाम का जाप करते हैं। कंठ तक लंबे आलखाला अथवा रेशमी झोले में निरन्तर माला ठक-ठक करते हैं परंतु मन में तरह-तरह की चिंता और मुँह में तरह-तरह की बातें लगी रहती हैं। मन और कान विभिन्न दिशाओं में आकृष्ट रहते हैं। मुँह में अनवरत कथा चलती रहती है। उधर झोला और माला फेरने में विराम नहीं। यह गुरु संप्रदाय छल-बल और कौशल से केवल शिष्य संग्रह करने की चेष्टा में सदैव घूमता रहता है। जो सचमुच ज्ञानी हैं, काफी साध्य साधना के बाद भी वे किसी को शिष्य रूप में स्वीकार नहीं करते। और मैंने अपनी आँखों से देखा कि अनेक व्यवसायी गुरु स्वयं खुशामद करके अपने घर से दाल, चावल, जनेऊ लाकर अयाचित भाव से शिष्य का अज्ञान अंधकार दूर करने के लिए उसके पीछे पड़ जाते हैं। परंतु एक बार शिष्य

बना सकने से बेचारा फिर जायेगा कहाँ ?

नियमित रूप से निश्चित मात्रा में वार्षिक देय शिष्य से न मिलने से शिष्य का फिर निस्तार नहीं। ये सब गुरु शिष्य को मन्त्र देते हैं–

बेटा ! हरि बोल हरि बोल
वर्ष के अन्त में चवन्नी के साथ
कौपीन वस्त्र देना न भूल

ऐसे गुरु संसार में बिरले नहीं है। शिष्य की उन्नति के बदले वार्षिक चांदी के सिक्के कमाकर कृतकृतार्थ होने से दीक्षा का उद्देश्य कैसे पूरा होगा ! प्रतिदिन इसके प्रत्यक्ष प्रमाण दिखाई देते हैं। गुरु शिष्य के घर आकर उसके कान में एक फूंक मारकर चांदी के थोड़े सिक्के इकट्ठा करते हैं और पुरुषानुक्रम से उस पर अधिकार जताने के लिये, गुरु अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये दूसरे के सिर पर हाथ फेरते हैं और उधर शिष्य गुरु प्रदत्त उन सूखे अक्षरों का यथासाध्य जप करते रहने पर भी जिस अंधकार में था, उस अंधकार में रह जाता है। उसके हृदय क्षेत्र की हालत पहले जैसी थी अब भी वैसी है। गुरुदेव में शिष्य के अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करने, उसके बंधन का मोचन करने तथा उसे दिव्यज्ञान प्रदान करने की शक्ति रत्तीभर भी नहीं है। हाय ! स्वार्थ में अंधे कलि के गुरु ! यदि रुपया-पैसा लेकर पाँच मिनट में जीवात्मा का उद्धार हो जाता, तो इतने शास्त्रों की आवश्यकता नहीं होती। अथवा ऋषि-मुनि लंबे समय तक जंगल में रहकर इतनी कठोर साधना नहीं करते। आधुनिक 'फूल बाबुओं' की तरह घड़ी बाँधकर और हाथ में छड़ी लेकर मजा लूटने में त्रुटि नहीं करते।

और एक बात है। शक्ति मंत्र के उपासकों की दीक्षा के साथ-साथ शाक्ताभिषेक होना चाहिए। वामकेश्वर तंत्र और निरुत्तर तंत्रादि में बताया गया है कि जो व्यक्ति बिना अभिषेक के दस महाविद्याओं के किसी मंत्र की दीक्षा देता है वह जब तक चांद और सूरज है, तब तक नर्क में रहता है। और जो व्यक्ति अभिषिक्त न होकर तांत्रिक मत में उपासना करता है, उसकी जपपूजा आदि अभिचार जैसे हैं। जैसे–

अभिषेकं बिना देवि कुलकर्म करोति यः,
तस्य पूजादिकं कर्म अभिचाराय कल्पते।।

–वामकेश्वर तंत्र

तब तो देखिये, बात क्या है ? परन्तु कितने गुरु दीक्षा के साथ-साथ शिष्य को अभिषिक्त कराते हैं ? शाक्तों की पहले शाक्ताभिषेक, उसके बाद पूर्णाभिषेक और उसके बाद क्रम दीक्षा होनी चाहिये। बिना क्रम दीक्षा के सिद्धि नहीं होती। जैसे–

क्रमदीक्षाविहीनस्य कथं सिद्धिः कलौ भवेत्।
क्रमं विना महेशानि सर्वं तेषां वृथा भवेत्।।

–कामाख्यातंत्र, 32 पृष्ठ

बिना क्रम दीक्षा के कलियुग में कोई भी मंत्र सिद्ध नहीं होगा और बिना क्रम दीक्षा के पूजा आदि कर्म सब कुछ व्यर्थ है। हमारे देश के श्रेष्ठ साधक स्वर्गीय द्विज राम प्रसाद ने क्रमदीक्षित होकर पंचमुण्डि * आसन पर मंत्र का जप करते हुए सिद्धि प्राप्त की थी। अनेक लोग कहते हैं कि राम प्रसाद ने गाना गाकर सिद्धि प्राप्त की थी। परन्तु यह बात सच नहीं है। आज भी उनका पंचमुण्डी आसन है। मैंने अपनी आँखों से वह आसन देखा है।

महात्मा रामप्रसाद के अतिरिक्त मंत्र के जप में और किसी ने सिद्धि प्राप्त की हो, ऐसी बात नहीं सुनाई देती। इसका मुख्य कारण गुरुकुल की अवन्नति है। उपयुक्त उपदेष्टा के अभाव में मंत्र योग से लाभ नहीं मिलता। यह तो हुई एक पक्ष की बात। दूसरी बात यह है कि शायद ही कोई सद्गुरु को पहचान पाता हो। मनुष्य जीवन को नष्ट करने वाले पांखडी गुरुओं के कुप्रभाव से भ्रमित होकर लोग बाह्य आडम्बर से रहित साधकों की उपेक्षा करते हैं। फलतः दीक्षा ग्रहण करके भी उनका अभाव दूर नहीं होता। कोई कोई कुल गुरु को छोड़ने पर महापाप में डूबने की आशंका से प्राथमिक ज्ञान रहित निरे मूर्खों के चरणों में लोटकर भी आखिर में उस यमराज के दूतों की दुर्दान्त मार की बात का स्मरण कर गाल में हाथ रखकर भय के मारे इधर-उधर भटक रहे हैं। वास्तव में कुलगुरु का त्याग करने से शास्त्रानुसार पैतृक गुरु को त्यागने के परिणामस्वरूप पाप भागी

---

* विधान के अनुसार दो चाण्डाल के सिर, गीदड़ का सिर, बन्दर का सिर और सांप का सिर–इस पंचमुण्डी आसन पर बैठकर जाप करने पर मंत्र की सिद्धि में विशेष सहायता मिलती है।

होना पड़ता है। तब क्या उपाय है ?

उपाय है। पैतृक गुरु का त्याग न करके भी उनसे मंत्र लेने के बाद शिक्षा के लिये जगद्गुरु महेश्वर ने

सद्गुरु

प्राप्त करने की विधि शास्त्र में लिखी है।

जैसे—**मधुलुब्धो यथाभृंगः पुष्पात पुष्पान्तरं व्रजेत।**
ज्ञानलुब्धोस्तथा शिष्यो गुरोगुर्वन्तरं व्रजेत।।

—तंत्र वचन

जिस प्रकार भौंरा मधु के लोभ से एक फूल से दूसरे फूल पर जाता है, ठीक वैसे ही ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक शिष्य भी एक गुरु से जाकर दूसरे गुरु का आश्रय लेता है।

अतः सबको पहले पैतृक गुरु से दीक्षा लेने के बाद उपयुक्त गुरु से उपदेश ग्रहण करना चाहिए और साधना की अभिलाषा रखनेवाले लोगों को क्रिया आदि की शिक्षा लेनी चाहिए। परन्तु सावधान, भीतर की खबर न रखकर केवल वेशभूषा, हावभाव और वाक्चातुरी को देखकर किसी के बहकावे में मत आइये। गुरु को पहचानकर ग्रहण नहीं कर सकने और एक के बाद दूसरे गुरु के पास जाकर घूमते रहने से फिर साधना करेंगे कब ? इस समय जैसी स्थिति है, उससे मैं बुलंद आवाज से कह सकता हूँ कि हमारे देश में गृहस्थ गुरुओं से वह अभाव पूरा नहीं हो सकेगा। इसलिये ध्यान रहे कि उपगुरु ग्रहण करके भी अंगूठा चूसना न पड़े। जिनके कुलगुरु नहीं हैं, उन्हें पहले ही सावधान होना चाहिए। इस संबंध में मैं भुक्तभोगी हूँ। अनेक भण्ड लोगों के हाथ पड़कर मैंने काफी दिन व्यर्थ कर दिये। इसलिये कहता हूँ शास्त्र आदि में गुरु के जो लक्षण दिये गये हैं, उसके अनुसार उपयुक्त गुरु को ग्रहण कर उनसे उपदेश लेकर साधना में लग जाइये। अन्यथा सुफल की आशा न करें। अनेक जन्म लेकर श्रम करने

पर भी मंत्र योग में सिद्धि प्राप्त नहीं होती। इसलिये समस्त साधनाओं में मंत्र योग को अधम बताया गया है। अल्पज्ञानी और अधम अधिकारी ही मंत्रयोग की साधना करते हैं। उसके अतिरिक्त यदि उपयुक्त उपदेष्टा के उपदेश से मंत्र योग का अनुष्ठान नहीं होता तो दूसरी गति नहीं है।

मंत्र तत्त्व

नादतत्त्व में बताया गया है कि शब्द ही ब्रह्म है। सृष्टि के प्रारंभ में कुछ नहीं था। पहले गुण और शक्ति का विकास हुआ। गुण त्रय और शक्तित्रय से ही सप्तलोक में सृजन, पालन और लय होता है। गुण अव्यक्त बीज के समान समस्त वस्तुओं में है। परन्तु शक्ति की सहायता से उसकी स्फुर्ति होती है। परमाणु, तन्मात्र और विन्दु का संयोग ही जगत है। परमाणु को ही गुण कहते हैं। और अहंकार तत्त्व के आविर्भाव और तन्मात्र की सफलता से ही जगत की सृष्टि होती है। विन्दु शब्द-ब्रह्म का अव्यक्त त्रिगुण और चिंदाश बीज है। फलतः विनाश ही एकार्थ बोधक और विनाश ही नित्य और सूक्ष्मशक्ति का व्यंजक है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर आदि अमूर्त्त गुण हैं। सरस्वती, लक्ष्मी और काली, ये सब उनकी सूक्ष्म शक्ति हैं। गुण शक्तियुक्त होकर स्थूल बने है।

ब्रह्मा सृष्टि के कर्त्ता हैं। सरस्वती उनकी सृष्टि शक्ति है। सरस्वती, नादरूपिणी और शब्दब्रह्म स्वरूपा है। सरस्वती उन शब्द ब्रह्म के चिदंश बीज के समान है। यही हमारे मंत्रवाद की मूलात्मिका शक्ति है। जो शब्द जिस कार्य के लिये एकत्रित होकर गूंथा हुआ है और योग सिद्ध ऋषियों के हृदय से निकलकर पदार्थों के संग्रह में शक्तिमान था, वही मंत्र के रूप में गूंथा होकर रहता है। अतः इसमें सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं कि मंत्रशब्द अलौकिक शक्तिशाली और वीर्यशाली है। योगयुक्त हृदय के अत्यधिक स्फुरण से मंत्र का प्रभाव प्रतिष्ठित होता और बिखरता है।

समस्त बीज मंत्र शक्ति के व्यक्त सूक्ष्म बीज हैं। जिस प्रकार 'क्लीं' कृष्ण का सूक्ष्म व्यक्त बीज है। एक पीपल के बीज का उदाहरण लीजिये। पीपल के बीज के कोष में ऐसी क्या चीज है जिससे यह विशाल वृक्ष पैदा

हुआ है। यदि रासायनिक विश्लेषण करके इससे कुछ नहीं निकाला जा सकता है, तथापि चार-पाँच दिन मिट्टी के भीतर रहने पर इस बीज से वृक्ष का अंकुर कहाँ से निकल आया ? धीरे-धीरे वह किस अज्ञात शक्ति के बल पर आकाश को छूने लगा ? सरसों जैसे इस छोटे से बीज के भीतर विशाल पीपल का वृक्ष कारण रूप में छिपा था। प्रकृति की सहायता से उस कारण से वृक्ष पैदा हुआ। उसी प्रकार देवी-देवताओं के बीज मंत्र में उनकी सूक्ष्म शक्ति होती है। सुनने में वह सामान्य वर्ण मात्र है। परन्तु विशेष क्रिया के द्वारा उसकी शक्ति को जागृत कर देने से जिस देवता का जो बीज है, वह उस देवता का कार्य करेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसलिये मंत्र में सिद्धि प्राप्त करना हो, तो मंत्र जिस वर्ण, जिस भाव और जिस छन्दोवद्ध से गूंथा हुआ है, उसका उच्चारण उस भाव से करना होगा। तब कहीं मंत्र में सिद्धि प्राप्त की जा सकेगी। तंत्र में बताया गया है।

मनोऽन्यत्र शिवोऽन्यत्र शक्तिरन्यत्र मारुतः।
न सिध्यन्ति वरारोहे कल्पकोटिशतैरपि।।

–कुलार्णवतंत्र

यदि मंत्र जप के समय मन, परमशिव, शक्ति और वायु पृथक् स्थान पर रहते हैं अर्थात् इनका एकत्र संयोग न होने पर सैकड़ों कल्प में भी मंत्र में सिद्धि नहीं होती। इन बातों की पूरी जानकारी न होने के कारण सभी कहते हैं कि मंत्र का जाप करके लाभ नहीं होता। परन्तु कोई यह नहीं समझता है कि अपनी त्रुटि से ही लाभ नहीं होता। देखिए जगदगुरु योगेश्वर क्या कह रहे हैं–

मंत्रार्थं मंत्रचैतन्यं योनिमुद्रां न वेत्ति यः।
शतःकोटिजपेनापि तस्य विद्या न सिध्यति।।

–सरस्वती तंत्र

मंत्रार्थ, मंत्र चैतन्य और योनिमुद्रा को न जानकर करोड़ों जप करने पर भी सिद्धि नहीं होती।

अंधकार गृहे यद्वन्न किंचित प्रतिभासते,
दीपनीरहितो मंत्रस्तथैव परिकीर्त्तितः।।

जिस प्रकार रोशनी रहित अँधेरे घर में कुछ नहीं दिखाई देता, ठीक

वैसे ही दीपनी रहित आवेगहीन मंत्र के जप में कोई लाभ नहीं होता। अन्य तंत्र में बताया गया है—

मणिपुरे सदा चिंत्यं मत्रणां प्राणरूपकं।

अर्थात् मंत्र के प्राणरूपी मणिपुर चक्र में सदैव चिंतन करे। वास्तव में मंत्र का प्राण मणिपुर चक्र में है। उसे अवगत होकर क्रिया नहीं करने से मंत्र का चैतन्य नहीं होगा। इसलिये निष्प्राण शरीर की तरह अचैतन्य मंत्र का जप करने से रत्तीभर भी लाभ नहीं होगा। परन्तु मणिपुर चक्र में मंत्र का प्राण किस प्रकार है, वह कोई व्यवसायी गुरु क्या समझा सकता है ? मैं जानता हूँ कि गृहस्थों में ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं है। योगियों और संन्यासियों में बहुत कम व्यक्ति ही ये सब संकेत और क्रियानुष्ठान जानते हैं।

अतः यदि साधना के इच्छुक जापक मंत्र का जप करके फल प्राप्त करने की वासना रखता है, तब उसे नियमित रूप से मंत्र का चैतन्य कराकर जप का अनुष्ठान करना चाहिये। जप का रहस्य पूरा करके नियमित जप के साथ विधिपूर्वक समर्पण करने से जप का लाभ अवश्य मिलेगा। जप रहस्य पूरा किये बिना जप का लाभ प्राप्त करना एकदम असंभव है। परन्तु खेद की बात है कि जप रहस्य और जप समर्पण की विधि प्रायः कोई नहीं जानता।* इसका कारण यह है कि उपयुक्त उपदेष्टा के अभाव में जप आदि के संबंध में सही उपदेश नहीं मिलते।

क्या शाक्त, क्या वैष्णव, सबको जप रहस्य जानना चाहिये। कल्लुकासेतु, महासेतु, मुखशोधन, करशोधन आदि 28 प्रकार के जप रहस्य क्रमानुसार एक के बाद यथानियम पूरा करके जप के अंत में विधिपूर्वक जप का समर्पण करना होगा। फिर जप के रहस्य देवताओं के भेद से पृथक्-पृथक हैं। इसलिये 28 प्रकार के जप रहस्यों को देवताओं के भेद से पृथक-पृथक यथायथ इस छोटे ग्रंथ में लिखना असंभव है। विशेषकर केवल ग्रंथ पाठ करके सर्वसाधारण जप रहस्य को पूरा कर सकेंगे, वह भी दुराशा मात्र है। अन्य उपाय से भी मंत्र का चैतन्य किया जाता है।

---

* जप रहस्य और जप समर्पण की विधि, मंत्र जप के विविध कौशल और साधनाएँ आदि मेरे द्वारा प्रणीत 'तांत्रिकगुरु' पुस्तक में दी गई है।

मंत्र जागरण

प्रचलित भाषा में पुरश्चरण क्रिया को 'मंत्र जागरण' कहते हैं। पुरश्चरण नहीं करने से मंत्र चैतन्य नहीं होता। मंत्र चैतन्य नहीं होने से उस मंत्र के प्रयोग से कोई लाभ नहीं होता। अतः किसी भी मंत्र में सिद्धि प्राप्त करनी हो तो पुरश्चरण प्रक्रिया को सीखकर पुरश्चरण करना चाहिये। परन्तु बहुत ही खेद की बात है कि आज कल के यजमान या शिष्य गुरुओं या पुरोहितों से जो पुरश्चरण कराते हैं, उस पर वे बिना कारण केवल धन का व्यय और उपवास आदि करते हैं। इन सब कारणों से हिन्दू धर्म के प्रति लोगों का अनुराग कम होता जा रहा है। क्योंकि धन का व्यय और समय को बरबाद करके जो कार्य किया गया, यदि उससे कोई लाभ न हो, तो उस कार्य को करने की किसकी इच्छा होगी ? यही लोग कहते हैं "आजकल लोग अंग्रेजी पढ़कर धर्म-कर्म को नहीं मानते अथवा शास्त्र पर विश्वास नहीं करते।" परन्तु यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि उसके लिये अधिकतर वे ही दोषी हैं और उनकी गलती के कारण ही धर्म-कर्म के प्रति लोगों का विश्वास कम होता जा रहा है, यह बात वे स्वीकार नहीं करते।

पुरश्चरण तो केवल मंत्र का जप नहीं है। मंत्र का जिस तरह उच्चारण करने से स्वर में कम्पन्न होता है, मंत्र के जागरण में वही सीखना होता है। जिस प्रकार संगीत के विद्यार्थियों को राग-रागिणी का अभ्यास करते समय स्थान विशेष के माध्यम से स्वर निकालना होता है, अर्थात् गला साधना होता है, मंत्र का उच्चारण करने के लिये भी उसी प्रकार नाड़ी साधनी होती है। वह नाड़ी साधना ही पुरश्चरण है। यह बात मैं अपने मन से नहीं कहता हूँ। तंत्र में बताया गया है :

मूलमंत्रं प्राणबुद्धया सुषुम्नामूलदेशके।
मंत्रार्थं तस्य चैतन्यं जीवं ध्यात्वा पुनः पुनः।।

–गौतमीये

सुषुम्ना के मूल देश में मूल मंत्र को जीव के रूप में चिंतन करके मंत्रार्थ और मंत्र चैतन्य की जानकारी रखकर जप कीजिये। मंत्र का

यथायथ उच्चारण करके किस तरह जप करना होता है, वही सीखना पुरश्चरण की क्रिया का मुख्य उद्देश्य है। अतः यदि जापक किसी अभिज्ञ व्यक्ति से पुरश्चरण की क्रिया को सीखेगा, तो उसे अवश्य ही जप का लाभ मिलेगा।

मंत्र सिद्धि के सात उपाय

यदि पुरश्चरण आदि सिद्ध कार्य का पूरी तरह अनुष्ठान करने पर भी मंत्र सिद्धि नहीं होती। तो पुनः पूर्वोक्त नियमानुसार पुरश्चरणादि कीजिये। इस तरह यथानियम से पुरश्चरण तीन बार करने पर भी दुर्भाग्यवश कोई असफल होता है तो भी निरुत्साहित होकर उससे निवृत्त होना ठीक नहीं है। आदि शंकर द्वारा बताये गये सात नियमों का अवलंबन लेने पर अच्छा फल मिलेगा। जैसे—

भ्रामणं रोधनं वश्यं पीड़नं शोषपोषणे,
दहनान्तं क्रमात कुर्यात ततः सिद्धोभवेन्नु।

—गौतमीये।

भ्रामण, रोधन, वशीकरण, पीड़न, शोषण, पोषण और दाहन, क्रमानुसार ये सात उपाय करने पर मंत्र सिद्ध होगा।

भ्रामण : यं, इस वायु बीज के द्वारा मंत्र के वर्णों को गूंथना होगा। अर्थात शिलारस, कर्पूर, कुंकुम, खस की जड़ और चंदन मिलाकर उसके द्वारा मंत्र के अन्तर्गत वर्णों को पृथक-पृथक करके एक वायु बीज और दूसरा मंत्राक्षर, इस तरह मंत्र के समस्त वर्णों को लिखने के बाद इस लिखित मंत्र को दूध, घी, शहद और पानी में डालना होगा। उसके बाद पूजा, जप और होम करने से मंत्र सिद्ध होगा। यदि भ्रामण के द्वारा मंत्र सिद्ध नहीं होता, तो रोधन कीजिये।

रोधन : ऊँ, इस बीज के द्वारा मंत्र को संपुटित करके (मंत्र के आदि और अन्त में ऊँ लगाना) जप कीजिये। इस तरह जप को रोधन कहते हैं। यदि रोधन क्रिया के द्वारा भी मंत्र सिद्धि नहीं होती, तो वशीकरण कीजिये।

वशीकरण : आलता, रक्त चंदन, कुड़, हरड़ धतुरा बीज और मनःशिला—इन समस्त चीजों के द्वारा भुर्ज पत्र में मंत्र लिखकर उसे कण्ठ में धारण कीजिए। यदि इस तरह करके भी मंत्र सिद्धि नहीं होती, तो चौथा उपाय कीजिये।

पीड़न : अधोत्तर योग से मंत्र का जप करके अधोत्तर रूपिणी देवता की पूजा कीजिये। उसके बाद अर्क के रस से मंत्र को लिखकर पैर दबाकर मंत्र के साथ प्रतिदिन होम कीजिये। इसे पीड़न कहते हैं। यदि इससे भी सफलता नहीं मिलती, तो मंत्र का शोषण कीजिये।

शोषण : यं, इस वायु बीज के द्वारा मंत्र को संपुटित करके जप कीजिये और इस मंत्र को यज्ञ की राख से भुर्ज पत्र पर लिखकर गले में धारण कीजिये। यदि इस तरह शोषण क्रिया करने पर भी मंत्र सिद्धि नहीं होती, तो पोषण कीजिये।

पोषण : मूल मंत्र के आदि और अन्त में त्रिविध वालाबीज का योग करके जाप कीजिये और गाय के दूध और शहद से मंत्र लिखकर हाथ में बाँध दीजिए। इसका नाम पोषण क्रिया है। यदि इससे भी सिद्धि नहीं होती, तो अंतिम उपाय दाहन क्रिया कीजिए।

दाहन : मंत्र के एक वर्ण के आदि, मध्य और अन्त में 'रं', इस अग्नि बीज का योग करके जप कीजिये और पलाश बीज के तेल से उस मंत्र को लिखकर उसे कंधे में धारण कीजिये। महादेव ने कहा है, ये समस्त क्रियायें बहुत ही सहज और इन क्रियाओं की सहायता से साधक चार-पाँच दिन में सफल हो सकेगा।

मंत्र सिद्धि के सहज उपाय

ऊपर मंत्र सिद्धि के लिये जो सात क्रियायें बताई गई हैं, वह सब किसी अभिज्ञ और मंत्र सिद्ध व्यक्ति द्वारा कराना होगा। क्योंकि जलती आग से दिये को जलाना आसान है। दूसरी बात यह है कि जो व्यक्ति

मंत्र के पुरश्चरण रूपी बहुत ही उम्दा वैज्ञानिक प्रक्रिया में सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकेगा, तब समझना होगा कि उस साधक का ब्रह्म पथ मुक्ति का उपाय नहीं बना है अथवा उसका गुरु प्रदत्त मंत्र उपयुक्त नहीं है। फ़िर भी जो मंत्र ग्रहण किया है उसका त्याग करने का उपाय भी नहीं है। जिस प्रकार दूसरे पति को ग्रहण करने से विवाहिता नारी का व्यभिचार होता है, ठीक वैसे ही मंत्र का त्याग कर पुनः मंत्र ग्रहण करने से शास्त्रानुसार व्यभिचार होता है। उसी प्रकार एक मंत्र को त्यागकर दूसरा मंत्र ग्रहण करने से शास्त्रानुसार व्यभिचार होता है। उस समय किसी मंत्र सिद्ध अभिज्ञ व्यक्ति द्वारा पहले बताई गई सात क्रियाओं में से किसी एक क्रिया के द्वारा मंत्र सिद्धि करा लेना एक मात्र कर्त्तव्य है। इन समस्त द्रव्यों और बीजों आदि के द्वारा वह मंत्र सिद्ध व्यक्ति साधक के शरीर में उस मंत्र के तेज को प्रवेश करा सकते हैं। परन्तु असली बात यह है कि ऐसे मंत्र सिद्ध व्यक्ति आसानी से उपलब्ध नहीं है। किसी भाग्यहीन व्यक्ति को ऐसे सिद्ध अभिज्ञ व्यक्ति का मिलना भी असम्भव हो सकता है। तब उपाय क्या है ? इसका उपाय है। अपने आप चेष्टा करने पर भी मंत्र सिद्धि हो सकती है। वैज्ञानिक प्रक्रिया में इथर के वाइब्रेसन (Vibration of the Eather) से मंत्र का चैतन्य कराना सहज है। परन्तु वह भी अल्प ज्ञानी आम आंदमी के वश की बात नहीं है। एक बहुत ही सहज और सबके द्वारा की जानेवाली प्रक्रिया से मंत्र का चैतन्य किया जा सकता है। उस क्रिया के अनुसार जप करने से बिना आयास से मंत्र का चैतन्य होता है। पहले जप के विशिष्ट नियमों को समझकर और मंत्र के छिन्नादि दोषों की शान्ति करा लेनी होती है।

छिन्नादि दोषों की शान्ति

मंत्र के छिन्नादि दोष ये हैं कि जितने सब मंत्र हैं, वह सब अनेक दिनों से लोगों द्वारा एक मुँह से दूसरे मुँह चलते आ रहे हैं। यदि किसी

गलती के कारण मंत्र का कोई भाग छूट जाता है अथवा छोड़ दिया जाता है, तो कंपन ठीक नहीं होगा। फलतः मंत्र जप का उद्देश्य भी पूरा नहीं होगा। वर्ण से ध्वनि निकलती है। इसलिये दूसरे वर्णों के एकत्र योग से जप करने से उस मंत्र के उपर्युक्त दोषों आदि की शान्ति होती है अर्थात् उसे कंपन युक्त करा लेना होता है।

मंत्र के छिन्नादि जितने दोष निश्चित किये गये हैं, मातृका वर्ण के प्रभाव से उन समस्त दोषों की शान्ति की जाती है। मातृका वर्णों से मंत्र को संपुटित कर अर्थात् मंत्र के अकार आदि सकारान्त वर्ण के एक वर्ण पहले और बाद में जोड़कर 108 बार (कलियुग में 432 बार) जप कीजिये। तब कहीं मंत्र के छिन्न आदि दोषों की शान्ति होगी और वह मंत्र यथा फल प्रदान कर सकेगा और एक बात है कि सेतु के बिना जप बेकार है। अतः शास्त्र में

सेतु निर्णय

का उल्लेख है। कालिका पुराण आदि में बताया गया है कि हर तरह के मंत्र में ऊँ बीज सेतु है। जप से पहले ऊँकार रूपी सेतु के न रहने से वह जप विफल होता है और बाद में सेतु न रहने पर यह मंत्र क्षीण हो जाता है। इसलिये साधकों को मंत्र जप से पहले और बाद में सेतु मंत्र का जप करना चाहिये। शुद्रों* को ऊँ का उच्चारण करने का अधिकार नहीं है। चतुर्दश स्वर और है। इसमें नाद विन्दु का योग करने पर ऊँ होता है। यही शुद्रों का सेतु मंत्र समझिये। पूजा और जप आदि में

---

* यहाँ शुद्र जाति नहीं है। जो शोक से आच्छन्न (शूयाहृदये) है, वह किसी भी जाति से क्यों संबद्ध न हो, वह शुद्र है।

न करने पर अधिकार पैदा नहीं होता। इसलिये जप से पहले भूतशुद्धि करनी चाहिये। अतिशयोक्ति के भय से भूतशुद्धि के संस्कृत भाग को छोड़कर साधारण लोगों की सुविधा के लिये उसे जन भाषा में लिखा है।

'रं' मंत्र को पढ़कर जलधारा के द्वारा अपने शरीर को घेरकर जलधारा को आग के प्राचीर के रूप में सोचिये। उसके बाद दोनों हाथों को उतान भाव से बायें और दायें के क्रम से पहले की तरह अपनी गोद में रखकर सोऽहं (शक्ति के संबंध में हंस और शूद्र के संबंध में नमः) इस तरह चिंतन करके हृदय में स्थित दीपकलिका में जीवात्मा को मूलाधार, में स्थित कुण्डलिनी शक्ति के साथ सुषुम्ना मार्ग में मूलाधार, स्वाधिष्ठान मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्र को क्रमानुसार भेदकर सिर पर स्थित निम्नमुखी सहस्र दल कमल की कर्णिका के केन्द्र में परमात्मा के साथ संयोग करके शरीर के क्षिति, जल, वायु, तेज और आकाश, गंध, रस, स्पर्श, रूप, शब्द, घ्राण, रसना, त्वचा, नेत्र, श्रोत्र, वाक, हाथ, पैर, पायु, उपस्थ, प्रकृति, मन, बुद्धि और अहंकार, इन चतुर्विंशति तत्त्वों का उनमें लीन होने के रूप में चिंतन कीजिये। उसके बाद वायें नासापुट में 'यं', इस वायु बीज को धुएँ के रंग जैसा सोचकर प्राणायाम की प्रक्रिया के अनुसार इस बीज को सोलह बार जप करके वायु द्वारा शरीर पूर्ण कर वायें नासापुट को बन्द करके चौंसठ बार जप करते-करते कुम्भक करके बायीं कुक्षी में स्थित कृष्णवर्ण, खर्व, पिंगलाक्ष, पिंगल केशवाले पाप पुरुष के साथ अपने शरीर का शोषण करके इस बीज को बत्तीस बार जप करते-करते दायें नासपुट से साँस छोड़िये। फिर रक्त वर्ण 'रं', इस अग्नि बीज को दायें नासापुट में चिंतन करके इसे सोलह बार जप करके शरीर को वायु से पूर्ण कर दोनों नासापुटों को बन्द कर चौंसठ बार इसका जप करते-करते कुम्भक कीजिये। उक्त बीज के कारण मूलाधार से उठनेवाली अग्नि के द्वारा पाप पुरुष के साथ अपने शरीर को जलाकर पुनः बत्तीस बार जप करते-करते बायें नासापुट से जले हुए भस्म के साथ वायु का रेचन कीजिए। पुनः शुक्लवर्ण 'ठं', इस चन्द्रबीज का बायें नासापुट में चिंतन करके सोलह बार जप करके

सांस खींचकर उस बीज के आकार के चन्द्र को ललाट में चिंतन करके दोनों नासापुटों को बन्द करके 'रं', इस वरुण बीज का चौंसठ बार जप करके कुम्भक द्वारा ललाट में स्थित चन्द्र से निस्सरने वाले पाँच सौ मातृका वर्ण की आमृत धारा के द्वारा शरीर को नये सिरे से गठित मानकर 'लं', इस पृथ्वी बीज को बत्तीस बार जप करके अपने शरीर को काफी मजबूत सोचते दायें नासापुट से वायु का रेचन कीजिये। बाद में 'हंस' (नारी और शुद्रगण के लिये नमः) इस मंत्र के द्वारा लय प्राप्त होकर मंत्र के साथ कुण्डलिनी के साथ जीवात्मा और 24 तत्वों को पुनः उनके अपने स्थान में लौटा लीजिये। इसके वाद सोऽहं, इस तरह का चिंतन करते-करते जप अथवा पूजा आदि कीजिये।

लाख लोगों में से कोई एक भूतशुद्धि करना जानता भी है अथवा नहीं, उस पर सन्देह है। इड़ा अथवा पिंगला पथ में यह नहीं होगा। शरीर के समस्त तत्त्वों और वृत्तियों को सुषुम्ना के पथ में कुण्डलिनी शक्ति की सहायता से पूरी तरह एकमुखी करना ही भूतशुद्धि का मुख्य उद्देश्य है। यदि कोई नियमानुसार भूतशुद्धि नहीं कर सकता तो उसका भी सहज उपाय है। जैसे–

'ज्योतिर्म्मत्रं महेशानि अष्टोत्तरशतं जपेत।
एतजज्ञान प्रभावेनभूतशुद्धिफलं लभेत।।

–भूतशुद्धि तंत्र

ज्योतिर्मंत्र अर्थात् 'ओं हौ', इस मंत्र का एक सौ आठ बार जप करने पर भूतशुद्धि का फल मिलता है। और एक तरह से संक्षेप में भूतशुद्धि होती है, जैसे–

1. **ऊँ भूतशृंगाटाछिरः सुषुम्नापथेन**
   जीवशिवं परमशिवपदे योजयामि
   स्वाहा।
2. **ऊँ यं लिंगशरीरं शोषय शोषय स्वाहा।**
3. **ऊँ रं संकोचशरीरं दह दह स्वाहा।**
4. **ऊँ परमशिवसुषुम्नापथेन मूलशृगांटमुल्ल–**
   सोल्लस ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल सोऽहं हंसः स्वाहा

केवल इन चार मंत्रों का पाठ करने से भूतशुद्धि का फल प्राप्त होता है। इसलिये पाठकों को जिसमें सुविधा हो, वह तदनुसार भुतशुद्धि करके जप करेगा। अब

जप के कौशल

लिखता हूँ। साधकगण पहले बताई गई प्रक्रिया के अनुसार मंत्र के दोष को शान्तकर सेतुमंत्र की सहायता से इस तरह का अनुष्ठान कर सकने से पूजा और होम आदि न करके भी मंत्र में सिद्धि प्राप्त कर सकेंगे, जैसे–

मंत्राक्षराणि चित्शक्तौ प्रोतानि परिभावयेत,
तामेव परमे व्योम्नि परमानन्दवृंहिते।।

–गौतमीय तंत्र

साधक पहले मन को संयम करके स्थिर होकर बैठकर ब्रह्मरंध्र में गुरु का ध्यान और उन्हें प्रणाम करके मंत्रार्थ की भावना करेगा।

मंत्रार्थ देवतारूपं चिन्तनं परमेश्वरि,
वाच्यवाचकभावेन अभेदो मंत्रदेवयोः।।

इष्टदेवता की मूर्ति का चिंतन करने अर्थात् देवता के शरीर और मंत्र को अभिन्न मानकर सोचने का नाम मंत्रार्थ भावना है। मंत्रार्थ की भावना करके मंत्र चैतन्य कीजिये अर्थात् अपने-अपने मूलमंत्र के पहले और बाद में 'ईं' बीज को जोड़कर हृदय में सात बार जप कीजिये। मूलाधार पद्म के भीतर जो स्वयंभू लिंग है, साढ़े तीन बलय के आकार में कुण्डलिनी शक्ति उस स्वयंभू लिंग को घेरे हुए है। मंत्र जप के समय समूचे मंत्राक्षर को उस कुण्डलिनी शक्ति के साथ गूंथा हुआ मानकर साधक साँस के ताल के साथ अर्थात् पूरक के समय चिंतन करके उस कुण्डलिनी शक्ति को उठाकर सहस्रार कमल की कर्णिका के केन्द्र में परमानन्दमय परमशिव के

साथ एकात्मीय करायेगा और रेचन के समय उस शक्ति को अपने स्थान पर लौटायेगा। इस तरह सांस के ताल के साथ यथाशक्ति जप करते हुए सांस को रोककर भावना के द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को एक बार सहस्रार में ले जायेगा और उसी क्षण मूलाधार में लौटा लायेगा। इस तरह बार-बार करते-करते सुषुम्ना के पथ में बिजली जैसा लम्बा तेज दिखाई देगा।

प्रतिदिन इस नियम से जप करने पर साधक मंत्र में सिद्धि प्राप्त करेगा, इसमें कोई संदेह नहीं है। वरना केवल माला फेर कर बाह्य अनुष्ठान करने से हजारों वर्षों में भी कोई लाभ नहीं होगा।

ब्राहमणगण यथानियम से केवल प्रणव का उच्चारण करके सिद्धि प्राप्त और मनोलय कर सकेंगे। यथाविधि उच्चारण का अर्थ जप में स्वर कम्पन, उसके अर्थ की भावना और उसमें मनोनिवेश करना है। यही प्रणव का यथार्थ उच्चारण है। जैसे 'अ-उ-म', इन तीन वर्णों के संयोग से ऊँ शब्द बना है। ब्रह्मा, विष्णु और शिवात्मक, ये तीन वर्ण सत्त्व, रजः और तमोगुण के व्यक्त बीज हैं। संगीतज्ञ विद्वानों ने उदारा, मुदारा और तारा के रूप में स्वर के तीन विभाग किये हैं। ऊँ, इस शब्द के उच्चारण के लिये जो स्वर झंकृत होगा, उसमें ये तीन विभाग रहेंगे और जीव के अवस्थान स्थल षट दल कमल से ही पहले स्वर की उत्पत्ति होगी। उसके बाद अनाहत पद्म में प्रतिध्वनित होकर सहस्रार में ध्वनित होगा। इस तरह एक तान से स्वर को संचालित करना होगा। चिल्लाकर कहने से ऐसा होगा, ऐसी बात नहीं है। मन ही मन कहने से बिल्कुल इस तरह स्वर कम्पन किया जा सकेगा। सांसारिक कार्य करते-करते इस ध्यान, इस ज्ञान में निमग्न रहा जाता है।

सदैव प्रणव के अर्थ का ध्यान और प्रणव का जप करने से साधक का चित्त निर्मल होता है। उस समय प्रत्येक चैतन्य अर्थात् शरीर में स्थित आत्मा के संबंध में यथार्थ ज्ञान पैदा होता है। ईश्वर के साथ उपासना का जो संकेत भाव है अर्थात् ऊँकार कहने से ईश्वर का स्वरूप साधक के हृदय में उदित होता है। क्यों होता है, यह बड़ी जटिल और कठिनं समस्या है। फिर भी यह निश्चित है कि प्रणव 'ऊँ' के साथ ईश्वर के बहुत ही घनिष्ठ अभिधेय संबंध हैं।

मंत्र सिद्धि के लक्षण

हृदयेग्रंथिभेदश्च सर्वावयववर्द्धनम।
आनन्दाश्रुणि पुलको देहावेशः कुलेश्वरि।
गद्‌गदोक्तिश्च सहसा जायते नात्र संशयः।।

–तंत्रसार

जप के समय हृदयग्रथिं का भेद, सर्वावयव में वृद्धि, आनन्दाश्रु, रोमांच, देहावेश और गद्‌गद भाषण आदि प्रकट होते हैं–इसमें कोई सन्देह नहीं है। इनके अतिरिक्त और भी विविध लक्षण प्रकाशित होते हैं। मनोरथ की सिद्धि ही मंत्रसिद्धि का मुख्य लक्षण है। मंत्र की सिद्धि होने पर देवता दर्शन, देवता का स्वर श्रवण, मंत्र का झंकार, शब्द श्रवण आदि और अन्य लक्षण भी दिखाई देते हैं। वास्तव में जिन्होंने मंत्रसिद्धि प्राप्त की है, वे साक्षात शिवजी के समान है, इसमें रत्तीभर भी सन्देह नहीं। संक्षेप में कहें, तो योग साधना और मंत्र साधना में कोई भेद नहीं है। क्योंकि इन दोनों का उद्‌देश्य एक है, केवल मार्ग ही पृथक-पृथक है।

शय्या शुद्धि

जो रात में शय्या पर बैठकर जप करते हैं, उनके लिये शय्या शुद्धि करना नितांत आवश्यक है। शय्या शुद्धि का मंत्र और नियम इस प्रकार है।

पहले **'ऊँ आः सुरेखे वज्ररेखे हूँ फट स्वाहा'**

इस मंत्र को पढ़कर शय्यापर त्रिकोण मण्डल आंकिये। त्रिकोण के कोण को देवी के उपासकगण नीचे की ओर और देवता के उपासक ऊपर की ओर रखेंगे। बाद में **'ह्रीं आधारशक्तये कमलासनाय नमः'**, इस मंत्र से मानस पूजा कर **'ह्रीं मृतकायनमः फट'**, कहकर शय्या पर तीन बार आघात कीजिये और चुटकी मारकर दशदिशाओं का बंधन कीजिये। उसके

बाद हाथ जोड़कर।

ऊँ शय्ये त्वं मृतरूपासि साधनीयासि साधकैः,
अतहत्र जप्यते मंत्रो ह्यस्माकं सिद्धिदा भव।।

इस मंत्र का पाठ कर प्रार्थना करके जप कीजिये।

मंत्र में सिद्धि और इन सब बातों को जो साधक विशेष रूप से जानना चाहेगा, आवश्यकता पड़ने पर वह सब सिखाया जा सकता है। शिक्षा और संसर्ग के दोष से जिन्हें मंत्र अथवा हिन्दू शास्त्र में विश्वास नहीं है, यदि वे मेरे पास आते हैं, तो श्री गुरु की कृपा से मंत्र की अलौकिक शक्ति और योग की दो चार विभूतियाँ प्रत्यक्ष दिखा सकता हूँ।

क्षमध्वं पण्डिता दोषं परपिण्डोपजीविनः।
ममाशुद्ध्यादिकं सर्वं शोध्यं युष्माभिरुत्तमैः।।

ऊँ शान्तिरेव शान्तिः।

योगीगुरु

चतुर्थ भाग

स्वर कल्प

स्वर के स्वाभाविक नियम

सर्ववर्णसंपूजितं सर्वगुणसमन्वितं।
ब्रह्ममुख पंकज-ज ब्राहमणाय नमो नमः।।

द्विजराजगामी त्रिजगत के स्वामी नारायण के हृदय कमल पर जिन द्विजराज के चरण कमल विराजित हैं उन द्विजवंशवतंश ब्रह्मांशसंभूत ब्रह्मज्ञों के चरण कमल में सिर झुकाकर प्रणाम कर स्वरकल्प आरम्भ करता हूँ।

जिस प्रकार योग साधना में श्वास-प्रश्वास के क्रियाविशेष का अनुष्ठान करते हुए जीवात्मा के साथ परमात्मा का योग कर परमार्थ की प्राप्ति होती है, ठीक वैसे ही श्वास-प्रश्वास की गति को समझकर कार्य कर सकने से प्रत्येक कार्य में सुफल मिलता है। इससे भविष्य के आपद-विपद के हाथ से अनायास बचाव होता है। प्रातःकाल शय्या से उठते समय होने वाले रोग के बारे में पता चलता है। बिना व्यय के सामान्य प्रयास से पीड़ा आदि से मुक्ति मिलती है। इसलिये स्वर संबंधी जानकारी के अनुसार कार्य कर सकने से संसार के विविध कार्यपूर्ण कार्यक्षेत्र में सभी कार्यों में सुफल प्राप्त कर स्वस्थ शरीर में दीर्घजीवी होकर समय यापन किया जा सकता है।

विश्व पिता विधाता ने जन्म के समय मनुष्य के शरीर के साथ ऐसे चमत्कार और कौशलपूर्ण अपूर्व उपाय जोड़ रखे हैं कि वह सब जान सकने से मनुष्य को सांसारिक और वैषयिक किसी भी कार्य में विफल मनोरथ होकर दुख भोगना नहीं होता। चूँकि हमें उस अपूर्व कौशल की जानकारी नहीं है, इसलिये हमारा कार्य नाश होता है, आशा टूट जाती है, हमें मनस्ताप और रोगों का भोग करना होता है। ये सब बातें जिस शास्त्र में

हैं, उसका नाम स्वरोदय शास्त्र है। जिस प्रकार यह स्वरोदय शास्त्र दुर्लभ है, स्वर का ज्ञान रखनेवाले गुरु भी दुर्लभ हैं। स्वरशास्त्र प्रत्यक्ष फल देनेवाला है। इस शास्त्र पर विस्तृत चर्चा करके पग-पग पर इसके प्रत्यक्ष फल को देखकर मैं विस्मित हुआ हूँ। इस छोटी-सी पुस्तक में समूचे स्वरशास्त्र को लिपिबद्ध करना एकदम असंभव है। साधकों के लिये केवल कुछ आवश्यक बातें ही इसमें संक्षेप में दी गई हैं।

स्वरशास्त्र की शिक्षा प्राप्त करने के लिये श्वास-प्रवास की गति के संबंध में पूरी जानकारी होनी चाहिये।

कायानगरमध्ये तु मारुतः क्षितिपालकः।

शरीर रूपी नगर में वायु राजा के समान है। प्राणवायु को निश्वास और प्रश्वास, इन दो नामों से जाना जाता है। वायु को ग्रहण करने का नाम प्रश्वास और उसका त्याग करने का नाम निश्वास है। जीव के जन्म ग्रहण से लेकर मृत्यु के आखिरी वक्त तक श्वास-प्रश्वास का कार्य प्रतिक्षण चलता रहता है। यह निश्वास भी एक समय दोनों नाक में समान रूप में नहीं वहता। यह कभी बाईं नाक तो कभी दाईं नाक में वहता है। कभी कभार दो एक पल के लिये दोनों नाक में समान रूप में वहता है। बायें नासपुट में वहने को इड़ा वहन, दायें नासपुट में वहने को पिंगला वहन तथा दोनों नासापुट में समान रूप से वहने को सुषुम्ना वहन कहा जाता है। एक नासापुट को दबाकर दूसरी नाक से रेचन करते समय समझा जा सकता है कि एक नाक से सरल भाव से श्वास का प्रवाह चल रहा है और दूसरा नासपुट मानो बन्द है। उसमें दूसरे नासापुट की तरह सरल भाव में निश्वास नहीं वह रहा है। जिस नाक से सरल भाव से श्वास वहता होगा, उस समय मानना होगा कि श्वासवहन उस नाक का है। किस नाक से श्वास वहता है, पाठकगण इस तरह जान सकेंगे। धीरे-धीरे अभ्यस्त हो जाने से किस नाक से श्वास वहता है, आसानी से उसका पता चल जायेगा। प्रतिदिन प्रातःकाल में सूर्योदय से एक नाक में एक घंटे के हिसाब से श्वास वहता है। इस तरह दिन रात के भीतर क्रमानुसार दाईं नाक में बारह बार और बाईं नाक में बारह बार श्वास वहता है। किस दिन किस नाक सें पहले श्वास की क्रिया शुरू होगी, उसका भी निर्दिष्ट नियम है। जैसे—

आदौचन्द्रः सिते पक्षे भास्करस्तु सितेतरे।
प्रतिपत्तो दिनान्याहूः त्रीणि त्रीणि क्रमोदये।।

पवनविजय स्वरोदय

शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि से पहले तीन दिन लेकर चन्द्र नाड़ी अर्थात् बाईं नाक में, और कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से तीन-तीन दिन लेकर सूर्य नाड़ी अर्थात् दाईं नाक में, इस क्रम में तीन दिन सूर्यनाड़ी अर्थात् दाईं नाक में, उसके बाद तीन दिन चन्द्र नाड़ी अर्थात् बाईं नाक में, इस क्रम में तीन-तीन दिन श्वास वहता है, अर्थात् शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, इन नौ दिनों में प्रातःकाल में सूर्योदय के समय पहले बाईं नाक और चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, इन छः दिनों में प्रातःकाल में सूर्योदय के समय पहले दाईं नाक में श्वास आरंभ होकर एक घंटा प्रवाहित होगा। बाद में विपरीत नाक में श्वास चलेगा। कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावस्या, ये नौ दिन सूर्योदय के समय पहले दाईं नाक से चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी, द्वादशी—इन छः दिनों में सूर्योदय के समय पहले बाईं नाक से श्वास आरंभ होकर एक घंटे के बाद दूसरी नाक से वहेगा। इस नियम से एक-एक घंटा करके एक एक नाक में श्वास वहता है। मनुष्य जीवन का यही श्वासप्रवाह का स्वाभाविक नियम है।

वहेत्तावद्घटिमध्ये पंचतत्त्वानि निर्दिशेत।

—स्वरशास्त्र

प्रतिदिन दिन रात आठ प्रहर में एक घंटे के हिसाब से एक-एक नाक के क्रमानुसार श्वास प्रवाह के समय पर्यायक्रम में पंचतत्त्व का उदय होता है। श्वास प्रश्वास की इस गति को समझकर कार्य कर सकने से शरीर स्वस्थ रहता है और दीर्घ जीवन प्राप्त किया जा सकता है। मोटे तौर पर सांसारिक और वैषयिक सभी कार्यों में सुफल प्राप्त करते हुए संसार यात्रा का निर्वाह किया जा सकता है।

बाईं नाक का श्वास फल

जिस समय इड़ा नाड़ी अर्थात् बाईं नाक में श्वास वहता होगा, उस समय हर तरह का स्थिर कर्म करना चाहिये। उस समय आभूषण धारण, दूर पथ की यात्रा, आश्रम में प्रवेश, राजमन्दिर और ऊँची इमारतों का निर्माण और द्रव्यों आदि का संग्रह कीजिये। इस समय कुएँ, तालाब आदि जलाशय और देवस्तंभ आदि की प्रतिष्ठा कीजिये। इस समय यात्रा, दान, विवाह, नववस्त्र परिधान, शान्ति कर्म, पौष्टिकर्म, दिव्यौषधिसेवन, रसायन कार्य, प्रभुदर्शन, बंधुता स्थापन और वहिर्गमन आदि समस्त शुभ कार्य कीजिये। वायें नासापुट में निश्वास वहते समय शुभ कार्य करने से सिद्धि प्राप्त होती है। परन्तु वायु, अग्नि और आकाश तत्त्व के उदय के समय ये कार्य नहीं करने चाहिये।

दाईं नाक का श्वास फल

जिस समय पिंगला नाड़ी अर्थात् दायें नासापुट में श्वास वहता है, उस समय कठिन और क्रूर विद्या का अध्ययन, नारी संसर्ग, वेश्यागमन, नौकादि आरोहण, दुष्टकर्म, सुरापान, तांत्रिक मत में वीर मंत्रादि सम्मत उपासना, देश आदि का ध्वंस, शत्रु को विष पिलाना, शास्त्र अभ्यास, मृगया, पशु विक्रय, ईंट, लकड़ी, पत्थर और रत्न आदि को घिसना और तोड़ना, गीताभ्यास, यंत्र और तंत्र का निर्माण, दुर्ग और पर्वत आरोहण, जुआ खेलना, चोरी करना, हाथी, घोड़ा और रथ आदि चढ़ने की शिक्षा, व्यायाम पर चर्चा, मारण और उच्चाटन आदि षटकर्म साधना, यक्षिणी, वेताल और भूत आदि साधना, औषध सेवन, लिपि लेखन, दान, क्रय, विक्रय, युद्ध, भोग, राजदर्शन, स्नानाहार आदि कर्मों का अनुष्ठान कीजिये। महादेव ने कहा है कि वशीकरण, मारण, उच्चाटन, आकर्षण, मोहन, विद्वेषण, भोजन और नारी संगम में पिंगला नाड़ी सिद्धि देनेवाली होती है।

सुषुम्ना का श्वास फल

दोनों नाक में श्वास वहते समय किसी प्रकार के शुभ या अशुभ कार्य मत कीजिये। ऐसा करने से वह सब बेकार जायेगा। इस समय योग अभ्यास और ध्यान-धारणा आदि के द्वारा केवल भगवान का स्मरण और मनन करना चाहिये। सुषुम्ना नाड़ी में वहते समय किसी को शाप या वरदान देने से वह सफल होता है।

श्वास-प्रश्वास की गति को समझकर तत्त्वज्ञान के अनुसार तिथि और नक्षत्र के अनुसार यथायथ नियम से इन समस्त कार्यों का अनुष्ठान करने से किसी भी कार्य में निराश होकर मनस्ताप नहीं करना होगा। परन्तु ये सब बातें विस्तार से बताना हो, तो एक बहुत बड़ी पुस्तक बन जायेगी। बुद्धिमान पाठक, इस संक्षिप्त अंश को पढ़कर यथायथ रूप से कार्य कर सकने से वे अवश्य ही सफल मनोरथ होंगे।

रोगों की उत्पत्ति का पूर्व ज्ञान और प्रतिकार

मैंने पहले ही बताया कि शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि से पूर्णिमा तक तीन दिन सूर्योदय के समय पहले बाईं नाक में और कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा तिथि से अमावस तक तीन दिन सूर्योदय के समय दाईं नाक में श्वास वहना स्वाभाविक नियम है—परन्तु

प्रतिपत्तो दिनान्याहुविपरीते विपर्ययः।

यदि निश्वास वायु प्रतिपदा आदि तिथि में निर्दिष्ट नियम के विपरीत रूप में वहता है, तो निश्चय अमंगल दिखाई देगा, इसमें सन्देह नहीं है। जैसे—

शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि में नींद टूटते समय सूर्योदय के समय यदि दाईं नाक में श्वास वहना शुरू हो तो उस दिन से पूर्णिमा के बीच उष्म जन्य कोई पीड़ा होगी, इसमें सन्देह नहीं है और कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा तिथि में सूर्योदय के समय यदि बाईं नाक में श्वास वहना शुरू हो तो उस

दिन से अमावस के बीच श्लेष्मा अथवा आर्द्रताजन्य कोई न कोई पीड़ा होगी ही होगी।

यदि दो पखवाड़े तक इस तरह विपरीत भाव में निश्वासवायु का वहना आरंभ होता है, तो किसी आत्मीय को भयंकर पीड़ा होगी अथवा उसकी मृत्यु होगी अथवा उस पर अन्य कोई विपदा आयेगी। यदि इस तरह तीन पखवाड़े तक चलता है तो उसकी अपनी मृत्यु सुनिश्चित है।

यदि शुक्ल अथवा कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा के दिन सुवह इस तरह विपरीत निश्वास वहना जान सकेंगे, तो उस नाक को कुछ दिन तक वन्द रखने से रोग उत्पत्ति की संभावना नहीं रहेगी। उस नाक को इस तरह वन्द रखना होगा जिससे कि इस नासपुट से होकर श्वास न वहे। इस तरह कुछ दिन दिन-रात सदैव (स्नान और आहार के समय के अतिरिक्त) नाक वन्द रख सकने से इन तिथियों में यकायक कोई रोग भोगना नहीं पड़ेगा।

यदि असावधानीवश निश्वास में व्यतिक्रम के परिणामस्वरूप कोई पीड़ा होती है तो ठीक होने तक शुक्ल पक्ष में दाईं और कृष्ण पक्ष में जिस प्रकार बाईं नाक में श्वास न वहे, वह करने से रोग शीघ्र ठीक होगा। यदि किसी प्रकार की भयंकर पीड़ा होने की संभावना हो तो उसकी तकलीफ बहुत कम होगी और होने पर भी वह थोड़े दिन के भीतर ठीक हो जायेगी। ऐसा करने से रोगजन्य कष्ट भोगना और चिकित्सक को धन देना नहीं पड़ेगा।

नाक बन्द करने के नियम

नाक में घुसने लायक पुरानी साफ रुई पुड़िया की तरह साफ कपड़े से मोड़कर उसके मुँह की सिलाई कर दीजिये। इस पुड़िया से नाक इस तरह बन्द होगी ताकि नाक में जरा भी साँस न आ सके न जा सके। जिन्हें किसी प्रकार का सिर पीड़ा है अथवा जिनका मस्तिष्क कमजोर है, वे नाक को रुई से बन्द न करके साफ चिथड़ों की पुड़िया से बन्द करेंगे।

जिस कारण से हो, जितने समय या जितने दिन तक नाक बन्द रखना जरूरी होगा, उतने समय तक या उतने दिनों तक अधिक मेहनत वाला काम, धूम्रपान, चित्कार अथवा भाग दौड़ नहीं करनी चाहिये। जो धूम्रपान नहीं छोड़ सकेंगे, वे तंबाकू का सेवन करते समय नाक को खुला रखेंगे। तंबाकू खा लेने के बाद नाक के भीतर को अच्छी तरह साफ करके नाक को पुड़िया से बन्द कर दें। जिस समय जिस किस कारण से नाक को बन्द करने की जरूरत होगी, उस समय इस नियम से कार्य करना मत भूलिये। नई रुई या गंदी रुई नाक में कभी मत डालिये।

निश्वास को बदलने के कौशल

कार्य के भेद और विभिन्न अन्य कारणों से वायु की गति को एक नाक से दूसरी नाक में बदलने की जरूरत होती है। कार्य के अनुसार सांस कब अनुकूल नाक में चलेगी, तब तक बैठे रहना किसी के लिये भी संभव नहीं है। इसलिये इच्छा के अनुसार साँस की गति को बदलने का तरीका सीखना बहुत जरूरी है। यह क्रिया बहुत ही सहज है। सामान्य चेष्टा से साँस की गति को बदला जा सकता है। जैसे :

जिस नाक में साँस चल रही है उसके विपरीत नाक को अँगूठे से दवाकर जिस नाक में साँस चल रही है उस नाक से साँस को खींचिये। बाद में उस नाक को दबा कर विपरीत नाक से साँस छोड़िये। इस तरह कुछ समय बारंबार करने से साँस की गति अवश्य बदल जायेगी। जिस नाक में साँस चल रही है उस करवट सोकर यह क्रिया करने से थोड़े ही समय में साँस की गति बदल जायेगी और साँस को दूसरी नाक में चलाया जा सकता है। इस प्रकार की क्रिया करके जिस नाक में साँस चल रही है केवल उस करवट कुछ समय सो रहने से भी साँस की गति बदल जाती है।

पाठको ! इस ग्रंथ में जहां-जहां सांस बदलने के बारे में लिखा गया

है वहां इस तरीके से सांस की गति बदलनी होगी। जो व्यक्ति अपनी इच्छानुसार इस वायु का रोध और रेचन कर सकता है, वह व्यक्ति पवन को जीतता है।

वशीकरण

आज कल अनेक लोग वशीकरण विद्या को सीखने के लिये उत्सुकता दिखाते हैं। किसी साधु संन्यासी को देखने पर अनेक लोग सब से पहले यही प्रार्थना करते हैं। तंत्र शास्त्र में वशीकरण विद्या को जिस तरह बताया गया है तदनुसार यथार्थ रूप में कार्य करना सर्वसाधारण के बस की बात नहीं है। वशीकरण प्रकरण में निश्वास की तरह सहज और अव्यर्थ फलदायक उपाय और कोई नहीं है। पाठकों की अवगति के लिये मात्र दो एक क्रियायें दी गई हैं।

चन्द्रं सूर्येण चाकृष्य स्थापयेज्जीवमण्डले।
आजन्मवशगा वामा कथितोऽयं तपोधनैः।।

सूर्यनाड़ी (पिंगला) के द्वारा चन्द्रनाड़ी को आकर्षित करके हृदय में स्थित वायु के साथ संस्थापित करके जिस औरत की भावना की जायेगी, वह औरत आजीवन साधक के बस में रहेगी।

जीवेन गृहयते जीवो जीवो जीवस्य दीयते।
जीवस्थाने गतो जीवो वाला जीवनान्तवश्यकृत।।

पहले पूरक बाद में रेचक, उसके बाद कुम्भक करके जिस औरत का चिंतन किया जायेगा, वह आजीवन बस में रहेगी।

रात्रौ च यामवेलायां प्रसुप्ते कामिनीजने
ब्रह्मवीजं पिवेद यस्तु वालाजीव हरो नरः।।

प्रहर के निशायोग में कुलकुण्डलिनी देवी की निद्रा के समय ब्रह्मवीज अर्थात् श्वास वायु का पान कर उसके बीज मंत्र का जप करते-करते साधक जिस नायिका की भावना करेगा, वह नायिका आजीवन उसके बस में रहेगी।

उभयोः कुम्भकं कृत्वा मुखे श्वासो निपीयते।
निश्चला च यदा नारी देवकन्यावशकुरु।।

कुम्भक से मुँह के रास्ते निश्वास वायु का पान कीजिये। इस तरह

करते-करते जब निश्वास वायु स्थिर होगा, उस समय जिसकी भावना की जायेगी वह बस में आं जायेगी। इस प्रक्रिया की सहायता से साधक देव कन्याओं को भी वशीभूत कर सकता है।

वशीकरण प्रकरण में अनेक अव्यर्थ फलदायक क्रियाओं का उल्लेख है। परन्तु वह सब सर्वसाधारण में प्रकाशित करना मैं उचित नहीं समझता। पशु प्रकृति वाले लोग अपनी हबस पूरी करने के लिए भी इसका प्रयोग कर सकते हैं। जो व्यक्ति काम रिपु की उत्तेजना से शिव जी द्वारा बताये गये शास्त्र वाक्य का गलत प्रयोग करता है, उसकी तरह पापी तीन लोकों में कोई नहीं है। अनेक लोग पुस्तक पढ़कर इस क्रिया का अनुष्ठान करके जब सफल नहीं होते, तो शास्त्र वाक्य पर अविश्वास करते हैं। परन्तु नियमित रूप से क्रिया का अनुष्ठान करने में त्रुटि होने के कारण ऐसा होता है, वे उसे नहीं समझ पाते है।*

वशीकरण कार्य में भेड़ की चमड़ी का आसन, कामदा नामक अग्नि, मधु, घी और लाइ द्वारा होम, पूर्व की ओर मुँह करके जप, प्रवाल, हीरे या मणिमाला से बनी अंगूठी पहनकर उँगली चलाना, वायु तत्त्व के उदय के समय, दिन के पूर्व भाग में, मेष, कन्या, धनु या मीन लग्न में उत्तर, भाद्रपद, मूला, शतभिषा, पूर्वभाद्रपद और अश्लेषा नक्षत्र में गुरुवार या सोमवार युक्त अष्टमी नवमी या दशमी तिथि में तथा वसन्त काल में क्रियानुष्ठान करने से सिद्धि होती है। इस कार्य में वाणी देवता और कलि में मंत्र संख्या का चार गुना जप करना होता है। इस नियम से कार्य कर सकने से अवश्य फल मिलेगा। अपनी इच्छानुसार कार्य करने से फल नहीं मिलेगा। निर्धारित नियम से क्रिया करके शास्त्र वाक्य की सच्चाई को जानिये। परन्तु सावधान ! कोई पाप उद्देश्य से इस कार्य का अनुष्ठान करके अपने परलोक को न बिगाड़ें।

---

* तंत्र में अधिकार और क्रियानुष्ठानों के बारे में मेरे द्वारा प्रणीत 'तांत्रिकगुरु' पुस्तक में विशेष रूप से दिया गया है। अनधिकारी व्यक्ति केवल काम्य कर्मों का अनुष्ठान करके उसका फल कैसे पा सकेगा ?

बिना औषधों के रोगों का आरोग्य

जिस प्रकार अनियमित क्रियाओं से मनुष्य के शरीर में रोग पैदा हो जाते हैं, ठीक वैसे ही औषधि का प्रयोग न करके भी केवल भीतरी क्रियाओं के द्वारा रोगों के निरामय के उपाय निश्चित किये गये हैं। चूँकि हमें भगवत प्रदत्त उन तरीकों की जानकारी नहीं है, इसलिये हम लंबे समय तक बीमार होते हैं और चिकित्सक को बिना कारण धन देते हैं। मैंने देश का भ्रमण करते समय सिद्धयोगियों और महात्माओं के निकट बिना औषधि के बीमारियों को ठीक करने के जो सब उपाय सीखे थे और उन पर परीक्षा करके उससे प्रत्यक्ष फल प्राप्त किया था, सर्वसाधारण की भलाई के लिये उनमें से कुछ अपूर्व कौशल प्रकाशित किये। पाठकगण इन उपायों को अपनाकर प्रत्यक्ष फल प्राप्त करेंगे। उन्हें लंबे समय तक बीमारी में तकलीफ झेलने, धन का व्यय करने अथवा दवाइयों से पेट भरना नहीं पड़ेगा। स्वरशास्त्र में बताये गये इन उपायों से एक बार बीमारी ठीक हो जाने से रोग के पुन आक्रमण की आशंका नहीं रहती। पाठकों से इसकी परीक्षा करने का अनुरोध करता हूँ।

ज्वर : ज्वर होने या होने का आसार होने पर उस समय जिस नाक में सांस चलती होगी, उसे बन्द कर दीजिये। ज्वर ठीक होकर शरीर के स्वस्थ होने तक इस नाक को बन्द रखना होगा। ऐसा करने पर जो ज्वर दस-पन्द्रह दिन तक रहता, वह सात-आठ दिन के भीतर अवश्य ठीक हो जायेगा। और एक बात है कि ज्वर के समय सदैव मन ही मन चाँदी जैसे सफेद रंग का ध्यान करने से फल शीघ्र मिलता है।

निशिन्दा (निर्गुण्डि) की जड़ रोगी के हाथ में बाँधने पर हर तरह का ज्वर ठीक हो जाता है।

मियादी बुखार : श्वेत अपराजिता अथवा अगस्त्य के कुछ पतों को मथकर कपड़े में बांधकर पुड़िया बनाकर बुखार आने के दिन सुबह सूंघने से मियादी बुखार ठीक हो जाता है।

सिरदर्द : सिरदर्द होने पर दोनों हाथ की कोहनियों के ऊपरी भाग को कपड़े की पट्टी अथवा रस्सी से जोर से बांधकर 5-7 मिनट रखने से

सिरदर्द ठीक हो जायेगा। इस तरह जोर से बांधना होगा जिससे कि रोगी के हाथ को जोर का दर्द हो। दर्द ठीक होने के बाद बंधन खोल दीजिये।

और एक तरह का सिरदर्द है जिसे साधारणतया आंधासीसी या अधकपारी दर्द कहते हैं। इसमें कपाल के बीच से या तो बाईं या दाईं तरफ कपाल के आधे भाग में भीषण दर्द होता है। यह दर्द प्रायः सूर्योदय से आरंभ होता है और दिन जितना चढ़ता है, दर्द भी उसके अनुपात में बढ़ता जाता है। दोपहर के बाद कम हो जाता है। इस बीमारी के होने पर जिस तरफ कपाल में दर्द होता होगा उस तरफ के हाथ की कोहनी को ऊपर बताये नियम से जोर से बांध दीजिये। इस तरह करने से थोड़े समय के भीतर दर्द कम होकर रोग ठीक हो जायेगा। यदि अगले दिन पुनः सरदर्द आरंभ होता है और प्रतिदिन एक खास नाक में सांस चलते समय सरदर्द आरम्भ होता है, तो सिर में दर्द का आरम्भ होते ही जिस नाक में सांस चलती होगी, उस नाक को बन्द कर दीजिए और पहले की तरह कोहनी के ऊपरी भाग को बांध देते ही रोग ठीक हो जायेगा। आधासीसी दर्द में यह क्रिया करने से आश्चर्यजनक फल को देखकर आप विस्मित होंगे– इसमें सन्देह नहीं।

सिरपीड़ा : सिर की पीड़ा से ग्रस्त रोगी तड़के सुबह शय्या से उठते ही नाक से ठंडा पानी पियेगा। इससे मस्तिष्क ठंडा होगा। सिर में पीड़ा नहीं होगी और सर्दी नहीं लगेगी। यह क्रिया विशेष कष्ट साध्य नहीं है। एक पात्र में ठंडा पानी रखकर उसके भीतर नाक डूबोकर धीरे-धीरे गले के भीतर पानी को खींचना होगा। अभ्यास करने पर यह क्रिया धीरे-धीरे आसान हो जायेगी। सिरपीड़ा होने पर चिकित्सक रोगी के ठीक होने की आशा छोड़ देते हैं। रोगी भी भीषण तकलीफ में होता है। परन्तु उपर्युक्त प्रक्रिया को करने से अवश्य ही आशातीत फल मिलेगा।

उदरामय, अजीर्ण आदि रोग : भोजन या नाश्ता हमेशा दाईं नाक में सांस चलते समय लेना चाहिये। प्रतिदिन इस नियम से भोजन करने पर खाने की चीजें आसानी से हज्म हो जाती है और कभी भी बदहजमी नहीं होती।

जिन्हें उदरामय या बदहजमी की शिकायत है, यदि वे प्रतिदिन इस नियम से भोजन करेंगे, तो खाने की चीजें आसानी से हज्म हो जायेगी और रोग धीरे-धीरे ठीक हो जायेगा। आहार के बाद कुछ समय के लिये बाईं करवट सो जाइये। जिनके पास समय कम है, उन्हें भी जिस प्रकार भोजन के बाद 10-15 मिनट बाईं नाक में सांस चले, वैसी व्यवस्था करनी होगी। अर्थात् पूर्वोक्त नियम से दाईं नाक को रुई से बन्द कर दीजिये। भारी भोजन होने पर इस नियम का पालन करने पर खाने की चीजें शीघ्र ही हज्म हो जायेगी।

स्थिर होकर बैठकर अपलक आँखों से नाभिमण्डल के प्रति नजर डालकर नाभिकन्द का ध्यान करने से सप्ताह के भीतर उदरामय रोग ठीक हो जायेगा।

सांस रोकते हुए नाभि को खींचकर एक सौ बार नाभि की गांठ को मेरुदण्ड से जोड़ने पर आंव आदि उदरामय से जात समस्त दर्द ठीक हो जाते हैं, जठराग्नि तेज होती है तथा पाचन शक्ति में वृद्धि होती है।

प्लीहा : रात को शय्या पर सोते समय और प्रातःकाल शय्या त्याग के समय हाथ-पैर को सिकोड़ कर लम्बे तानने चाहिए। फिर इस करवट उस करवट मुडकर समूचे शरीर को सिकोड़ना और फैलाना चाहिए। प्रतिदिन 4-5 मिनट इस तरह करने से प्लीहा और यकृत की बीमारी ठीक हो जायेगी। हमेशा ऐसा करने से प्लीहा और यकृत की बीमारी के लिये तकलीफ नहीं उठानी होगी।

दन्तरोग : प्रतिदिन जितनी बार मल और मूत्र का त्याग कीजिये, उस समय ऊपर और नीचे दोनों तरफ के दांतों को मिलाकर थोड़ा जोर से दबाकर रखिये। मल और मूत्र जब तक निकलता है, तब तक दांतों को दबाकर रखना होगा। यह क्रिया दो-चार दिन करने से शिथिल मसूडे मजबूत हो जाते हैं। हमेशा इसका अभ्यास करने से मसूडे मजबूत होते है, दांत हमेशा कार्यक्षम रहते हैं और दांतों में किसी प्रकार के दर्द होने का भय नहीं रहता।

हवा रुकना : छाती, पीठ या कंकाल में अथवा किसी भी स्थान पर यदि हवा रुक जाती है अथवा किसी अन्य प्रकार की पीड़ा होती है, तो

उसी क्षण जिस नाक में सांस चलती होगी, उस नाक को बन्द कर दीजिये। तब दो-चार मिनट में अवश्य ही पीड़ा कम हो जायेगी।

दमा : जिस समय दमा उठेगा या सांस फूलेगी, उस समय जिस नाक में सांस चलती होगी उस नाक को बन्द कर दूसरी नाक में सांस की गति को बदल दीजिये। उसके बाद 10-15 मिनट में दमे या सांस का जोर कम हो जायेगा। प्रतिदिन इस तरह करने से एक मास के भीतर पीड़ा कम हो जायेगी। दिन के समय जितना अधिक समय यह क्रिया की जायेगी, रोग उतना शीघ्र ठीक हो जायेगा। दमे और सांस उठने की तरह तकलीफदेह पीड़ा और नहीं है। इस दमे और सांस जन्य पीड़ा में वृद्धि के समय इस नियम का पालन करने पर किसी प्रकार की औषधि का प्रयोग किये बिना आश्चर्यजनक रूप से रोग ठीक हो जाता है।

वात या बादी : प्रतिदिन भोजन के बाद सिर पर कंघी कीजिये। कंघी को इस तरह चलाना होगा जिससे कि कंघी के दांत सिर को छुए। इस समय वीरासन पर बैठिये। अर्थात् दोनों पैर को पीछे की ओर मोडकर उनको दबाकर बैठिये। इस समय 15 मिनट वीरासन पर बैठकर कंघी करनी होगी। प्रतिदिन दो बार भोजन के बाद इस क्रिया का अभ्यास करने पर काफी पुरानी बात की बीमारी धीरे-धीरे ठीक हो जाती है। इस तरह बैठकर पान या तंबाकू खाने से नुकसान की मात्रा कम होती है। यदि स्वस्थ व्यक्ति इस नियम का पालन करेगा, तो उसे वात की बीमारी होने की आशंका नहीं रहती। रबड़ या प्लास्टिक की कंघी कदापि इस्तेमाल न करें। सींग या लकड़ी की कंघी का इस्तेमाल कीजिये। लकड़ी की कंघी सबसे बढ़िया है।

नेत्र रोग : प्रतिदिन प्रातः काल शय्या से जागने के बाद मुँह में जितना पानी आयेगा उतना पानी रखकर और 20-25 बार पानी के छींटे आँखों में मारकर उन्हें धो डालिये। उसके बाद कपाल को 4-5 बार धोने के बाद मुँह से पानी फेंक दीजिये। प्रतिदिन दो बार भोजन के बाद हाथ धोते समय कम से कम 10 बार आँखों में पानी के छींटे मारिये। और भी यदि किसी समय मुँह धोयें तो उस समय आँखों और कपाल को धोना मत भूलें।

प्रतिदिन स्नान करने से पहले तेल की मालिश करते समय सबसे

पहले पैरों के अंगूठों के नाखूनों को तेल से भिगोकर उसके बाद पूरे शरीर में तेल की मालिश कीजिये।

ऐसे कुछ नियम नेत्रों के लिये विशेष लाभकारी हैं। ऐसा करने से दृष्टि शक्ति में वृद्धि होती है, नेत्र ठंडे रहते हैं और नेत्रों में किसी प्रकार की पीड़ा होने की संभावना नहीं रहती। नेत्र मनुष्य का परम धन है। इसलिये प्रतिदिन इस नियम का पालन करना कभी न भूलें।

वर्षफल निर्णय

चैत्रमास की शुक्ल प्रतिपदा तिथि में प्रातःकाल से अर्थात् चन्द्रवासर के आरम्भ होने के समय से तथा दक्षिणायन और उत्तरायण के प्रारंभ में विद्वान व्यक्तिगण तत्त्व साधना से भेदा-भेद का निरूपण और निरीक्षण करेंगे। यदि इस समय चन्द्रनाड़ी वहती है और पृथ्वी तत्त्व, जल तत्त्व अथवा वायु तत्त्व का उदय होता है, तो धरती सर्व शस्यशालिनी होकर देश में खुशहाली आती है। परन्तु यदि अग्नि तत्त्व या आकाश तत्त्व का उदय होता है, तो धरती पर घोर भय और भीषण अकाल पड़ता है। यदि इस समय सुषुम्ना नाडी में सांस चलती है, तो हर तरह का कार्य व्यर्थ जाता है, धरती पर राष्ट्रविप्लव दिखाई देता है, महामारी का प्रकोप होता है तथा मानव समाज को काफी दुःख उठाना पड़ता है।

मेष संक्रमण के दिन अर्थात् महाविषुव संक्रान्ति के दिन प्रातः काल यदि पृथ्वी तत्त्व का उदय होता है—तो अतिवृष्टि, राज्य में वृद्धि, खुशहाली, सुख और सौभाग्य में वृद्धि तथा धरती शस्यशालिनी होती है। जल तत्त्व के उदय में भी ऐसा ही फल होता है। यदि अग्नि तत्त्व का उदय होता है, तो अकाल, राष्ट्रविप्लव, अल्पवृष्टि और भयंकर रोगों की उत्पत्ति होती है। वायुतत्त्व का उदय होने पर उत्पात, उपद्रव, भय, अतिवृष्टि अथवा अनावृष्टि होती है और आकाश तत्त्व का उदय होने पर मनुष्य पर उदगार, सन्ताप, ज्वर और भय रहता है तथा पृथ्वी में अनाज की हानि होती है।

पूर्णे प्रवेशने श्वासे स्व-स्व तत्त्वेन सिद्धिदः।

स्वरोदय नास्त्र

मेष संक्रान्ति काल में जब जिस भाग के नासापुट में वायु पूर्ण रहता है अथवा निश्वास वायु प्रवेश करता है, यदि उस समय उस नाक में निर्दिष्ट तत्त्वों का उद्रेक हो तो उस वर्ष का फल शुभ होता है अन्यथा अशुभ समझना होगा।

यात्रा प्रकरण

यदि किसी कार्य के लिये कहीं जाना हो तो यात्रा आरंभ करते समय नाक की जिस तरफ सांस चलती होगी, उस तरफ के पैर को पहले बढ़ाकर यात्रा करने से शुभ फल मिलता है।

वामाचार प्रवाहेन न गच्छेत पूर्व-उत्तरे।
दक्षनाड़ीप्रवाहे तु न गच्छेत याम्यपश्चिमे।।

–पवन विजय स्वरोदय

जिस समय बाईं नाक में सांस चलती होगी, उस समय पूर्व और उत्तर दिशा में मत जाइये और जिस समय दाईं नाक में सांस चलती होगी उस समय दक्षिण और पश्चिम दिशा में मत जाइये। उक्त समय में इन दिशाओं में जाने से महाविघ्न पैदा होता है। यहाँ तक कि यात्रा करनेवाले व्यक्ति की घर लौटने की संभावना नहीं रहती।

यदि शुभ कार्य के लिये यात्रा करनी होती है, तो इड़ानाडी में सांस चलते समय जाने से उसका फल शुभ होता है। यदि किसी विषम कार्य अर्थात् बुरे कार्य के लिये जाना पड़े तो जिस समय पिंगला नाड़ी में सांस चलती है, उस समय यात्रा करने से सिद्धि होगी। यदि विद्वान व्यक्तिगण शुक्रवार या शनिवार के दिन कहीं जाना समझते हैं तो मिट्टी में सात बार पैर पटककर और किसी अन्य दिन जाना हो तो ग्यारह बार पैर पटककर यात्रा करेंगे। परन्तु गुरुवार के दिन मिट्टी में आधा पैर रखकर यात्रा करने से वांछित फल प्राप्त होता है। यदि किसी कार्य के लिये शीघ्र जाना हो,

चाहे वह मंगलजनक कार्य हो, शत्रु के साथ झगड़ा करना हो अथवा किसी प्रकार की हानि को रोकना हो, यात्रा के समय जिस तरफ की नाक में सांस चलती होगी, उस तरफ के अंग को हाथ से छूना होगा। उसके बाद उस तरफ के पैर को पहले आगे बढ़ाकर यात्रा कीजिये। यदि उस समय चन्द्र नाडी में सांस चलती है, तो 4 बार और सूर्य नाडी में हो तो 5 बार मिट्टी में पैर पटक कर जाइये। उपर्युक्त नियम से यात्रा करने से यात्री के साथ किसी का झगड़ा नहीं होता और उसे किसी प्रकार का नुकसान नहीं होता। यहाँ तक कि आपत्तियों और विपत्तियों का सामना किये बिना वह सही सलामत घर लौटता है। इस शिव वाक्य में जरा भी सन्देह नहीं है।

कोई कोई स्वर तत्त्वविद पण्डित कहते हैं कि दूर देश की यात्रा करनी हो तो चन्द्र नाड़ी में सांस चलते समय यात्रा करें, तो वह मंगल जनक होगी और यदि पास की किसी जगह जाना हो तो सूर्यनाड़ी ही कल्याणकारी होती है। सूर्य नाड़ी या दाईंनाक में सांस चलते समय यात्रा कर सकने से बहुत शीघ्र कार्य सिद्ध होता है।

आक्रम्य प्राणपवनं समारोहेत वाहनम्,
समुत्तरेत पदं दत्त्वा सर्वकार्याणि साधयेत।।

-स्वरोदय शास्त्र

किसी प्रकार के वाहन पर चढ़कर किसी कार्य के लिये जाना हो तो प्राणवायु को खींचकर यात्रा कीजिये। उस समय जिस नाक में सांस चलती होगी उस तरफ के पैर को पहले बढ़ाकर वाहन पर चढ़िये। तब कार्य अवश्य ही सिद्ध होगा। परन्तु वायु, अग्नि या आकाश तत्त्व के उदय के समय मत जाइये। स्वर कीं जानकारी के अनुसार यात्रा करने से शुभलगन देखने के लिये ज्योतिष महोदय के पास जाने की जरूरत नहीं होगी।

गर्भाधान

ऋतुस्नान के चौथे दिन से षोलहवें दिन तक गर्भाधान का समय है। ऋतुस्नान करनेवाली नारी चन्द्र-सूर्य के संयोग से पृथ्वी तत्त्व या जल तत्त्व के उदय के समय शंखवल्ली या गाय का दूध पीकर पति के बाईं ओर सोकर पति के निकट पुत्र की कामना करे। सूर्य नाड़ी और चन्द्र नाड़ी का एकत्र संयोग कर ऋतु की रक्षा करने से पुत्र संतान पैदा होती है। चन्द्र और सूर्य के संयोग में अर्थात् रात्रि काल में जिस समय पुरुष की सूर्य नाड़ी में सांस चलती होगी, यदि उस समय नारी की चन्द्र नाड़ी में सांस चले तो उस समय दोनों संगत होंगे।

विषमांके दिवारात्रौ विषमांके दिनाधिपः।
चन्द्रनेत्राग्नितत्त्वेषु वन्ध्या पुत्रमवाप्नुयात।।

–स्वरोदय शास्त्र

क्या दिन या क्या रात, यदि सुषुम्ना नाड़ी में सांस चलती है अथवा सूर्यनाड़ी में सांस चलती है और यदि उस समय अग्नि तत्त्व का उदय होता है, उस समय ऋतु की रक्षा करने से बन्ध्या नारी भी पुत्रवती होगी। जिस समय सुषुम्ना नाड़ी दाईं नाक में चलती है, उस समय ऋतु रक्षा करने से पुत्र तो पैदा होगा, परन्तु शिशु हीनअंग वाला और कृश होगा। यदि नारी और पुरुष दोनों की समान नाक में सांस चलती है तो गर्भ का संचार नहीं होगा। जलतत्त्व के उदय के समय गर्भाधान होने पर उस गर्भ में जो संतान होगी, वह धनी, सुखी और भोगी होगी और उसके यश और कीर्त्ति दिशा-दिशाओं में फैलेगी। पृथ्वी तत्त्व के उदय के समय गर्भाधान होने पर संतान बड़ी अमीर, सुखी, और सौभाग्यशाली बनेगी। पृथ्वी तत्त्व के उदय के समय गर्भ संचार होने पर पुत्र और जल तत्त्व के उदय के समय गर्भ संचार होने पर कन्या पैदा होती है। अग्नि, वायु और आकाश तत्त्व के उदय के समय गर्भ होने पर गर्भपात होगा या उस गर्भ से सन्तान के भूमिष्ठ होते ही वह नष्ट हो जायेगी।

कार्य सिद्धिकरण

किसी कार्य सिद्धि के लिये किसी के पास जाना हो तो जिस नाक में सांस चलती होगी उस तरफ के पैर को पहले बढ़ाकर चलिये। परन्तु वायु, अग्नि अथवा आकाश तत्त्व के उदय के समय यात्रा मत कीजिये। गंतव्य स्थान पर पहुंचने के बाद जिस नाक में सांस चलती होगी, जिसके पास कार्य है, उसे उस तरफ रखकर बात करने से कार्य अवश्य सिद्ध होगा। नौकरी आदि के लिये जाते समय इस नियम से कार्य करने पर सुफल मिलेगा। मुकद्दमे आदि कार्य में उपर्युक्त नियम से न्यायाधीश के पास हाजिर होने से मुकद्दमे में जीत होती है।

मालिक या किसी उच्च अधिकारी के साथ बातचीत करने की जरूरत हो, तो उस समय जिस नाक में सांस चलती होगी, उसे उस तरफ रखकर बातचीत कीजिये। ऐसा करने से आप मालिक या अधिकारी का प्रिय बन सकेंगे। नौकरीपोष उपजीवी व्यक्तियों के लिये यह कम सुविधा की बात नहीं है। उन्हें यत्न के साथ इस क्रिया पर ध्यान देना चाहिये।

जिस नाक में सांस चलती होगी, उस ओर को आश्रय कर कोई भी कार्य करने से उसमें सफलता मिलेगी, परन्तु

शत्रु वशीकरण

कार्य में इसकी विपरीत क्रिया को अपनाना होगा। अर्थात् जिस नाक में सांस चलती होगी, शत्रु को उसके विपरीत दिशा में रखकर बातचीत कीजिये। ऐसा करने से घोर शत्रु भी आपके अनुकूल कार्य करेगा।

उभयोः कुम्भकं कृत्वा मुखे श्वासो निपीयते,
निश्चला च यदा नारी घोर शत्रुवशं कुरु।।

–पवन विजय स्वरोदय

कुम्भक करके मुंह से निश्वास वायु को पीजिये। ऐसा करते-करते

जब निश्वास वायु स्थिर हो जाएगा, उस समय शत्रु को मन में सोचिये। तब घोर शत्रु भी आपके बस में रहेगा। चन्द्र नाड़ी के वहते समय बाईं ओर सूर्य नाड़ी के वहते समय दाईं ओर और सुषुम्ना नाड़ी के वहते समय मध्य भाग में रह कर कार्य करने से विवाद में जीत होती है।

यत्र नाड्यां वहेद्वायुस्तदन्तः प्राणमेव च,
आकृष्य गच्छेत कर्णान्तं जयत्येव पुरन्दरम।।

–योग स्वरोदय

जिस नाड़ी में वायु वहता होगा उसमें स्थित प्राण वायु को कानों तक खींचकर जिस नाक में सांस चलती होगी पहले उस तरफ के पैर को बढ़ाकर आरंभ करने से शत्रु को पराजित किया जा सकता है।

अग्नि निर्वापन का कौशल

देश में प्रतिवर्ष आग लग कर अनेक लोग अपना सब कुछ खो बैठते हैं। यदि निम्नलिखित उपाय की जानकारी हो तो बहुत ही आसानी और आश्चर्य रूप से आग को बुझाया जा सकता है।

आग लगने पर उसकी गति जिस ओर है, उस ओर खड़े होकर जिस नाक में सांस चलती होगी उस नाक से वायु को खींचकर उसी नाक से पानी पीजिये। एक छोटे लोटे में किसी भी व्यक्ति द्वारा लाये गये पानी से यह कार्य हो सकेगा। उसके बाद सात रति (चुल्लू) पानी को

उत्तरस्यांच दिगभागे मारिचो नाम राक्षसः।
तस्य मूत्रपुरीषाभ्यां हुतो वह्निः स्तम्भ स्वाहा।।

इस मंत्र से अभिमंत्रित कर आग में डालिये। यह क्रिया न करके भी उपर्युक्त प्रक्रिया को अपनाने से सुफल मिलेगा। अनेक बार इसकी सच्चाई को परख कर मैं विस्मित हुआ हूँ। इससे अनेक लोगों की धन दौलत बचाई गई है।

रक्त साफ करने का उपाय

प्रतिदिन यथा नियम शीतली कुम्भक करने से कुछ दिन के भीतर शरीर का रक्त साफ और तेजोदीप्त होता है। शीतली कुम्भक का नियम इस प्रकार है :

जिह्वया वायुमाकृष्य उदरे पूरयेच्छनैः।
क्षणंच कुम्भकं कृत्वा नासाभ्यां रेचयेत पुनः।।

–गोरक्ष संहिता

जीभ से वायु को खींचिये अर्थात दोनों होंठों को नुकीला बनाकर बाहर के वायु को धीरे-धीरे खींचिये। इस तरह यथासाध्य वायु को खींचकर मुंह में बन्द करके कौर निगलने की तरह वायु को पेट के भीतर लीजिये। बाद में इस वायु को कुम्भक द्वारा धारण करके उसे दोनों नाक से रेचन कीजिये। इस नियम से वायु को बार-बार खींचने से कुछ दिन बाद रक्त साफ हो जायेगा और शरीर कंदर्प के समान कांतियुक्त होगा। शीतली कुम्भक करने से अजीर्ण, कफ और पित्त जन्य रोग पैदा नहीं होते। चर्मरोग आदि में रक्त को साफ करने के लिए टानिक (Tonic)k का इस्तेमाल न करके इस क्रिया का प्रयोग करने से देखेंगे कि टानिक की तुलना में इससे शीघ्र-स्थायी फल मिलेगा।

प्रतिदिन दिन रात के भीतर कम से कम तीन चार बार 5-7 मिनट स्थिर होकर बैठकर इस तरह मुंह से वायु को खींचकर नाक से छोड़ना होगा। मोटे तौर पर जितनी अधिक बार यह क्रिया करेंगे, उतना शीघ्र सुफल मिलेगा, इसमें कोई संदेह नहीं है।

मैल, गन्दागीपूर्ण, दूषित वायु युक्त स्थान, वृक्ष के नीचे, मिट्टी के तेल का दीया जलने वाले घर के भीतर और खाने की चीज पचने से पहले यह क्रिया नहीं करनी चाहिये। वायु का रेचन कर लेने के बाद जिस प्रकार सांस न चढ़े उसके प्रति विशेष ध्यान देना होगा। विशुद्ध वायु पूर्ण स्थान में स्थिर आसन पर बैठकर धीरे-धीरे रेचक और पूरक कीजिये। इस प्रक्रिया से कठिन उदरशूल की बीमारी और छाती तथा पेट में किसी भी प्रकार की भीतरी पीड़ा हो तो वह अवश्य ठीक हो जाएगी।

कुछ एक आश्चर्य संकेत

(एक) ज्वर हो अथवा कोई अन्य पीड़ा हो अथवा बड़े फोड़े हो, किसी प्रकार की पीड़ा के लक्षण दिखाई देने पर उस समय जिस नाक में साँस चलती होगी, उस नाक को उसी क्षण बंद कर दीजिये। जितने समय या जितने दिन तक शरीर में स्वाभाविक अवस्था नहीं आयेगी, तब तक उस नाक को बन्द करके रखना होगा। तब शरीर शीघ्र स्वस्थ हो जायेगा और अधिक दिन तक रोग भोगना नहीं पड़ेगा।

(दो) राह चलने अथवा किसी अन्य प्रकार के परिश्रमजनक कार्य करने के बाद यदि शरीर थक जाता है अथवा इस कारण से धातु गर्म हो जाता है, तो कुछ देर तक दाईं करवट सो जाइये। ऐसा करने पर थकावट शीघ्र दूर हो जायेगी और शरीर स्वस्थ होगा।

(तीन) प्रतिदिन भोजन के बाद हाथ मुंह धोकर कंघी (लकड़ी की कंघी प्रशस्त है) कीजिये। कंघी को सिर पर इस तरह चलाना होगा ताकि उसके कांटे सिर को छूए। ऐसा करने से सिर पीड़ा और ऊर्ध्वग वायु रोग संबंधी किसी प्रकार की पीड़ा और वात की बीमारी पैदा होने का भय नहीं रहेगा। यदि ऐसी कोई पीड़ा हो तो भी वह नहीं बढ़ेगी, वह ठीक हो जाएगी।

(चार) धूप तेज रहते समय किसी स्थान को जाना हो तो रुमाल, चद्दर अथवा तोलिये से दोनों कान को ढक देने से धूप में घूमने पर भी शरीर को लू नहीं लगेगी अथवा धूप के कारण शरीर को कोई तकलीफ नहीं होगी। दोनों कान को इस तरह ढकना होगा जिससे कि कान पूरी तरह छिप जायें और उनमें जरा-सी भी हवा नही लगे।

(पांच) यदि स्मरण शक्ति कम हो जाए तो सिर पर लकड़ी की एक कील रखकर दूसरी एक कील से उस पर धीरे-धीरे चोट कीजिये।

(छः) प्रतिदिन पद्मासन में आधा घंटा बैठकर दांत के मूल में जीभ के अग्रभाग को दबाकर रखने से सब बीमारियाँ ठीक हो जाती हैं।

(सात) ललाट के ऊपर पूर्णचन्द्र के समान ज्योति का ध्यान करने से आयु में वृद्धि होती है और कोढ़ की बीमारी ठीक हो जाती है। दृष्टि के सामने सदैव पीले रंग की उज्ज्वल ज्योति का ध्यान करने से बिना

औषध के सब बीमारियाँ ठीक हो जाती हैं और शरीर हृष्ट-पुष्ट रहता है। माथा गरम होने अथवा सिर चकराने से माथे में श्वेत वर्ण अथवा पूर्ण शरच्चंद्र का ध्यान करने से 5-7 मिनट में प्रत्यक्ष फल दिखाई देगा।

(आठ) प्यास लगने पर ऐसा सोचिये कि जीभ पर अम्ल रस युक्त चीज है। यदि शरीर गर्म होता है तो शीतल वस्तु और ठंडा हो तो गर्म वस्तु का ध्यान कीजिए।

(नौ) प्रतिदिन दो बार, सुबह एक बार और शाम को एक बार स्थिर आसन पर बैठकर नाभि पर एकटक दृष्टि रखकर नाभि में वायु धारण करने पर और नाभिकंद का ध्यान करने पर मंद अग्नि, कठिन अजीर्ण, उत्कट अतिसार आदि हर तरह के उदरामय रोग अवश्य ठीक होंगे। इससे पाचन शक्ति और भूख बढ़ेगी।

(दस) तड़के सुबह जब नींद टूटती है तो जिस नाक में सांस चलती होगी उस तरफ के काख को मुंह में छूकर शय्या से जागने पर अभिष्ट सिद्ध होता है।

(ग्यारह) रक्त अपामार्ग की जड़ को हस्त में धारण करने से भूत और प्रेत जन्य उत्पन्न समस्त ज्वर ठीक हो जाते हैं।

(बारह) इमली के छोटे पौधे को उखाड़ कर उसकी जड़ को जच्चा के सामने के बाल में बांध दीजिये ताकि इस जड़ की बू जच्चा की नाक में जाये। तब जच्चा को उसी क्षण प्रसव हो जाएगा। प्रसव के बाद बाल के साथ इमली की जड़ को तत्काल कैंची से काट कर फेंक दीजिये। वरना जच्चा की नाड़ी बाहर तक निकल जाने की संभावना है। जिस समय जच्चा को अत्यधिक प्रसव पीड़ा होगी, उस समय न घबड़ा कर यह उपाय करने का अनुरोध है। श्वेतपुनर्नवा की जड़ कूट कर जच्चा की जननेन्द्रिय के भीतर रखने से शीघ्र ही आराम से प्रसव हो जाएगा।

(तेरह) जो व्यक्ति दिन के समय बाईं नाक में और रात्रि काल में दाईं नाक में साँस ले सकता है, उसके शरीर में किसी प्रकार की पीड़ा पैदा नहीं हो सकती। इससे आलस दूर होता है और प्रतिदिन चेतना में वृद्धि होती है। दस-पंद्रह दिन कपास से नाक को बंद कर इस तरह अभ्यास करने से सांस अपने आप इस नियमानुसार चलेगी।

(चौदह) प्रातःकाल और शाम के समय नीबू के पत्ते को सूँघने से पुराना ज्वर और अनियमित रूप से होने वाला ज्वर ठीक हो जाता है।

(पन्द्रह) प्रतिदिन एकाग्र चित्त से श्वेत, कृष्ण और लोहित आदि वर्णों का ध्यान करने से शरीर में स्थित समस्त विकार नष्ट होते हैं। इसलिए ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर हिंदुओं के नित्य ध्येय है। यदि ब्राह्मण नियमित रूप से त्रिसंध्या करेंगे, तो वे समस्त रोगों से मुक्त होकर स्वस्थ शरीर में जीवन यापन कर सकेंगे। खेद की बात है कि हमारे देश के ब्राह्मणों में से अनेक लोग आजकल संध्या आदि करके समय का दुरुपयोग नहीं करना चाहते हैं। जो करते हैं, वे भी ठीक तरह से संध्या आदि करना नहीं जानते। संध्या का उद्देश्य क्या है, यहाँ तक कि संध्या—गायत्री का अर्थ तक वे नहीं जानते। प्राणायाम आदि का अनुष्ठान भी ठीक तरह से नहीं होता। संध्या के संस्कृत वाक्यों का उच्चारण करने के अतिरिक्त वे और कुछ नहीं करते। संध्या के द्वारा क्या किया जाता है,उसका सिर पैर और नामगंध तक नहीं समझते। हमारा विश्वास है कि भाव को हृदयंगम नहीं करने से भक्ति नहीं आ सकती। इस तरह की संध्या करने की बजाय भक्तियुक्त चित्त से अपनी मातृभाषा में भगवान को हृदय से प्रार्थना करने से उससे अधिक सुफल की आशा की जा सकती है। परमेश्वर भगवान ने तो महाराष्ट्रीय वंश में जन्म नहीं लिया जिससे कि वे संस्कृत के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा को नहीं समझेंगे ? संध्या प्रक्रिया में प्राणायाम का जिस तरह विधान है, उससे प्राणायाम की क्रिया, ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी के ध्यान से क्रमशः लोहित, कृष्ण और श्वेत वर्ण के परिचिंतन के द्वारा एक साथ ये दो महान क्रियायें अनुष्ठित होती हैं। इनमें से एक क्रिया के कितने गुण हैं, वह कोई नहीं समझता। त्रिसंध्या में गायत्री के ध्यान में भी इस तरह के रंगों का चिंतन किया जाता है। हम अपनी मोटी बुद्धि के कारण आर्य ऋषियों द्वारा प्रवर्त्तित संध्या और पूजा आदि के महत उद्देश्य को समझने में अक्षम हैं, फिर भी अपने आप को तेज दिमाग वाला मानकर इन सब को यह कह कर अस्वीकार करने में नहीं हिचकिचाते कि ये सब विकृत मस्तिष्क का प्रलाप है। परंतु यह बात निश्चित रूप से समझ रखिये कि हिंदू देवी-देवताओं की विभिन्न मूर्त्तियों, विभिन्न रंग, जो सब शास्त्र

में हैं, वह बेकार नहीं है। समस्त प्रकार की धर्म साधना और तपस्या का मूल है स्वस्थ शरीर।

यदि शरीर स्वस्थ नहीं रहेगा और मनुष्य दीर्घजीवी नहीं होगा, तो धर्म साधना और धन अर्जन आदि किसी कार्य में नहीं आएंगे। असीम ज्ञान संपन्न आर्य ऋषियों ने शरीर को स्वस्थ रखने और परमार्थ की साधना करने के सहज उपाय के रूप में देवी-देवताओं के विभन्न रंग निर्देशित किए हैं। संध्या उपासना करते समय जिन श्वेत, रक्त और श्याम आदि रंगों का ध्यान करना होता है, उससे वायु, पित्त और कफ आदि त्रिधातु का साम्य होता है और शरीर स्वस्थ रहता है। इसलिए उस युग के ब्राह्मण काफी अनियमों में (आजकल के वैज्ञानिक दृष्टिकोण से) रहकर भी स्वस्थ शरीर में निरोग और दीर्घजीवी हो सकते थे। प्रातःकाल में नींद टूटते ही सिर पर स्थित श्वेतकमल में श्वेतवर्ण गुरुदेव और रक्तवर्ण उनकी शक्ति का ध्यान करने की विधि है। ऐसा करने से शरीर कितना स्वस्थ रहता है, वह विलायती बाबू क्या समझेंगे ? जो भी हो, यदि कोई ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी की मूर्त्तियों का ध्यान अथवा गुरु या उनकी शक्ति का ध्यान कर पौतलिक या जड़ के उपासक बनकर अथवा कुसंस्कार से आच्छन्न होकर अंधेरे में डूबना नहीं चाहता और सभ्यता के उजियारे में रहकर कम से कम श्वेत, लोहित और श्याम वर्ण का ध्यान करता है तो उसे आशातीत फल मिलेगा। रंग का ध्यान करने से तो आपका रंग काला नहीं हो जायेगा ? वरन् बिस्कुट, पावरोटी खाने वाला आपका जीर्ण शीर्ण और बदरंग शरीर सोने की तरह बन जाएगा। जो भी हो, मैं सब से इन बातों की परीक्षा लेने का अनुरोध करता हूँ।

(सोलह) पुरुषों की दांईं नाक में और नारियों की बाईं नाक में सांस चलते समय दाम्पत्य संभोग कीजिये। इससे दोनों का शरीर स्वस्थ रहेगा और दाम्पत्य प्रेम में वृद्धि होगी। इससे प्रणयिनी भी वशीभूता रहेगी।

(सत्रह) संभोग के थोड़ी देर बाद नारी पुरुष दोनों को पेट भर के ठंडा पानी पीना चाहिए। इससे शरीर स्वस्थ रहता है।

(अठारह) प्रतिदिन दस ग्राम घी के साथ आठ-दस काली मिर्च भूनकर पीने से रक्त साफ होता है और शरीर हृष्टपुष्ट बनता है।

चिरयौवन प्राप्त करने के उपाय

यौवन प्राप्त करने की आशा सभी रखते हैं। महाभारत में इस बात का उल्लेख है कि ययाति ने अपने पुत्र को अपना बुढ़ापा देकर पुत्र का यौवन लेकर संसार के सुख को भोगा था। आजकल भी देखा जाता है कि बच्चे मुंह में बार-बार रेजर चलाकर मूँछ और दाढ़ी उगाकर समय से पहले युवक बनने के लिए व्यर्थ का प्रयास कर रहे हैं और बूढ़े सफेद बाल और दाढ़ी मूँछ को डाई करके डाक्टरों के पास गुपचुप नकली दाँत लगाकर माँ पार्वती के छोटे बच्चे की तरह अपने आपको सजाकर नाति को साथ लेकर नाच, तमाशा, सिनेमा थियेटर में युवकों की तरह मजा लेने की कोशिश कर रहे हैं। अंग्रेज महिलाएँ अपनी जवानी के ढलने पर भी जोर-जबर्दस्ती जवानी के ढलने के परिणामस्वरूप चमड़ी पर आने वाले फोड़े-फुन्सियां ठीक करके त्वचा पर चमक लाने के लिए तरह-तरह की कृत्रिम सामग्री का प्रयोग कर रही हैं। परंतु स्वर शास्त्र के अनुसार सामान्य चेष्टा से यौवन की रक्षा की जा सकती है, यह बात कोई नहीं समझता। स्वरशास्त्र के अनुसार यौवन रक्षा का उपाय नीचे दिया गया है।

जिस समय जिस अंग में जिस नाड़ी में साँस चलती होगी, उस समय उस नाड़ी को रोकना होगा। जो पुनः पुनः श्वास वायु का रोध और मोचन करने में समर्थ है, वह दीर्घ जीवन और चिर यौवन प्राप्त करता है। तब बाल सफेद होने, दांत हिलने अथवा दांत गिर जाने, चमड़ी ढीली होने के बाद युवक बनने के लिए और विड़ंबना नहीं भोगनी होगी। पहले ही इस नियम से चलनें पर लोक समाज में हास्यास्पद नहीं बनना होगा।

अनाहत पद्म के वर्णन के समय बताया गया है कि उक्त पद्म की कर्णिका के भीतर अरुण वर्ण का सूर्यमंडल विद्यमान है। सहस्रार पर स्थित अमाकला से जो अमृत निकलता है, सूर्यमण्डल में वह चू जाता है। इसलिए मनुष्य के शरीर में शिथिलता आकर उसमें जरा दिखाई देती है। योगीजन विपरीतकरणी मुद्रा अर्थात् पैरों को ऊपर और सिर को नीचे करके तरकीब से अमाकला से निकलने वाले अमृत को सूर्यमंडल के ग्रास से बचाते हैं। उससे उनका शरीर शिथिल न होकर तथा जरा रहित होकर दीर्घकाल

स्थायी रहता है।—परन्तु

गुरुपदेशतो ज्ञेयं न च शास्त्रार्थ कोटिभिः।

अर्थात यह पूरी तरह गुरु के उपदेश सापेक्ष हैं। विपरीतकरणी मुद्रा के अतिरिक्त खेचरी मुद्रा के द्वारा भी इस क्षरित अमृत की सहज ही रक्षा की जाती है। खेचरी मुद्रा का नियम इस प्रकार है, जैसे—

रसानां तालुमध्ये तु शनैः शनैः प्रवेशयेत,
कपाल कुहरे जिह्वा प्रवष्ठिा विपरीतगा,
भ्रुवोर्मध्ये गता दृष्टिर्म्मुद्रा भवति खेचरी।

—घेरण्ड संहिता

जीभ को धीरे-धीरे तालु के भीतर प्रवेश कराइये। उसके बाद जीभ को ऊपर की ओर उल्टा कर कपाल कुहर में प्रवेश कराकर दृष्टि को दोनों भौंओं के बीच स्थिर रखने पर खेचरी मुद्रा होती है।

कोई कोई जीभ के अग्रभाग को तालू के मूल से छुआ कर बहादुरी दिखाते हैं, परंतु उनकी बहादुरी यहीं तक है। वास्तव में कुछ नहीं होता। जीभ को इस तरह रखकर, उसके बाद क्या करना होता है, कोई नहीं जानता। खेचरी मुद्रा के द्वारा ब्रह्मरंध्र से निकलने वाली सोमधारा को पीने से अभूतपूर्व नशा होता है, सिर चकराता है। आंखें अपने आप अर्ध निमीलित और स्थिर हो जाती हैं। भूख और प्यास दूर हो जाती है। इस तरह खेचरी मुद्रा सिद्ध होती है। खेचरी मुद्रा की साधना के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र से जो सुधा झरती है, उससे साधक का पूरा शरीर सराबोर हो जाता है। इससे साधक हृष्टपुष्ट और जरा रहित हो जाता है, उसकें शरीर की कांति कंदर्प जैसी होती है और वह पराक्रमशाली बन जाता है। वास्तव में खेचरी मुद्रा की साधना कर सकने से साधक छः महीने के भीतर सभी बीमारियों से मुक्त हो जाता है।

खेचरी मुद्रा में सिद्ध होने पर विविध रसों के स्वाद की अनुभूति होती है। पृथक-पृथक स्वाद से पृथक-पृथक फल मिलता है। दूध के स्वाद की अनुभूति होने पर सभी बीमारियाँ नष्ट होती हैं। घी के स्वाद की अनुभूति होने पर अमरत्व की प्राप्ति होती हैं।

और भी अन्य अनेक उपायों से शरीर को हृष्ट-पुष्ट और जरारहित

कर यौवन को चिरस्थायी बनाया जा सकता है। बहुलता के डर से वह सब यहाँ नहीं लिख सकता।

दीर्घ जीवन प्राप्त करने के उपाय

संसार में दीर्घ समय तक जीने की किसकी इच्छा नहीं होती। कहीं कोई एक आध व्यक्ति रोग की पीड़ा से परेशान होकर अथवा भीषण कष्ट से पीड़ित होकर मृत्यु को श्रेय समझता है। परंतु योगीजन जीवन और मृत्यु दोनों के प्रति उदासीन हैं। इनके अतिरिक्त सभी दीर्घ दिन जीने की आशा करते हैं। परंतु कितने लोगों को दीर्घ जीवन प्राप्त करते देखा जाता है। प्रतिदिन अकालमृत्यु के कारण कितने लोग यमालय में जाते हैं। जीवन की पूर्ण संख्या कितनी है, वह कोई नहीं जान पाता। अकालमृत्यु क्यों होती है और उसके निराकरण का उपाय भी क्या है ? आर्यऋषि मृत्यु के कारण को निर्देशित करते हुए यह बात स्पष्ट रूप से बता गये हैं कि मनुष्य स्वयं ही उसकी मृत्यु का कारण है। अदृष्ट या दृष्ट, कुछ भी कहो, इन दोनों कारण के मूल में मनुष्य स्वयं है। आर्यऋषियों ने कहा कि कर्मफल के भोग के लिए शरीर उसके उपयोगी बनता है। संकल्प और विकल्प ही जीवन के जन्म और मृत्यु का मुख्य कारण है। इसलिए जब तक कर्मफल है, शरीर भी तब तक रहेगा। जिस समय कर्मफल नहीं रहेगा, उस समय शरीर की क्या जरूरत है ? अतः इससे स्पष्ट होता है कि शरीर कभी भी चिर स्थायी नहीं हो सकता। तब शरीर का त्याग दो तरह से होता है। पहले में कर्म के पूरी तरह निःशेष होने पर जीव पूर्ण ज्ञान के साथ पंचइंद्रिय समन्वित शरीर का अनायास ही त्याग करता है, उसे मोक्षप्राप्ति कहते हैं। दूसरे—जीवन के संचित कर्म शरीर को अनुरूप फल भोग के अनुपयुक्त पाकर जीवन को अवश और अज्ञान से आवृत करके जब बलपूर्वक स्थूल शरीर का त्याग कराते हैं, उसे मृत्यु कहते हैं। ऐसी जो मृत्यु है, उसका ज्ञान अथवा योग के अनुष्ठान आदि से अतिक्रमण किया जा सकता है। चित्त को विविध वासनाओं, दुराशाओं आदि से निवृत्त रखना दीर्घ जीवन

प्राप्त करने का उपाय है। जिस प्रकार काम, क्रोध, लोभ आदि रिपुगण चित्त को किसी भी तरह से पीड़ा न पहुंचा सके, वही करना चाहिए। ईश्वर के प्रति भक्ति और निर्भरता रखकर संतोष रूपी सुधा के पान में लगे रहने से दीर्घ जीवन प्राप्त करना विशेष असाध्य नहीं होगा। दर्शन विज्ञान आदि के शास्त्रविदों ने विशेष खोजपूर्ण युक्ति के द्वारा जन्ममृत्यु के कारण और दीर्घजीवन प्राप्त करने के उपाय निर्देशित किये हैं। इसलिए इस संबंध में यहाँ पर चर्चा या आलोचना करना अनावश्यक है। स्वर शास्त्र के अनुसार किस प्रकार दीर्घ जीवन प्राप्त किया जा सके, उस पर ही चर्चा करें।

मानव शरीर में दिन रात जो श्वास-प्रश्वास चलता है, उसका नाम प्राण है। मानव शरीर से सांस निकल कर शरीर में पुनः प्रवेश नहीं करने से जीव की मृत्यु होती है। निश्वास की एक स्वाभाविक गति है। जैसे–

प्रवेशे दशभिः प्रोक्तो निर्गमे द्वादशांगुलम्।

–स्वरोदय

मनुष्य के सांस लेते समय अर्थात नाक से सहज रूप में सांस खींचते समय दस अंगुल परिमाप का निश्वास भीतर प्रवेश करता है। सांस छोड़ते समय बारह अंगुल परिमाप का श्वास वायु बाहर निकलता है। एक पतली लकड़ी पर नाक से बारह अंगुल नापकर उस जगह कुछ रुई रखें। यदि हवा उसे पार करती है, तो रुई को हटाकर देखिये की वायु की गति कितनी है। यदि स्वाभाविक अवस्था में वायु की गति बारह अंगुल से अधिक होती है, तो समझना होगा कि जीवन क्षय की ओर बढ़ रहा है। प्राणायाम आदि क्रिया अवगत होने पर इस क्षय को सहज ही रोका जा सकता है।

मनुष्य के निश्वास त्याग के समय बारह अंगुल परिमाप में वायु निकलती है। परंतु खाने, चलने, रमण और गान आदि कार्य के समय स्वाभाविक गति की तुलना में अधिक मात्रा में श्वास निकलता है, जैसे–

देहाद्विनिर्गतो वायुः स्वभावाद्द्वादशांगुलिः,
गायने षोड़शांगुल्यो भोजने विंशतिस्तथा।
चर्तुविंशागुलिः पान्थे निद्रायां त्रिदशांगुलिः,
मैथुने षटत्रिंशद्युक्तं व्यायामे च ततोऽधिकम्।
स्वभावेऽस्य गतौ मूले परमायुः प्रवर्द्धते,

आयुक्षयोऽधिके प्रोक्तोः मारुते चांतरोद्गते।।

गायन के समय सोलह अंगुल, भोजन के समय बीस अंगुल, चलते समय चौबीस अंगुल, नींद के समय तीस अंगुल एवं नारी संसर्ग के समय छत्तीस अंगुल के परिमाप से निश्वास की गति होती है। श्रमजनक व्यायाम के समय इसकी तुलना में अधिक निश्वास निकलता है।

कोई भी कार्य करते समय यदि निश्वास की गति बारह अंगुल से अधिक होती है, तो समझना होगा कि जीवनी शक्ति या प्राण का क्षय हो रहा है। प्राणायाम आदि के द्वारा इस अस्वाभाविक गति को नियंत्रित करना ही दीर्घजीवन प्राप्त करने का मुख्य उपाय है। मैथुन से जीवन की जो हानि होती है, निश्वास की गति की दीर्घता ही इसका मुख्य कारण है। और जिसकी जीवन शक्ति का ह्रास हो चुका है, मोटे तौर पर जिसमें धातु दुर्बल रोग पैदा हुआ है, उसके निश्वास की गति तेज होती है और अस्सी अंगुल लंबा निश्वास निकलता है। इसके परिणामास्वरूप वह मृत्यु के पथ पर बहुत शीघ्र खींचे चले जाता है।

योग के अंगों के रूप में गृहीत क्रियाओं के अनुष्ठान से इस निश्वास को स्वाभाविक अवस्था में रखना ही जीवनी शक्ति की रक्षा का एक मात्र उपाय है। और जो व्यक्ति योगक्रिया के प्रभाव से अपने स्वाभाविक श्वास की गति को कम कर एक या दो अंगुल कर सकता है सर्वसिद्धि और अमानुषी शक्ति उसके हाथ की मुट्ठी में है।*

इस तरह योग की उच्च अवस्था में पहुंचने पर वायु को एक दम रोककर काफी दिन बिताये जा सकते हैं। प्राचीन योगियों की बात अलग

---

* एकांगुलकृतन्यूने प्राणे निष्क्रामति मता।
आनंदस्तु द्वीतीये स्यात कविशक्तिस्तृतीयके।।
वाचः सिद्धिश्चतुर्थे तु दूरदृष्टिस्तु पंचमे,।
षष्ठे त्वकाशगमनं चण्डवेगश्च सप्तमे।।
अष्टमे सिद्धयश्चाष्टौ नवमे निधये नव।
दशमे दशमूर्तिश्च छायानाशो दशैकके।।
द्वादशे हंसचारश्च गंगामृतरसं पिवेत्।
आनखाग्रे प्राणपूर्णे कस्य भक्ष्यंच भोजनम।।

–पवन विजय स्वरोदय

है। आजकल के भूकैलास स्थित योगी की बात कौन नहीं जानता। काशीधाम के तैलंग स्वामी की विविध और विचित्र शक्ति लीला किस को अविदित है ? तैलंग स्वामी पानी में दो-चार घंटे डूब कर रह सकते थे। इसमें उनकी मृत्यु नहीं होती थी। महाराज रणजीत सिंह के समय मैकग्रेगर आदि साहबों के सामने हरिदास साधू को एक बक्से में बंद करके उसे ताला लगा दिया गया और उस बक्से को मिट्टी में गाड़ कर चालीस दिन तक रखा गया था। चालीस दिन के बाद उसे मिट्टी से निकालकर बक्से को खोलकर देखा गया कि साधु की मृत्यु नहीं हुई है।

प्राण वायु की बहिर्गतिको स्वभावस्थ करके रख सकने से परमायु में वृद्धि होती है। परंतु निश्वास निर्दिष्ट मात्रा से अधिक होने पर आयु का क्षय होना सुनिश्चित है। नींद, गान और मैथुन आदि जिन जिन कार्यों में प्राणवायु अधिक मात्रा में निकलता है, वह सब कार्य जितना कम किया जाएगा उतने स्वस्थ शरीर में दीर्घजीवन प्राप्त किया जा सकता है, इसमें संदेह नहीं है। नियमित रूप से प्राणायाम करने पर दीर्घजीवन प्राप्त होता है। प्राण शब्द का अर्थ है 'वायु'और आयाम शब्द का अर्थ है 'निरोध'। प्राणायाम के समय कुंभक करने से प्राणवायु का निरोध होता है, सांस नहीं चलती है। इसलिए जीवन लंबा और रोगशून्य होता है।

शास्त्रविद पंडितगण कहते हैं कि कार्य के गुण से परमायु में वृद्धि होती है और कार्य के दोष से मनुष्य अल्पायु होता है। वैज्ञानिक और दार्शनिक कहते हैं कि काम, क्रोध, चिंता और दुराशा जीव की मृत्यु के कारण है। तब दोनों एक ही बात है। स्वरशास्त्रकारों ने एक ही बात में इसकी मीमांसा कर दी है। श्वास की लंबाई और छोटाई दीर्घायु और अल्पायु होने का मुख्य कारण है। तब तो यह बात स्पष्ट है कि शास्त्रज्ञ पण्डित और स्वरज्ञानियों की युक्ति में एकता है। क्योंकि वे जिन सब कार्यों को मृत्यु के कारण के रूप में निर्देशित कर रहे हैं, उन सब में निश्वास की दीर्घगति ही अवधारित हो रही है। इसलिए जिसका जितना कम प्राणवायु व्यय होगा, उसकी आयु में उतनी वुद्धि होगी और रोग आदि उतने ही कम होंगे। इसके विपरीत होने पर तरह-तरह के रोग और पीड़ा होगी और आयु का नाश होगा, इसमें कोई संदेह नहीं। यदि विद्वान पाठक

निश्वास की गति के बारे में जानकारी प्राप्त कर कार्य करेंगे तो वे समझ सकेंगे कि दीर्घजीवन प्राप्त करना कोई कष्टकर कार्य नहीं है। निश्वास वायु की गति को एकदम रोककर उसे भीतर प्रवेश करा सकने से साधक योगेश्वर हंस स्वरूप वनकर गंगा के अमृत का पान करते हुए अमरत्व प्राप्त कर सकेगा। उसके सिर से लेकर नाखून के अग्रभाग तक प्राणवायु भरा रहेगा। इसलिए उसे और खाने-पीने की आवश्यकता नहीं रहेगी। वह बाह्यज्ञान रहित होकर जीवात्मा के साथ परमात्मा को मिलाकर अंतर के भीतर परमानंद का भोग कर सकेगा। जिस उपाय से दीर्घजीवन प्राप्त किया जाता है, उसी उपाय से मनुष्य की मुक्ति होती है।

मृत्यु का समय पहले जानने के उपाय

जिस प्रकार प्रातःकाल में सूर्य का उदय होने पर सूर्यास्त होना अवश्यंभावी है, दिन की रोशनी के हट जाने पर रात्रि के अंधकार का आना जिस प्रकार निश्चित है, ठीक वैसे ही जन्म लेने के बाद मृत्यु का होना निश्चित है। शिवावतार शंकराचार्य ने कहा है—

यावज्जननं तापन्मरणं तावज्जननी जठरे शयनम्

—मोहमुद्गर

वास्तव में अनवरत परिवर्तनशील इस नश्वर संसार में किसी भी बात की स्थिरता और निश्चयता नहीं है। मृत्यु ही केवल निश्चित है। हमारे देश के साधु कवि ने मधुर स्वर में गाया—

जन्म लिया तो होगा मरना
अमर नहीं कोई हुआ।
इस जीवन नदी में हाय
चिरस्थाई कब नीर हुआ।।*

---

* मूल लेख

जन्मिले मरिते हवे अमर के कोथा कवे,
चिरस्थिर कवे नीर हायरे जीवन नदे।

इस मर जगत में कोई एक भी अमरत्व प्राप्त नहीं कर सकता। केवल शास्त्रों से पता चलता है कि

अश्वत्थामा वलिर्व्यासो हनुमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः।।

इन सात जनों ने ही मृत्यु को जीता है। परंतु वे भी लोक-लोचन में दिखाई नहीं देते। मृत्यु अनिवार्य है। जन्म लेने के बाद और कुछ हो या न हो, मृत्यु अवश्यंभावी है। आज हो या कल या पांच-दस वर्ष बाद हो एक दिन सबको उस सर्वग्रासी यमराज के घर जाना ही होगा।

जब एक न एक दिन मृत्यु नित्य प्रत्यक्ष सत्य है, उस समय कितने दिन बाद प्रेम की पुतली प्रणयिनी और प्राणों से अधिक प्यारे पुत्र-कन्या को छोड़ चले जाना होगा, यह बात जानना कौन नहीं चाहेगा ? विशेष कर पहले मृत्यु का समय जान सकने से सांसारिक और वैषयिक कार्य में विशेष सुविधा कर ली जाती है और नाबालिग पुत्र कन्याओं की परवरिश के लिए सुव्यवस्था और धन दौलत की रक्षा की उचित व्यवस्था की जा सकती है। और यह भी सुविधा होती है कि मृत्यु की यवनिका के अंतराल में दृष्टि पड़ने पर परलोक के पथ को भी परिष्कृत किया जा सकता है। संसार चक्र में घूमने वाले और माया की मरिचिका में मुग्ध, विविध विलास वासना में जुड़े जो लोग इस मर जगत में अपने आपको अमर मान कर हमेशा स्वार्थ को पूरा करने में लगे रहते हैं, मन में धर्म प्रवृत्ति को स्थान नहीं देते, यदि उन्हें पता चल जायेगा कि मृत्यु विकराल मुंह को खोलकर उनके सामने तांडव नृत्यु कर रही है, और छः महीने या एक महीने या दस दिन बाद प्राणों को सुख देने वाली पत्नी और आत्मा के अंशविशेष पुत्र कन्याओं को छोड़ कर, धन दौलत, विलास व्यसन के उपकरणों आदि इस भवसंसार के यथासर्वस्व को त्याग कर उन्हें खाली हाथ निःसम्बल होकर अकेले चले जाना होगा, तब वे अवश्य ही तत्त्वपथ के पथिक बन कर धर्म-कर्म के द्वारा परलोक का इष्ट साधन कर सकेंगे। तंत्र, पुराण, आयुर्वेद, ज्योतिष और स्वरोदय शास्त्र में मृत्यु के अनेक लक्षण लिखित हैं। यह सब पढ़कर मृत्यु लक्षण को निश्चित करना साधारण लोगों के लिए एकदम दुःसाध्य है। मैंने योगियों और साधु संन्यासियों से मृत्यु के जो सब लक्षण सुन रखे

हैं और अनेक लोगों द्वारा उनकी परीक्षा करके प्रत्यक्ष सत्य फल पाया है, उनमें से बहु परीक्षित कुछ एक लक्षणों के मूल को उद्धृत कर और व्यर्थ में समय बरबाद न करके सर्व साधारण के लिए सरल भाषा में लिख रहा हूँ।

वर्ष, मास अथवा पखवाड़े के प्रथमदिन से जिसकी सांस, दिन रात दोनों नाकों में समान वेग से एकत्र होकर चलेगी, तो उस दिन से लेकर जिस दिन तीन वर्ष पूरे हो जाएगे, उस दिन उसकी मृत्यु होना निश्चित है।

वर्ष मास अथवा पखवाड़े के प्रथम दिन से आरंभ करके जिसकी सांस दो दिन-रात दाईं नाक में चलेगी, उस दिन से दो वर्ष के भीतर उसकी मृत्यु होती है।

वर्ष मास अथवा पखवाड़े के प्रथम दिन से तीन दिन-रात जिसकी सांस दाईं नाक में चलती है, उस दिन से एक वर्ष के भीतर उसकी मृत्यु होगी।

वर्ष मास अथवा पखवाड़े के पहले दिन से रात्रिकाल में इड़ा और दिन के समय पिंगला नाड़ी में जिसकी सांस निरंतर चलेगी, छः मास के भीतर उसकी मृत्यु होती है।

वर्ष मास अथवा पखवाड़े के पहले दिन से सोलह दिन तक जिसकी सांस दाईं नाक में चले, उस दिन से जिस दिन एक मास पूरा होगा, उस दिन उसकी मृत्यु होगी।

वर्ष, मास अथवा पखवाड़े के पहले दिन से जिसकी सांस पल भर के लिए भी बाईं नाक में न चलकर केवल दाईं नाक में निरंतर चलती रहे, पंद्रह दिन के भीतर उसकी मृत्यु होती है।

वर्ष मास अथवा पखवाड़े के पहले दिन से जिसका मल, मूत्र, शुक्र और अधोवायु एक साथ निकले, तो उसके दस दिन के भीतर उसकी मृत्यु होना निश्चित है।

जो व्यक्ति अपनी भौं के बीच के स्थान को नहीं देख सकता, उस दिन से सातवें या नौवें दिन उसकी मृत्यु होनी है। जो व्यक्ति अपनी नाक को नहीं देख सकता, उसके तीन दिन के भीतर उसकी मृत्यु होती है और जो व्यक्ति जीभ नहीं देख सकता, एक दिन के भीतर उसकी मृत्यु होगी, इसमें संदेह नहीं है। जो मृत्यु शय्या पर पड़ा है, वह व्यक्ति आकाश में स्थित अरुंधती, ध्रुव, विष्णुपद और मातृकामंडल नामक नक्षत्र को नहीं देख सकता।

जिसकी दोनों नाक से सांस चलना एकदम रुककर केवल मुंह के रास्ते सांस चलती है, उसकी तत्काल मृत्यु होती है।

जिसकी नाक टेढ़ी और कान उन्नत होते हैं तथा आँखों से लगातार आँसू निकलते हैं, उस व्यक्ति की शीघ्र मृत्यु होती है।

घी, तेल और जलछाया में अपना प्रतिविंव देखते समय जो व्यक्ति अपना सिर नहीं देख पाता, वह एक मास से अधिक जीवित नहीं रह सकता।

रतिक्रिया के समय जिस व्यक्ति को पहले, वीच में और अंत में छींक आती है, वह व्यक्ति पांच माह से अधिक जीवित नहीं रहता।

स्नान करते ही जिसका हृदय, पैर और मस्तक सूख जाते हैं, तीन मास के भीतर उसकी मृत्यु होती है। जो व्यक्ति स्वप्न में अपने आप को गधे पर बैठा हुआ, तेल से भीगा हुआ और भूषित हुआ पाता है, वह व्यक्ति शीघ्र ही यमालय में चला जाता है।

जो व्यक्ति लौहदण्डधारी, काले कपड़े पहने काले रंग के पुरुष को सामने देखता है, वह व्यक्ति तीन महीने के भीतर यमालय का मेहमान बन जाता है।

जिसके कंठ, होंठ, जीभ और तालू हमेशा सूखे रहते हैं, छः माह के भीतर उसकी मृत्यु होती है।

यदि कोई मोटा आदमी बिना कारण के अचानक दुबला पतला हो जाता है अथवा दुबला पतला आदमी अचानक मोटा हो जाता है, तो एक मास के भीतर उसकी मृत्यु होना निश्चित है।

हाथों से कर्णकुहर को बंद करने पर कानों के भीतर एक प्रकार की अस्पष्ट ध्वनि सुनाई देती है। यह स्वाभाविक नियम है। जो व्यक्ति यह ध्वनि नहीं सुन सकता एक माह के भीतर उसकी मृत्यु होगी।

हमारे देश में मिट्टी का दीया जो सरसों के तेल और बत्ती के संयोग से जलता है, उसे बुझा देने के बाद जो गंध निकलती है, यदि किसी की नाक को उसकी अनुभूति नहीं होती है, तो छः महीने के भीतर उसकी मृत्यु निश्चित है।

जिसके दांत और अण्डकोष को दबाने पर पीड़ा नहीं होती, तीन मास

के भीतर उसकी मृत्यु हो जाती है।

दीपगंधं सुहृदवाक्यं नासाग्रं चाप्यरुन्धतीं,
न जिघ्रन्ति न श्रृण्वन्ति न पश्यन्ति गतायुषाः।।

इनके अतिरिक्त मृत्यु का समय जानने के और भी अनेक लक्षण हैं। परंतु वह सब प्रकाशित करना काफी समय सापेक्ष है, इसमें संदेह नहीं। और एक बात है कि ये सब लक्षण सबके शरीर में प्रकट नहीं भी हो सकते। विशेषकर निश्वास की गति और श्वास की क्रिया का पता न हो, तो प्रथम लक्षणों को नहीं समझा जा सकता। सिद्ध महापुरुषों ने बताया कि मृत्यु के कुछ लक्षण हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति की मृत्यु के पहले निश्चित रूप से दिखाई देंगे। मैंने परीक्षा करके इसकी सच्चाई की उपलब्धि की है। पाठकों की जानकारी के लिए उनमें से एकमात्र लक्षण नीचे दिया गया है।

दायें हाथ की मुट्ठी को बंद कर नाक के सामने समान रूप से सिर के ऊपर अथवा भौं के ऊर्ध्वभाग में कपाल के ऊपर रखकर नाक के सामने हाथ की कलाई के नीचे समान रूप से नजर डालने से हाथ बड़ा पतला दिखाई देता है। यह स्वाभाविक नियम है। परंतु जिस दिन हाथ के साथ मुट्ठी का योग नहीं रहता, हाथ की मुट्ठी हाथ से अलग दिखाई देती है, समझना होगा कि उस दिन से आयु मात्र छः माह बची है।

इस लक्षण के प्रकट होने के बाद प्रतिदिन प्रातःकाल आंखें मूंद कर उंगली के अग्रभाग से आंख के किसी कोने को दबाकर रखने से उसकी विपरीत दिशा में आंखों के भीतर उज्ज्वल तारे के समान एक विंदु दिखाई देता है। परीक्षा करने पर सभी यह देख सकेंगे। जिस दिन से यह ज्योतिः नहीं दिखाई देगी, उस दिन से दस दिन के भीतर उस व्यक्ति की मृत्यु होती है।

अनेक लोगों पर इसकी परीक्षा करके इसकी सच्चाई के संबंध में मैं अपना संदेह मिटा चुका हूँ। मृत्यु के पहले ये दो लक्षण सबके शरीर में प्रकट होते है। इस लक्षण को समझने के लिए किसी से विद्या और बुद्धि उधार नहीं लेनी पड़ेगी। अपने अपने शरीर पर नजर डालकर सभी इन दोनों लक्षणों की परीक्षा कर मृत्यु के पूर्व लक्षण को समझ सकेंगे।

योगी-अयोगी आदि सबके शरीर में मृत्यु से पहले यह सब लक्षण

प्रकट होते हैं और अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक विकार भी दिखाई देते हैं। मृत्यु से पूर्व ये सब लक्षण समझ सकने से मृत्यु के लिए तैयार होना नितांत आवश्यक है। इसलिए धन, दौलत, विषय, विभव, बाल-बच्चों आदि की भावना कर असार माया-मोह से मुग्ध होकर असली बात को भूल मत जाइये। कुछ भी आपके साथ नहीं जाएगा, केवल–

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः

अतः परजन्म में जिससे परमागति प्राप्त होकर हर तरह से सुख का भोग किया जा सके, उसके लिये तैयार होना नितांत आवश्यक है। मृत्यु के समय सांसारिक किसी भी विषय के प्रति आसक्ति रहने पर पुनः जन्म लेकर दुःख और यंत्रणाएँ भोगनी होगी, भगवान ने कहा है–

यं यं वापि स्मरन भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम।
तं तवेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।।

–गीता 8/6

मृत्यु के समय जो जैसी भावना करके शरीर को त्यागता है, वह उसी भाव को प्राप्त होता है। इसलिए हिरन के बच्चे का चिंतन करके मरने के कारण परमयोगी राजा भरत अगले जन्म में हिरण के शरीर को प्राप्त हुए थे। "जप और तप व्यर्थ का करना, मरना जानो तो होय, यह प्रचलित वाक्य उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसी कारण यह स्पष्ट पता चलता है कि जो जैसी चिंता करके मरेगा, वह उसके अनुरूप शरीर को प्राप्त होगा। इसलिए मृत्यु के समय विषय और वैभव आदि को भुलाकर भगवान के चरणों में मन और प्राणों को समर्पण करना सबका कर्त्तव्य है। भगवान ने कहा है–

अंतकालेच मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।।

गीता 8/5

जो व्यक्ति मृत्यु के समय भगवान का चिंतन कर प्राणों का त्याग करता है, वह व्यक्ति भगवान के स्वरूप को प्राप्त करता है, इसमें रत्तीभर भी संदेह नहीं है। इसलिए सबको मृत्यु के पूर्व लक्षणों को जानकर सावधान हो जाना चाहिए। जो योगी हैं, यदि वे मृत्यु को निकट जानकर योग का

अवलंबन लेकर शरीर का त्याग करने की चेष्टा करेंगे, तो वे ज्योतिः पथ में जाकर परमागति को प्राप्त करेंगे। मृत्यु के समय कम से कम यदि योग की स्मृति विलुप्त नहीं होती है तो वह व्यक्ति जन्मान्तर में सिद्धि प्राप्त करने में समर्थ होगा। और जो अयोगी है, वे मृत्यु के लक्षणों को देखकर अस्थिर न होकर जिससे भगवान के प्रति सतत् मन को समर्पण करके रह सकते हैं, सदैव वही चेष्टा करेंगे। भगवान का ध्यान और उनके नाम का स्मरण करते करते मृत्यु का सामना करने पर और यातनाएँ नहीं भोगनी होती। परिशेष में

उपसंहार

के समय यह अदना सा ग्रंथकार कहना चाहता है कि इस पुस्तक का प्रतिपाद्य विषय मेरा प्रत्यक्ष सत्य है। विशेषकर स्वरकल्प में 'बिना औषधों के रोगों का आरोग्य' शीर्षक अध्याय से आरंभ करके आखिर तक जो लिखा गया अनेक शिक्षित लोग परीक्षा के द्वारा उसके प्रत्यक्ष फल को देखकर विस्मित हुए हैं। अतः पाठकगण, श्रेष्ठ ऋषियों द्वारा प्रचलित साधना में अविश्वास मत कीजिए। उनके द्वारा साधना समुद्र का मंथन होकर इस सुधा का उद्भव हुआ है। इस सुधा का पान कर मनुष्य इस मरणशील जगत में अमर बनेगा। इससे आत्मज्ञान की अधूरी आकांक्षायें पूरी होंगी। पाश्चात्य देशवासियों के बाह्य विज्ञान की चकाचौंध को देख उससे भ्रमित होकर आर्यशास्त्र का अनादर करने पर अपने घर की खीर को त्याग कर दूसरे के द्वार पर भीख मांगने जैसी विड़म्वनाएं भोगनी होगी। हिंदू जो समझता है, दूसरे धर्मावलंबियों को उसकी सीमा तक पहुंचने में काफी देर है। आज भी हिंदू जिस ज्ञान को छाती में थामे हुए हैं, उसे समझने की सामर्थ्य दूसरों में नहीं है। उदाहरण के तौर पर देखिए हम भारत के लोग अंग्रेजी सीखकर होमर, वर्जिल, दान्ते, शेक्सपियर आदि प्रमुख अंग्रेजी कवियों पर गहन अध्ययन करके उसका स्वेच्छानुसार प्रयोग कर

सकते हैं। परंतु कितने अंग्रेज शंकराचार्य के एक संस्कृत ग्रंथ के मर्म को समझ पाये हैं ? कितने अंग्रेज पातंजल सूत्र के एक भी सूत्र की सही व्याख्या करने में समर्थ हैं ? अनेक दिन हुए पराधीनता की बेड़ी पहन कर हिन्दू जड़ बन चुके हैं। इसलिए हिंदुओं को जड़ के उपासक आदि कुछ भी कहा जाता है। परंतु जिन जड़वादियों के धर्म की नस-नस में जड़त्व भरा हुआ है, जिनका धर्म आज भी दूध पीते बच्चों की तरह दूसरों के मुंह की ओर ताकता है, आश्चर्य की बात है कि वे ही हिंदू धर्म की निंदा करते हैं। इसलिए कहता हूं, पाठको ! 'तीन मुंह में बकरा भी कुत्ता'' की तरह दूसरों की युक्ति में हां भरना लघुचेताओं का कार्य है। हिन्दू धर्म को समझने की चेष्टा कीजिये। तब देखेंगे कि हिन्दू जो कुछ करता है, उसमें जरा सा भी कुसंस्कार नहीं है, हिन्दू धर्म गंभीर आध्यात्मिक विज्ञान सम्मत और दार्शनिकता से पूर्ण है। पाश्चात्य शिक्षा पर इतराने वाले लोग सोचते हैं कि जिसकी वैज्ञानिक व्याख्या नहीं है, उसका कोई मूल्य नहीं है। इसलिए वे हर बात की वैज्ञानिक युक्ति ढूँढ़ते फिरते हैं। यद्यपि विज्ञान ज्ञान का एकमात्र उपाय है, तथापि यह सभी समय उपयोगी नहीं है अथवा तर्कबुद्धि सभी लोगों और सभी विषयों के उपयोगी नहीं है। यदि हर अवस्था में वैज्ञानिक युक्ति के साथ चलना होगा, तो मनुष्य के दुःख की सीमा नहीं रहेगी। प्रत्येक कार्य में वैज्ञानिक सत्य अवगत होकर उसके बाद ही उस कार्य को किया जायेगा, यह धारणा बिल्कुल गलत है। निर्जीव रजोकण से ऐसी देवोमम मनुष्य सन्तान कैसे जन्म लेती है ? रात को जीव क्यों नींद में डूब जाता है ? रात के खुलने के बाद उसे कौन फिर जगा देता है ? मियादी बुखार एक या दो दिन के अंतर में बिल्कुल नियमित समय पर अलक्षित रूप में आकर किस तरह रोगी को पकड़ लेता है। इन समस्त बातों की युक्ति क्या कोई ढूँढ़ पाया है ? तब असंभव या अयौक्तिक कहकर इतना चिल्ला क्यों रहे हैं ? पन्द्रह या बीस रुपए वेतन पाने वाले पोस्टल सिगनलर 'टरे टक्का' सीखकर तार के द्वारा संदेश भेजता है और संदेश प्राप्त करता है। यदि वह ऐसा न करके कहे कि किस शक्ति के बल पर तार के द्वारा यह कार्य होता है, उसे जाने-समझे बिना, मैं बिना कारण संवाददाता का कार्य नहीं करूंगा'' तब तो वह आदमी जीवन में

नौकरी का स्वाद नहीं चख सकेगा। क्योंकि उसकी मोटी बुद्धि में उस विशाल तत्त्व की धारणा करना एकदम असंभव है। शिक्षित लोगों का केवल इसलिए आदर नहीं होता कि वे अपनी विवेचना पर निर्भर करके स्वतंत्र रूप में कार्य करते हैं। पशुपक्षी भी स्वतंत्र रूप में कार्य करते हैं। शिक्षित लोग जानते हैं कि किस तरह कार्य के करने से लोग किस तरह का फल पायेंगे। इन सब बातों का स्मरंण करके उसका यथायथ प्रयोग कर सकने के कारण शिक्षित लोगों का इतना आदर है। मूर्ख कुछ नहीं जानता। वह अपनी प्रकृति के अनुसार कार्य करता है। इसलिये उसमें पग-पग पर दोष रहता है। वर्तमान युग में हीनबुद्धि और अल्पायु होने के कारण हम लोग धर्म में भी वैज्ञानिक युक्ति ढूँढ़ते हैं। परंतु यह भी कौन बताएगा कि प्रत्येक कार्य में वैज्ञानिक युक्ति नहीं है ? बहुत समय से लेकर अनेक पीढ़ियों से चले आने वाले ज्ञान को एक चुल्लू में पी जाना एकदम असंभव है। भगवान के विशाल और विचित्र भण्डार में अनेक शक्ति और संपत्ति संजोयी हुई है। ऊपर, नीचे, सामने, पीछे, स्थूल और सूक्ष्म, इहलोक और परलोक में कितने अनगिनत अज्ञात तथा अप्रकाशित तत्त्व परत दर परत. सज्जित हो रहे हैं, उसका पता कौन लगाएगा ? अनंत के अन्नत शक्ति तत्त्व का निरूपण करना व्यक्तिगत क्षमता के अधीन नहीं है। इसलिए श्रेष्ठ ज्ञानी ऋषियों के वाक्य पर विश्वास करके अधिकार के अनुसार कार्य करना चाहिए।

हमारे स्वभाव में ऐसा दोष है कि कोई भी अपनी बुद्धिहीनता को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। जिसे सभी बुद्धू कहते हैं, वह स्वयं विश्वास नहीं करता कि वह बुद्धू है। एक दिन मैं अपने गाँव के बढ़ई की कार्यशाला में बैठकर एक मित्र के साथ न्यूटन द्वारा प्रचारित गुरुत्वाकर्षण पर चर्चा कर रहा था। पास वह बढ़ई बैठकर बैलगाड़ी का पहिया बना रहा था। वृक्ष से फल शून्य में ऊपर अथवा इस ओर या उस ओर न जाकर नीचे क्यों गिरा ? यह बात सुनकर वह हंसते-हंसते बेहाल हो गया। उसने अपनी लकड़ी काटने वाली बुद्धि की सहायता से युक्ति दिखाकर न केवल हमें अपितु न्यूटन को भी गधा बना दिया। तब तो देखिए कि हम स्वयं उन आर्य ऋषियों की ज्ञानगरिमा को नहीं समझ पा रहे हैं। हमारे छोटे

मस्तिष्क में इन विशाल तत्त्वों की धारणा नहीं होती है। हम उसे स्वीकार न करके शास्त्रवाक्य को विकृत मस्तिष्क का प्रलाप कहकर उसका मजाक उड़ाते हैं। पाठको ! मैं भी एक दिन इस श्रेणी में अग्रणी था। जिस गाँव में मेरा जन्म हुआ है, वहाँ सज्जन निवास नहीं करते। दो चार ब्राह्मण परिवार हैं सही, परंतु उन्होंने भी सही ज्ञान की रोशनी नहीं देखी है और पाश्चात्य शिक्षा का ज्ञान भी उन्हें नहीं है। वे अंध विश्वासी हैं। वे केवल विराट तर्क जाल, जातीय उठा पटक, गाँव से बाहर न निकल कर घर के बरामदे पर बैठकर देहाती विज्ञता का परिचय देकर समय बिताते हैं। वे संध्या, आह्निक, जप, तप और पूजा आदि के सही मर्म को नहीं जानते हैं अथवा सही ढंग से उनका अनुष्ठान भी नहीं करते हैं। केवल हमारे गांव में ही नहीं, पचहत्तर प्रतिशत गाँवों की यही दशा है। इसलिए धीरे-धीरे लोगों में धर्म-कर्म के प्रति अश्रद्धा पैदा हो रही है। मैंने भी ऐसे स्थान में जन्म लेकर उनके संग पालित पोषित होकर वैसी शिक्षा प्राप्त की थी। बाद में आयु में वृद्धि होने के साथ विभिन्न स्थानों पर विभिन्न संप्रदायों के संपर्क में आकर मेरे मन की गति किंभूतकिमाकार हो गई। उस समय तक देवतातत्त्व और आराधना को मैं कुसंस्कार मान रहा था। मेरे पूर्वपुरुषों ने आध्यात्मिक ज्ञान ध्यान में जीवन यापन किया। उस महान वंश में जन्म लेकर संध्या उपासना आदि नित्यकर्म तक करने को मैं अनुचित समझ रहा था। ज्ञान के अभाव में मैं नहीं समझ पाया था कि इस सृष्टि राज्य की सीमा कहाँ है ? आजकल के फैशन के विवेकवादियों का उदाहरण देकर नव्य अभिज्ञ बनकर अनभिज्ञ व्यक्तियों की तरह मैंने विज्ञ वृद्ध व्यक्तियों की बात की अवज्ञा की है, परंतु चिरदिन समान नहीं जाते। अदृष्ट नेमी के आवर्त्तन में मेरी मतिगति में बदलाव आया। श्रीगुरु की कृपा से और शास्त्र माहात्म्य तथा कार्य और कारण की प्रत्यक्षता के परिणामस्वरूप मेरे पूर्व के वह सब संस्कार दूर हो चुके हैं। इसलिए अब स्वकल्पित धर्ममत की असार भित्ति का अवलंबन लेकर राष्ट्रीय शास्त्र को अग्राह्य नहीं कर पा रहा हूँ। इसलिए कहता हूँ आर्य शास्त्र के जटिल रहस्य को नहीं समझ पाने के कारण यह बात भुलाकर कि वह अपनी क्षुद्र बुद्धि की कमी के कारण हुआ है, तत्त्व ज्ञानी ऋषियों के महावाक्य को अग्राहय मत कीजिये।

इस ग्रंथ के बाद राजयोग, हठयोग आदि योग की उच्चाँग साधना कौशल, ब्रह्मचर्य साधना के उपाय, विन्दु साधना, शृंगार साधना, कुमारी साधना, पंचमकार साधना, काली साधना आदि तंत्रोक्त गुप्त साधना और रस तत्त्व तथा साध्य-साधना आदि आर्य शास्त्रों के जटिल रहस्य को मैंने 'ज्ञानीगुरु' और 'प्रेमिकगुरु' ग्रंथ में प्रकाशित किया है। यदि ज्ञान और धर्म साधना पिपासु सुकृतिशाली साधकगण शास्त्रोक्त साधनाओं का सम्यक तत्त्वज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से इस दीन आश्रम में कृपा करके आते हैं, तो श्रीगुरु की कृपा से जैसी शिक्षा ली है तथा चर्चा करके जो क्षुद्र ज्ञान प्राप्त किया है, तदनुसार आदर और यत्न के साथ समझाने में त्रुटि नहीं करूँगा।

अब पाठकों के पास विशेष अनुरोध है कि ज्ञान के उत्कर्ष की साधना करके अज्ञान के स्थूल परदे के पीछे की ओर दृष्टि डालने की सीख लीजिये। तब देखेंगे कि इस वैचित्र्य पूर्ण सृष्टि राज्य की सीमा कहाँ है ? तब समझ सकेंगे कि आर्यऋषियों द्वारा युग युगान्तर से आविष्कृत और उनके तप के प्रभाव से ज्ञात तथा जनहितार्थ प्रचारित कैसे अनमोल रत्न शास्त्रों में संजोये हुए हैं। यह बात सही है कि अंधविश्वास ठीक नहीं है। खोज और साधना करके शास्त्र वाक्य की सच्चाई को जानिए। पिता, पितामह और प्रपितामह द्वारा अपनाये गये हिन्दू धर्म पर विश्वास रखकर तदनुसार साधनाएं और भजन करके मानव जन्म को सार्थक बनाइये और परमानन्द का उपभोग कीजिये। सनातन हिंदू धर्म पर विश्वास रखकर उसके अनुसार साधना और भजन करके मनुष्य जन्म को सार्थक करते हुए परमानन्द का उपभोग कीजिये। हिन्दू धर्म के विजयनाद से दिशा-दिशाओं को प्रतिध्वनित कीजिये। हिंदू धर्म की निर्मल और स्निग्ध किरण को फैलाकर समूचे देश और समूची जाति को रोशन और प्रफुल्लित कीजिये। मैं भी अब जन्म और मृत्यु के भय को दूर करने वाले सत्य, सनातन, सच्चिदानन्द पुरुष के पदारविन्द की वन्दना करते हुए भावुक भक्तों से विदा ले रहा हूँ।

हंसाः शुक्लीकृता येन शुकाश्च हरितिकृताः।
मयुराश्चित्रिता येन स देवो मां प्रसीदतु।।

ॐ श्री कृष्णार्पणमस्तु ●●●

दिल्ली सारस्वत संघ,

सी-44, ग्रीन पार्क,

नई दिल्ली-110016

पुस्तक सूची

क्रम संख्या	पुस्तक का नाम	मूल्य प्रति कॉपी
1.	सदगुरु निगमानन्द	50 रुपये
2.	बच्चों के निगमानन्द	15 रुपये
3.	निगम उपदेश	120 रुपये
4.	ब्रह्मचर्य साधना	20 रुपये
5.	ज्ञानीगुरु	30 रुपये
6.	तांत्रिकगुरु	20 रुपये
7.	प्रेमिकगुरु	15 रुपये
8.	वेदान्त विवेक	20 रुपये
9.	सदगुरु प्रसंग या गुरुवाद	8 रुपये
10.	श्रीमत स्वामी निगमानन्द परमहंस देवजी का निगम तत्त्व	मुद्रणाधीन
11.	नीलाचल वाणी	मुद्रणाधीन
12.	सारस्वत संघ नीति	मुद्रणाधीन
13.	श्री श्री निगमानन्द वचनामृत (भाग 1,2 और 3)	मुद्रणाधीन
14.	मां की कृपा	मुद्रणाधीन
15.	Sadguru Nigamananda *—by Moni Bagchee*	Rs. 100
16.	The Divine Universal Gospels of Shri Nigamananda *—A Translation work by Dr. Bijoy Giri*	Rs. 200